श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थमालाका ३५वाँ पुष्प

पुस्तक
राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी महाराज
जीवन और विचार

लेखक
राजेन्द्र मुनि शास्त्री, काव्यतीर्थ

सम्पादक
प्रोफेसर लक्ष्मण भटनागर

भूमिका
समर्थ साहित्यकार
श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न

अर्थसहयोगी
श्रीमान तखतमलजी किस्तुरचन्दजी भटेवरा, कोशिथल निवासी
c/o शान्ति केमिकल, पेपर बेग्ज एण्ड पस्ती स्टोर
नया माधोपुरा, अहमदाबाद – ३८०००१, फोन नं० २२०५९

प्रथम प्रवेश
२९ अक्तूबर, १९७४

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

मुद्रक
शांतिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – ३८००१४

मुल्य ७–०० रुपये मात्र

* समर्पण *

जिनके जीवनके कण-कण मे
सरलता, समता, सेवा, सद्भावना
अठखेलियाँ कर रही है ।
जिनके जीवनके अणु-अणु मे
मधुरता, मनीषिता और मृदुता
अंगड़ाइयाँ ले रही है
उन्ही परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य
राजस्थान केसरीजी म०
के पवित्र कर कमलो मे

— राजेन्द्र मुनि

भटेवरा परिवार : एक परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के अर्थ सहयोगी है दानवीर सेठ तखतमलजी कुन्दनमलजी राजमलजी सोहनलालजी भटेवरा। श्री सोहनलालजी अत्यन्त उदार, मिलनसार, सरल व सरस प्रकृति के धनी है। नवयुवक होने पर भी आपको धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा है। आपमे धार्मिक भावना पैदा करने का श्रेय आपके पूज्य पिता श्री किरतुरचन्दजी को है। सेठ किस्तुरचन्दजी बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न थे। स्वाध्यायशील होने के कारण पर्युषण के पर्व दिनो में सन्तो के अभाव मे वे स्वय प्रवचन किया करते थे। व्यापार के क्षेत्र में जैसे उन्होंने ख्याति प्राप्त की है वैसी ही ख्याति धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी प्राप्त की है। आपकी जन्मभूमि मेवाड में कोशिथल की है और आपका व्यवसाय अहमदावाद मे है। श्री मोहनलालजी के पाँच भाई है, जिनके क्रमश नाम इस प्रकार है—श्रीमान तखतमलजी सा, स्वर्गीय श्रीमान चुन्नीलालजी सा, श्रीमान कुन्दनमलजी, श्रीमान राजमलजी, श्रीमान सोहनलालजी। इन पाँचो भाइयो में से चुन्नीलाल जी साहब का स्वर्गवास हो गया है। आपका सम्पूर्ण परिवार धर्मनिष्ठ है। आपके उदार सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। आशा है भविष्य मे भी आपका हार्दिक उदार सहयोग मिलता रहेगा। आपके व्यवसाय के पते इस प्रकार हैं—

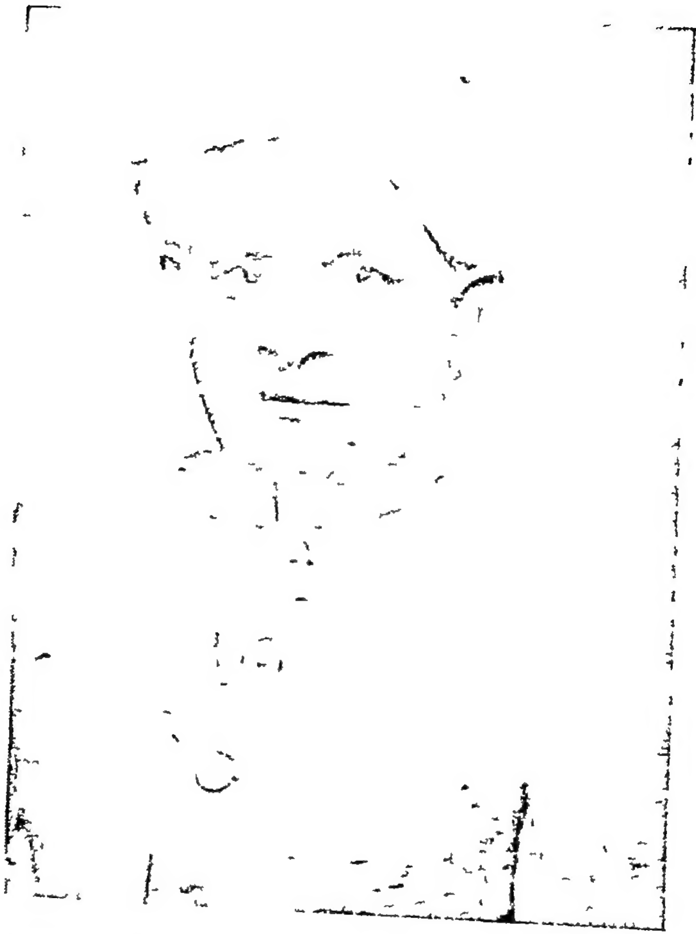
१ श्रीमान राजमलजी सोहनलालजी, शान्ति कैमिकल, पेपर बेग्ज एण्ड पस्ती स्टोर, नया माधोपुरा, अहमदावाद फोन—२२०५९

२ न्यू बॉटल एण्ड पस्ती स्टोर, दिल्ली दरवाजा बाहर, छोटेलाल की चाली, अहमदावाद, फोन २४८६७





श्रीमान् धर्मप्रेमी सेठ तखतमलजी साहब भटेवरा
कोशीथल (राजस्थान)



श्रीमान् धर्मप्रेमी स्वर्गीय श्री चुनीलालजी भटेवरा
कोशीथल (राजस्थान)

प्रकाशकीय

परम श्रद्धेय राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज एक महान लब्धप्रतिष्ठित सन्त है। उनका विराट् व्यक्तित्व बहुत ही व्यापक है, उनके विचार बहुत ही उदात्त है और चिन्तन गहन गभीर है। उनके विचार हिम-शिखरसे अधिक ऊँचे है और सागरसे अधिक गहरे है। आपकी वाणीमे मिश्रीसा माधुर्य है। मै आपश्रीका क्या परिचय दूं, प्रस्तुत पुस्तकका प्रत्येक पृष्ठ ही आपश्रीकी गौरव-गरिमाको अभिव्यक्त कर रहा है।

हमे हार्दिक प्रसन्नता है कि उदीयमान लेखक राजेन्द्र मुनिजी शास्त्रीने प्रस्तुत ग्रन्थ लिखकर हमारे मनकी साध पूर्ण की है। गुरुदेवश्रीका जीवन-चरित्र प्रकाशित करनेकी हमारी दीर्घ कालसे इच्छा थी, वह इच्छा आज मूर्तरूप ले रही है यह आह्लाद का विषय है। अत हम राजेन्द्र मुनिजीके आभारी है।

सद्गुरुदेवश्रीके प्रधान अन्तेवासी देवेन्द्र मुनिजीने सक्षिप्तमें सारगर्भित भूमिका लिखकर सोनेमें सुगन्धका काम किया है। देवेन्द्र मुनिजीकी 'राजस्थान केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ' निकालनेकी योजना भी शीघ्र ही मूर्तरूप ग्रहण करेगी, ऐसा हमारा आत्मविश्वास है।

उदार दानी सज्जनोके अर्थसहयोगके कारण श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय शानदार प्रकाशन कर रहा है, और अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोके प्रकाशनकी योजना है। अभी-अभी 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' जैसे शोध-प्रधान ग्रन्थका उसने प्रकाशन किया है। और भी अनेक ग्रन्थ इस वर्ष प्रकाशित हुए है। 'जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण' ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे है। साथ ही आभार प्रदर्शित करते है श्री नवजीवन कार्यालय के कार्यकर्ताओ का जिन्होने समय पर काम करके दिया। गुरुदेवश्री की असीम कृपासे हम निरन्तर आगे बढते रहेगे, यही मगल कामना है।

—मंत्री, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

भूमिका

परम श्रद्धेय राजस्थान केसरी पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी महाराज स्थानकवासी जैन समाजके जाने-माने और पहचाने हुए एक महान सन्त रत्न हैं। उनका वाह्य व्यक्तित्व जितना नयनाभिराम है, उससे भी अधिक अन्दरका जीवन मनोभिराम है।

सद्गुरुदेवकी वाह्य आकृतिको देखकर दर्शकको अजता और एलौरा की भव्य मूर्तियाँ सहज ही स्मरण हो आती हैं। विशाल देह, लम्बा कद, दीप्तिमान निर्मल गौर वर्ण, प्रशस्त भाल, उन्नत शीर्ष, दीप्त खल्वाट, नुकीली ऊँची नाक, उन्नत वक्ष, प्रबल मासल भुजाएँ, तेजपूर्ण शान्त मुख-मण्डल, प्रेम-पीयूष वर्षाते हुए उनके दिव्य नेत्रको देखकर दर्शक मुग्ध हुए बिना नही रहता। उसमे सागरका विस्तार है, पौरुषका समुद्र ठाठे मार रहा है एव दूसरी ओर करुणाका मेघ वर्षन भी हो रहा है। पुरुषत्व और मसृणता का ऐसा पुजीभूत व्यक्तित्व दूसरा देखनेको मिलना कठिन है।

आप कभी भी मजुल मुखाकृति पर निखरती हुई चिन्तनकी दिव्य आभा, प्रभा देख सकते हैं। उदार आँखोके भीतरसे छलकती हुई सहज स्नेह-सुधाका पान कर सकते है। वार्तालापमे सरस शालीनता, सयमी जीवनकी विवेक विम्वित क्रियाशीलता, जागृत मानसकी उच्छल सवेदन-शीलता, उदात्त उदारताको परख सकते है। प्रेमकी पुनीत प्रतिमा, सरसता-सरलता की सुन्दर निधि, दृढ सकल्प और अद्भुत कार्यक्षमतासे युक्त गुरुदेवश्री का वाह्य और आभ्यन्तर व्यक्तित्व वडा ही दिलचस्प और विलक्षण है।

सरलता की प्रतिमूर्ति:

श्रमण भगवान महावीरने कहा कि सरलता साधनाका महाप्राण है, चाहे गृहस्थ साधक हो, चाहे सयमी साधक हो, दोनोके लिए सरलता, निष्कपटता, अदभता आवश्यक ही नही अनिवार्य है। घृतसिक्त पावक के समान सहज सरल साधना हो निर्धूम होती है, निर्मल होती है

सोही उज्जूय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाण परम जाइ, घयसित्तेव पावए।।

सद्‌गुरुदेव नखसे शिख तक सरल हैं, निर्दम्भ हैं। जैसे अन्दर हैं वैसे ही वाहर हैं, उनकी वाणी सरल है, विचार सरल हैं और जीवनका 'प्रत्येक व्यवहार भी सरल है। कही पर भी छुपाव नही है, दुराव नही है। टेढे मेढे रास्तेसे चलना वे साधनाके लिए घातक मानते हैं। उनका स्पष्ट विचार है—"सरल बने बिना सिद्ध गति कदापि नही हो सकती।"

विनय की प्रधानता :

सन्त जीवनमे जिन सद्‌गुणोंकी अनिवार्य आवश्यकता है उसमे विनय भी प्रमुख गुण है। विनयको धर्मका मूल कहा है, तो अहकारको पापका मूल बताया है। जिस साधकको अहकारका काला नाग डस लेता है वह साधनाकी सुधा पी नही सकता। अहकार और साधनामे तो प्रकाश और अधकारके समान वर है। 'तेजस्तिमिरयोरिव"।

गुरुदेवका जीवन विनम्र ही नही अति विनम्र है। आप श्रमण सघ के और अपनी भूतपूर्व परम्पराके वरिष्ट सन्त है, तथापि गुणीजनोका उसी प्रकार आदर करते हैं जैसे एक लघु सन्त करता हो। मुझे स्मरण है परम श्रद्धेय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० के साथ श्रमण सघके वैधानिक प्रश्नोको लेकर आपश्री का उनसे काफी मतभेद हो गया था। उपाचार्य श्री ने श्रमण सघसे व उपाचार्य पदसे त्यागपत्र दे दिया था। पर जब आपश्री उदयपुर पधारे तब श्री गणेशीलालजी म० अस्वस्थ थे। आपश्री अपनी शिष्य मण्डली सहित वहाँ पर पधारे और सविधि वन्दन किया। गुरुदेव श्री की विनम्रताको देखकर श्री गणेशीलालजी म० का हृदय प्रेमसे गद्‌गद हो उठा और उन्होने गुरुदेवश्रीको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। यह है गुरुदेवश्री के जीवनमें विनम्रता।

विनम्रता ऐसा श्रेष्ठ कवच है, जिसे आज दिन तक कभी कोई छेद नही सका है।

दया का देवता :

दया साधना का नवनीत है। मन का माधुर्य है। दया की सरस रसधारा से साधक का हृदय उर्वर बनता है और सद्‌गुणो के कल्पवृक्ष

फलते है, फूलते है। सन्त दया का देवता कहा जाता है। वह स्व और पर के भेदभाव को भुलाकर वात्सल्य और दया का अमृत प्रदान करता है। सन्त का हृदय नवनीत से भी विलक्षण है। नवनीत स्वताप से द्रवित होता है किन्तु पर-ताप से नही, किन्तु सन्त-हृदय पर-ताप से ही सदा द्रवित होते है, स्व-ताप से नही।

श्रद्धेय सद्गुरुदेव का कोमल हृदय किसी दुखी की करुण कथा को सुनकर ही द्रवित हो जाता है और स्वय कष्ट सहन कर उसके दुख को दूर करना चाहते है। श्रमणजीवन की अपनी एक मर्यादा है। उस मर्यादा मे रहकर ही वे कार्य कर सकते है। गुरुदेव ने साधु मर्यादा मे रहकर हजारो व्यक्तियो को दुख से मुक्त किया है।

जप-साधना :

जैन साधना पद्धतिमे जप का गहरा महत्व रहा है। वह आभ्यन्तर तप है। स्वाध्याय का एक प्रकार है। जप आधि, व्याधि और उपाधि को नष्ट कर समाधि प्रदान करता है। नियमित रूप से, नियमित समय पर सद्गुरुदेव से सविधि महामत्र नवकार को लेकर यदि जाप किया जाय तो अवश्य ही सिद्धि मिलती है ऐसा सद्गुरुदेव का दृढ विश्वास है। वे स्वय प्रतिदिन नियमित जाप करते है। वे भोजन की अपेक्षा भजन को अधिक महत्व देते है। पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में जप की साधना साकार हो उठी है। वे खूब रसपूर्वक जप करते है। और जो भी उनके सम्पर्क मे आता है उसे भी वे जप की प्रबल प्रेरणा प्रदान करते है। वे अपने प्रवचनो मे भी अनेक वार फरमाते है कि अन्य मत्र-तत्रो के पीछे पागल होकर क्यो घूम रहे हो? महामत्र जैसा प्रभावशाली अन्य कोई मत्र नही है। एकनिष्ठा, एकतानता के साथ उसका जाप करो तो तुम्हे अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि होगी।

जीवन और शिक्षण :

जीवन में शिक्षा का वही महत्व है जो शरीर में प्राण का है। शिक्षा के अभाव मे जीवन में चमक-दमक पैदा नही हो सकती। गति और प्रगति नही हो सकती। यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो ने शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा—शरीर और आत्मा मे अधिक से अधिक जितने सौन्दर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है उसे सम्पन्न करना

ही शिक्षा का उद्देश्य है। अरस्तू ने कहा—जिन्होने मानव पर शासन करने की कला का अध्ययन किया है उन्हे यह विश्वास हो गया है कि युवको की शिक्षा पर ही राज्य का भाग्य आधारित है। एडिसन ने कहा—शिक्षा मानव-जीवन के लिए वैसे ही है जैसे संगमर्मर के पत्थर के लिए शिल्प-कला। सद्गुरुदेव का मानना है कि विश्व मे जितनी भी उपलब्धियाँ है उनमें शिक्षा सबसे बढ कर है। शिक्षा से जीवन मे सदाचार की उपलब्धि होती है। सद्गुणो के सरस सुमन खिलते है। दीक्षा के साथ शिक्षा भी आवश्यक है। यही कारण है कि आपने अपने शिष्यो व शिष्याओ को शिक्षा के क्षेत्र मे आगे बढने की प्रेरणा प्रदान की। उनकी शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था की। जिस युग मे सन्त-सतिवृन्द परीक्षा देने से कतराता था, उस युग मे आपने उच्च परीक्षाएँ दी और अपने अन्तेवासियो से भी उच्च परीक्षाएँ दिलवाईं।

साहित्य और कला :

साहित्य और कला मानव-जीवन के लिए वरदान है। साहित्य और कला का सम्बन्ध आज से नही आदि काल से रहा है। जो साहित्यकार होगा वह कलाकार अवश्य होगा। दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भारत के महान कवि भर्तृहरि ने साहित्य, सगीत और कला से विहीन व्यक्ति को साक्षात् पशु कहा है।

सद्गुरुदेव श्री के साहित्य मे कविता की गगा, कथा की जमुना और निबन्ध की सरस्वती का सुन्दर सगम हुआ है। उनकी कृतियो में वाल्मीकि का सौन्दर्य है, कालिदास की प्रेषणीयता है, भवभूति की करुणा है, तुलसीदास का प्रवाह है, सूरदास की मधुरता है, दिनकर की वीरता हैं और है गुप्तजी की सरलता।

वे स्वय साहित्यसृष्टा तो है ही, पर साहित्यकार को पैदा करनेवाले भी हैं। उनके अनेक शिष्य कलम के धनी है, जिन्होने साहित्य की अनेक विधाओ में खुलकर और जम कर लिखा है।

आलोचक से प्यार :

जिस व्यक्ति के विमल विचारो में गहनता, मौलिकता होती है, उन व्यक्तियो के विचारो की आलोचना भी सहज रूपसे होती है। पर महान

व्यक्ति उनकी ओर ध्यान न देकर अपने सही लक्ष्य की ओर निरन्तर वढते है। गुरुदेवश्री का दृढ मन्तव्य है कि व्यक्तित्व निन्दा से नही, निर्माण से निखरता है। जो उनकी आलोचना करते या प्रशसा करते है, वे दोनो से समान प्रेम करते है। उनके निर्मल मानस पर आलोचना और स्तुति का कोई प्रभाव नही पडता। प्रशसा करनेवाले को वे कहते है—तुम्हारा स्नेह है इसलिए ऐसा कहते हो; और निन्दा-आलोचना करनेवाले को कहते है—तुमने मुझे समझा नही है। तुम्हारा विरोध मेरे लिए विनोद है। अनुकूल परिस्थिति मे मुस्करानेवाले इस विश्व मे वहुत मिलेगे, पर प्रतिकूल परिस्थिति मे भी जो गुलाव के फूल की तरह मुस्करा सके वही महान कलाकार है। गुरुदेवश्री अपनी मस्ती में झूमते हुए कभी-कभी उर्दू के शायर का एक शेर सुनाया करते है :

मजिले हस्ती में दुश्मन को भी
अपना दोस्त कर।
रात हो जाए तो दिखलावे
तुझे दुश्मन चिराग।

कितना सुन्दर, कितना मधुर और कितना सन्तुलित है उनका विचार।

वाणी का जादूगर :

चीनी भाषा के सुप्रसिद्ध धर्मग्रन्थ ताओ-उपनिषद् में एक स्थान पर कहा है, "हृदय से निकले हुए शव्द लच्छेदार नही होते और लच्छेदार शव्द कभी विश्वास लायक नही होते।"

हृदय की गहराई से जो वाणी प्रस्फुटित होती है उसमें सहज स्वाभाविकता होती है, जिस प्रकार कुएँ की गहराई से निकलनेवाले जल मे शीतलता भी सहज होती है, उष्मा भी सहज होती है और निर्मलता भी। जो वाणी सहज रूप से व्यक्त होती है वह प्रभावशील होती है। जो उपदेश आत्मा से निकलता है वह आत्मा को स्पर्श करता है, जो केवल जीभ से ही निकलता है वह अधिक प्रभावशील नही होता, हृदय को छू नही सकता, चूंकि उसमें चिन्तन, मनन और आचार का वल नही होता।

साधारण व्यक्ति की वाणी वचन है और विशिष्ट विचारको की वाणी प्रवचन है। क्योकि उनकी वाणी में चिन्तन, भावना, विचार और

जीवन का दर्शन होता है। वे निरर्थक बकवास नही करते, किन्तु जो भी वोलते हैं उसमे गहरा अर्थ होता है, तीर के समान वेधकता होती है। एतदर्थ ही सघदासगणी ने वृहतकल्प भाष्य मे कहा है

गुणसुट्ठयस्य वयण घय सरिसित्तुव्व पावओभवइ
गुणहीणस्स न सोहइ नेहविहूणो जहपईवो

गुणवान व्यक्ति का वचन घृत-सिंचित अग्नि के समान तेजस्वी और पथप्रदर्शक होता है जव कि गुणहीन व्यक्ति का वचन स्नेहरहित दीपक की भाँति निस्तेज और अधकार से परिपूर्ण।

श्रद्धेय सद्गुरुदेव जव बोलना प्रारभ करते है तव समस्त सभा मत्र-मुग्ध हो जाती है। श्रोता का मन और मस्तिष्क उनकी प्रवचनधारा मे प्रवाहित होने लगता है। आपकी वाणी मे हास्यरस, करुणरस, वीर रस और शान्त रस सभी रसो की अभिव्यक्ति सहज रूप से होती है। आपको किञ्चित मात्र भी प्रयत्न करने की आवश्यकता नही होती। वक्तृत्व कला आपका सहज स्वभाव है। आपकी वाणी में मधुरता, सहज सुन्दरता है, भावो की लडी, भापा की झडी और तर्कों की कडी का ऐसा सुमेल होता है कि श्रोता झूम उठते हैं। आत्मा, परमात्मा, सम्यक् दर्शन, स्याद्वाद जैसे दार्शनिक विपयो को भी सहज रूप से प्रस्तुत करते है। श्रोता ऊवता नही, थकता नही। आपका प्रवचन सुलझा हुआ, अध्ययनपूर्ण और सरस होता है। इसीलिए लोग आपको वाणी का जादूगर कहते हैं। किस समय क्या बोलना, कैसे वोलना और कितना बोलना यह आपको ध्यान है। आपके प्रवचनो में नदी की धारा की भाँति गति है और अग्नि-ज्वाला की तरह उसमें आचार-विचार का तेज व प्रकाश परिपुष्ट है। आपकी मधुर व जादूभरी वाणी से सामान्य जनता ही नही, किन्तु साक्षर व्यक्ति भी पूर्ण रूप से प्रभावित होते है। आप जहाँ भी जाते है वहाँ की जन-वोली में प्रवचन करते है। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपमे विचारो को अभिव्यक्त करने की कला गजब की है। आपकी वाणी मे ओज है, तेज है और शान्ति है। वस्तुत आप वाणी के कलाकार है।

सद्गुरुदेव के जीवन की हजार हजार विशेपताएँ है, उन सभी विशेषताओ को अकित करना सभव नही है। क्या कभी विराट् समुद्र को नन्ही सी अँजलि में भरा जा सकता है?

प्रस्तुत पुस्तक :

राजस्थान केसरी 'जीवन और विचार' पुस्तक को प्रारभ से अन्त तक मैंने पढा है। लेखक ने गुरुदेवश्री के जीवन और विचार के सम्बन्ध मे प्रकाश डालने का प्रयास किया है। यह प्रयास काफी सफल रहा है। सक्षेप मे गुरुदेवश्री के जीवन के पावन प्रसग और विमल विचारो का सुन्दर सकलन इसमे हुआ है, और साथ ही ऐसे अनेक नये तथ्य भी सामने आए है जो केवल इतिहास की ही थाती थी। कुछ विचार काफी तेज-तर्रार भाषा में व्यक्त किये गये है, उन्हे मधुर भाषा मे भी रखा जा सकता था। सभव है कुछ व्यक्तियो को उन प्रसगो को पढकर विचार आए। मेरा उनसे सानुरोध निवेदन है कि उन बातो को वे ऐतिहासिक दृष्टि से ही पढने का प्रयास करे। उस युग के प्रकाश मे ही उन घटनाओ को देखेंगे तो उन्हे नये तथ्य ज्ञात होगे। युग हमेशा बदलता रहता है। पहले का युग था स्वय के विचारो व सिद्धान्तो का मण्डन और दूसरे के विचारो का खण्डन। आज का युग है समन्वय का। युग बदल चुका है, पर ऐतिहासिक घटनाएँ तो युग के साथ बदली नही जा सकती थी। इसलिए उन घटनाओ को इसमें रखा गया है। लेखक का उद्देश्य केवल जीवन सम्बन्धी सत्य तथ्यो के सकलन का रहा, किसी पर आक्षेप करना और आलोचना व निन्दा करना नही है।

श्रद्धेय सद्‌गुरुदेवश्री अपने दीक्षा के पचास वर्ष पूर्ण करके इक्कावनवे वर्ष मे प्रवेश कर चुके हैं। मेरी योजना इस सुनहरे अवसर पर एक विराटकाय अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने की थी, किन्तु भगवान महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी समारोह का वर्ष होने से महावीर सम्बन्धी ग्रन्थो के लेखन में व्यस्त रहने से वह योजना कुछ समय के लिए स्थगित रखी गई, और मेरी प्रेरणा से राजेन्द्र मुनि ने प्रस्तुत ग्रन्थ तैयार किया है और इसका सम्पादन स्नेहमूर्ति लक्ष्मण भटनागरजी ने किया है। लेखक का यह प्रथम प्रयास है, इसलिए भूले होना स्वाभाविक है, पर उसका उत्साह अत्यधिक है, इसलिए आशा है वह भविष्य में इससे भी अधिक शानदार कृति साहित्य-ससार को समर्पित करेगा।

देवेन्द्र मुनि

राजस्थानी स्थानकवासी,
जैन उपाश्रय,
अहमदाबाद

लेखकीय

गुलाब और गध . . गध और गुलाब–परस्पर पूरक अस्तित्व के वाहक हैं। सुमन ही सौरभ का जनक है और सौरभ मे ही सुमन की समस्त गरिमा सन्निहित रहती है। इन दो दृश्य और अदृश्य तत्वो मे अद्‌भुत एकत्व है, फिर भी इनके मध्य जो अन्तर है, जो पार्थक्य है, वह चिन्त-नीय है, अधिक प्रेरक भी है। पुष्प का जीवन भला है ही कितने दिन का? गध के सम्बन्ध मे बात इससे कुछ भिन्न ही है। यह जो एक बार मनोमस्तिष्क में अपने अनुभव का आनन्द सम्प्रेषित करती है, तो वह भोक्ता की स्मृति का स्थायी अग बन जाती है। फूल नश्वर है, सुगध अमर है। यही गध पुष्प की सर्वस्व है। गुलाब से गध छिन जाय तो उसका गुलाब कहलाने का अधिकार कहाँ रह जाता है? व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व का भी कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है। व्यक्ति तो मरणधर्मा होता है, पर उसमें अमरत्व भरा तत्त्व उसका व्यक्तित्व ही होता है। व्यक्ति ससीम है, क्षर है, नश्वर है, लेकिन उसका व्यक्तित्व असीम हो सकता है, व्यापक हो सकता है, अमर हो सकता है। यही वह गरिमा है जो व्यक्ति के स्तर को उन्नत कर देती है। जीवनपर्यन्त व्यक्ति के लिए यह प्रतिष्ठा का आधार रहता है और इसके उपरान्त भी व्यक्तित्व उसे स्मृतिजगत में अमर बनाये रखता है। व्यक्ति का वास्तविक मूल्याकन व्यक्तित्व को ही अपना आधार चुनता है। ऐसी स्थिति में रिचर का यह दृष्टिकोण कितना सत्य प्रतीत होता है—"व्यक्तित्व की सदा रक्षा करनी चाहिये, उसका सर्वत्र आदर करना चाहिये, क्योकि वही सभी अच्छाइयो की जड है।"

व्यक्तित्व की श्रेष्ठता ही किसी को सामान्यजनो से ऊपर उठाकर उसके लिये विशिष्ट स्थान बना देती है। कालान्तर में उसकी (व्यक्तित्व की) वास्तविकता का लक्षण उसे सारे समाज और देश में व्याप्त कर देता है। जो व्यक्ति आत्म-अध्ययन कर लेता है, अपनी त्रुटियो से लडता है, स्वानुशासन में दृढ होता है, जगत् कल्याण के महामत्र का उपासक होता है, आदर्शोंके प्रति आस्थावान होता है, मन पर नियमन करने मे समर्थ होता

है, वही श्रेष्ठ व्यक्तित्व का स्वामी हो सकता है। वही स्वय को आलोकित कर सकता है और अन्यो के लिए आलोक प्रसारित कर सकता है।

परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री राजस्थान केसरीजी म० ऐसे ही अर्थ में व्यक्तित्व के धनी विशिष्ट सन्त हैं। आपश्री राजस्थान के आचार्य सम्राट् श्री अमरसिहजी म० सम्बद्ध सम्प्रदाय अथवा स्थानकवासी समाज के ही नही, सबके है। यह व्यापकता और विशाल हृदयता आपके व्यक्तित्व की गरिमापूर्ण विशेषता है। आपश्री के व्यक्तित्व को प्रान्त अथवा सम्प्रदाय विशेष की परिधि मे आबद्ध कर देखने का प्रयास हमारी ही सकीर्णता का द्योतक होगा। वैसे श्रमण-सघ के आप विशिष्ट सन्त है। प्रारभ से ही श्रमण-सघ के निर्माण मे आपकी अति प्रमुख भूमिका रही है। उपाधियो और औपचारिक प्रतिष्ठा-प्राप्तिसे दूर रह कर सघ-सेवा में रत रहना आपकी अन्यतम विशेषता रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री की साधना के ५० वर्ष सम्पन्न हो चुके है और इक्कावनवाँ वर्ष चल रहा है। अपने इस मूल्यवान समय का सदुपयोग आपश्री ने गुरु-सेवा, स्थानकवासी जैन समाज का विकास, जन-जन का कल्याण, सघ-एकता, ध्यान-तप, ज्ञान-दर्शनचारित्र में किया है। गुरुदेवश्री के आचरण-व्यवहार और व्यक्तित्व-कृतित्व का अध्ययन करने का विगत १० वर्षों से मेरा भी सौभाग्य रहा है। मेरा पठन-पाठन, अध्ययन-मनन गुरुदेवश्री के चरणाश्रय मे ही हुआ है। जो भी मेरी प्रगति है वह आपश्री के आशीर्वादो का ही क्रियान्वित रूप है। वैसे भी इस आश्रय-काल के पूर्व का गुरुदेवश्री का जीवन-काल मेरे लिए मात्र श्रवण का ही विषय रहा है। आपश्री की विशेषताएँ अनुभव की और अनुकरण की विषय है, उनका विवेचन-विश्लेषण और वह भी मुझ जैसे के लिए सरल कार्य नही।

तथापि साहस कर ही लिया है। पूज्य गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेखबद्ध करने की अन्त प्रेरणा ही इस कार्य के लिए मेरी शक्ति रही है। आपश्री उज्ज्वल आलोक प्रसारित करनेवाले भव्य उल्कावत् है। उस प्रचण्ड आलोक का तो दर्शन ही किया जा सकता है। "गिरा अनयन, नयन बिनु बानी" — नेत्रहीन वाणी उस दर्शन के आनन्दसे वचित रहती है, तो बेचारी फिर वह उसका वर्णन कैसे करे? किन्तु प्रेरणा ने हार नही मानी और प्रयत्न चलता रहा। उसी का परिणाम है कि सुधी पाठको के

हाथो में आज यह ग्रथ है। ग्रथ की प्रत्येक श्रेष्ठता मे गुरुदेवश्री की विशेषता ही झलकेगी और प्रत्येक दोप मे मेरी अपनी दुर्बलता।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में पूज्य गुरुदेवश्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री की प्रबल प्रेरणा एवं दिशा-निर्देश मिलता रहा जिसने मुझे निरन्तर इस कार्य में अग्रसर किया है और मेरे मार्ग को सरल किया है। यह मेरे इस नवीन लेखकीय जीवन का अविस्मरणीय प्रसग रहेगा। मै कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरे अग्रज श्री रमेश मुनिजी ने मेरे अन्य कार्योंमे हाथ वँटाकर इस कार्य में अग्रसर होने की जो सुविधा मुझे प्रदान की है उसे भी भुलाया नही जा सकता। सुयोग्य सम्पादक प्रो० लक्ष्मण भटनागर ने पाण्डुलिपि मे आवश्यक सशोधन-सम्पादन कर जो सहयोग दिया है, उसके लिए मै आभार मानता हूँ। पुस्तक का रूप कैसा बन पाया है इसका निर्णय तो पाठक ही कर पाएँगे।

राजेन्द्र मुनि

राजस्थानी जैन स्थानक
हठीभाई की वाडी के सामने, दिल्ली गेट के वाहर
अहमदावाद
१० अक्तूबर, १९७४

आलोक-रश्मियाँ

प्रकाशकीय ५
भूमिका ६
लेखकीय १३

बहिरंग खण्ड

व्यक्तित्व-गरिमा ३
जीवन : एक पर्यवेक्षण ९
जीवन – पूर्वाह्न २०
दीक्षा – देहरी २८
ज्ञान – साधना ३१
समृद्ध परम्परा के संदर्भ में ३५
चातुर्मास डायरी ४१
प्रभाव : प्रेरणा ९२
अगाध सहिष्णुता की मूर्ति ९४
सत्यनिष्ठ निर्भीकता ९६
अहिंसा-आधारित आत्मबल १००
हृदय-परिवर्तन की अमोघ क्षमता १०४
पतित–उद्धारक शक्ति के स्वामी १०६
"जब शेर मिला था" १०७
'आध्यात्मिक चमत्कार' १०९
विमर्श : विशिष्ट जनों से १११
प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू १११
सर संघ संचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी) ११२
गृहमंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंत ११४
सरदार गुरुमुख निहालसिंह ११४
जगद्गुरु शंकराचार्य ११५
चारित्र-चक्र-चूडामणि – आचार्य शान्तिसागरजी ११७
आगम प्रभावक पुण्यविजयजी महाराज ११८
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ११८
मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाडिया ११९
राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद १२०
पं० सुखलालजी संघवी १२१

प० अगरचन्दजी नाहटा १२१
भाऊसाहब वर्तक १२१
श्री चन्दनमल वैद १२२
श्री जैनेन्द्रकुमार १२३
श्री डी० पी० यादव १२४
एक बौद्ध भिक्षु १२५
श्री मोरारजीभाई देसाई १२६
और भी . १२७

अन्तरंग खण्ड

विचार-वैभव १३१

वाणी-वैभव के अद्भुत अधिपति १३१, समय का सदुपयोग १३४, मन की धारणा १३९, मनोनिग्रह की कला १४३, मरण आत्मा का अलकरण १४८, अपरिग्रह. जगत-कल्याण का आग्रह १५१, सन्तोप-सृष्टा शुद्ध कर्तव्यनिष्ठा १५८, निश्चिन्तता के विधायक सद्गुरु १६२, धर्म का मर्म १६६, मुस्कान जिन्दगी की १७१, जीना—एक कला १७४, सर्वोच्च आराधना. सयम-साधना १७८, विवेक मानव मन का शृगार १८३, जीवन का अमृत सत्याचरण १८७, मानवता धर्म और व्यक्तित्व की अनिवार्यता १८९।

मुक्ता-प्राप्ति

धर्म क्या और क्यो? १९५, साधुत्व १९६, महापुरुष कौन? १९६, श्रद्धा १९७, प्रेम १९७, सत्य १९८, सकट १९८, अभय १९९, जीवन १९९, प्रसन्नता २००, आशा-निराशा २०१, सेवा २०२, शान्ति २०२, मनुष्य का रूप २०३, सम्पत्ति-विपत्ति २०३, सफलता का रहस्य २०४, मन मनुष्य की सम्पत्ति २०५, यौवन २०६, मौन २०६, सकल्प २०७, सहनशीलता २०८, पाप और पापी २०९, उद्यम और नियति २०९, दो कान एक मुख २१०, दान, मान और अभिमान २१०, नम्रता २११, सहानुभूति. वास्तविक स्वरूप २११।

परिशिष्ट

पूज्य अमरसिंहजी म० के पश्चात् आचार्य परम्परा का विकास २१५
राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी का सत परिवार २२३
राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी का सती समुदाय २२६
गुरु-गुणगान २३६
भगवान महावीर की १००८ सूक्तियाँ विद्वानो की दृष्टि में २४६

राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

जीवन और विचार



राजेन्द्र मुनि शास्त्री, काव्यतीर्थ

बहिरंग खण्ड

व्यक्तित्व-गरिमा

अमिताभ-तेज मण्डित मुखमण्डल, तप पूत स्थूल देह-यष्टि, हृदय-कल्पकारी गुरुगंभीर, वात्सल्यवती कोमल वाणी, अलौकिक सिद्धि का स्वामित्व, नीर-क्षीर-विवेक के धनी, संसार-जल में पुरईन के पात सदृश जल से सर्वथा अप्रभावित ही नही, अपने शुभ स्पर्श से स्वयं जल को धन्य कर देनेवाले अस्तित्व का वहन — ऐसा ही कुछ महिमायुक्त चित्र है गुरुवर परन्तप राजस्थान-केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज का. . . किन्तु नही, उस अलौकिक व्यक्तित्व के अद्‌भुत प्रभाव को इस शब्द-छबि मे मर्यादित कर लेने का प्रयास विफल होता जा रहा है—परास्त होता जा रहा है। यह पराभव लेखक के लिये खेद का नही, गौरव का हो विषय है, क्योकि इस हार और असमर्थता का कारण है गुरुदेवश्री की अपरिमेय दिव्यता, परिधिहीन भव्यता। यह आभास बार-बार विभोर किये देता है कि यह दिव्य चरणाश्रय इस जन को कोटि-कोटि जन्मो मे अर्जित सुकृत के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है।

'व्यक्तित्व' मनुष्य के जीवन की उपलब्धियो को मूल्याकित कर प्रस्तुत कर देनेवाला एक व्यक्त साधन है। व्यक्ति की कर्मक्षेत्र मे अनेक आकाक्षाएँ, कल्पनाएँ और योजनाएँ रहती है, किन्तु उसके व्यक्तित्व का धन उसका कृतित्व ही बन पाता है। कल्पनाएँ गौण रह जाती है—जब तक कि क्रियान्वित नही हो जाती। चिन्तनीय प्रसंग एक और भी है—स्वार्थाधारित कर्मपुञ्ज महत्त्वहीन हो कर सर्वहितकारी व्यक्तित्व के विकास मे योग नही दे पाते, अपितु बाधक ही अधिक रहते है। लोकहित की कामनाओ से अनुप्रेरित कर्मयोगी विरले ही होते है। गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी म० इस गरिमा से अलंकृत सिद्ध है—इस कथन मे रंचमात्र

भी न तो संकोच का अनुभव होता है, और न अतिशयोक्ति का सदेह ही ।

राजस्थान-केसरी :

इस अलकार से गुरुदेवश्री को सम्मानित करने के प्रयास मे समाज ने अपने हृदय की समस्त श्रद्धा और अपार भक्ति-भाव को व्यक्त किया है । प्रतीत होता है कि गुरुवर की प्रतिभा और व्यक्तित्व के साथ सयुक्त होकर यह अलंकार स्वय अलकृत हो गया है, सार्थक हो गया है—इस अलंकार का मूल्य ही जैसे स्पष्टत निर्धारित हो गया है । विपिन-विहारी केसरी अपनी सीमा मे सर्वोच्च सत्ता का स्वामी, सर्वश्रेष्ठ और 'एकमात्र' होता है । 'राजस्थान-केसरी' से भी यही सकेत अभीष्ट है । आध्यात्मिक क्षेत्र मे आप केसरी-वत् असाधारण, सर्वोच्च, एकमात्र एवं श्रेष्ठतम है । 'केसरी', प्रस्तुत प्रसग मे आध्यात्म-बल का प्रतीक व इस क्षेत्र मे अर्जित गौरव, यश और विक्रम का द्योतक ही है ।

वाणी-चमत्कार गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व की एक अन्यतम विशेषता है । यही वह चमत्कार है, जिसके कारण मात्र कुछ क्षण का श्रोता सदा-सदा के लिए आपका अनुगामी हो जाता है । आपश्री की वाणी मे पारस-स्पर्श है, जो लौह-चित्त को मूल्यवान, कान्तिपूर्ण स्वर्ण मे परिणत कर देता है । गुरुवर पुष्कर मुनिजी महाराज साहब वस्तुत 'वाणी' के प्रभु है । वाणी का प्रभु वह है, जिसके स्वर मे युग मुखरित होता है, जिसके प्रवचन से वर्तमान की समस्याओ के निराकरण के निश्चित पथ सूझते हो, एव संस्कृति व सभ्यता प्रतिनिधित्व पाती हो, ओज और तेज से सम्पन्न हो, जिसमे जोश के साथ-साथ होश भी हो । वह चेटक (जादू) पूज्य गुरुदेव की वक्तृता मे विद्यमान है, जिससे हृदय का उपमान पत्थर के स्थान पर कोमल मोम हो जाता है । सामान्यतः आपश्री की समकक्षता का वक्ता अन्यत्र दुर्लभ ही है ।

जैन-समाज की इस अनुपम विभूति का नाम 'पुष्कर मुनि' आपश्री के गुरुवर महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज साहब

द्वारा प्रदत्त है, जिससे स्पष्ट है कि इस नामकरण के रूप मे श्रद्धेय महाराज साहब ने आपश्री की अद्‌भुत व अपूर्व शक्ति, सामर्थ्य और प्रतिभा के सम्बन्ध में अपने हृदयस्थ विश्वास को ही व्यक्त किया था ।

'पुष्कर मुनिजी' ..कितनी अर्थपूर्ण संज्ञा के स्वामी है आपश्री ! आपकी उपलब्धि जैन-समाज को कृतकृत्य कर देने मे अपर्याप्त नही । प्रसिद्ध है कि :

'पुष्करं दुर्लभं लोके।'

जब लोक मे ही पुष्कर की प्राप्ति दुर्लभ मानी जाती है, तब राजस्थान प्रदेश के जैन-समाज के लिए वह 'सुलभ' हो गया, यह समाज का अहोभाग्य नही तो और क्या है ! यह दुर्लभ रत्न-प्राप्ति समाज के अभ्युदय और प्रगति के पक्ष मे जो महिमामय नेतृत्व प्रदान कर रही है, उससे प्रत्येक सामाजिक गद्‌गद है, उपकृत है । समाज के सुकृत ही इस उपलब्धि के रूप मे प्रकट हुए है । यह सत्य है कि समाज को शताब्दियो के तप के फल-स्वरूप ही ऐसी विभूतियो का सान्निध्य-लाभ होता है ।

सर्वविदित है कि वैष्णव-समाज मे 'पुष्कर' की मान्यता 'तीर्थराज' अथवा 'तीर्थ-गुरु' के रूप मे स्वीकार की गयी है । वस्तुत सम्पूर्ण तीर्थो की यात्रा का फल 'तीर्थ-गुरु' की यात्रा कर लेने पर ही सम्पन्न और सफल माना जाता है, अन्यथा तीर्थ-भ्रमण का समस्त पुण्य निष्फल और प्रभावहीन रह जाता है। पूज्य गुरुदेव के विषय मे इसी प्रकार की गरिमा स्वीकारते हुए हमे तनिक भी अतिशयोक्ति की प्रतीति नही होती । आध्यात्मिक साधको के लिए यह लगभग अनिवार्य-सा है कि मोक्ष-लाभ की प्रयोजन-पूर्ति के लिए श्री पुष्कर मुनिजी के चरणाश्रय को स्वीकारे, आपश्री की प्रसाद-प्राप्ति करे ।

देववाणी संस्कृत मे 'पुष्कर' का समानार्थक शब्द 'मेघ' है । मेघ जल-वर्षण द्वारा प्यासी धरती की प्यास बुझाता, तप्त जगत् को शीतलता का सुख देता, वसुन्धरा को सरस बना कर 'अन्नदा'

का रूप देता, उसके माता-रूप को समृद्ध करने मे सहयोग करता और पृथ्वी तलपर नाना वृक्ष-लताओ को पल्लवित, पुष्पित और फलित करता है। आपश्री भी लोक-रंजन मे मेघावली से कम नही है। पूज्य गुरुदेव जिनवाणी के निरन्तर वर्षण से जन-जीवन को शीतलता, शान्ति, निर्मलता और उज्ज्वलता प्रदान करने मे सतत व्यस्त है।

अस्तु, 'पुष्कर मुनि' की संज्ञा आपश्री के हेतु सर्वथा समीचीन है। यही नही, इस विभूति के लिए इसके अतिरिक्त अन्य सार्थक संज्ञा वस्तुतः संभव ही नही है। महास्थविर श्रद्धेय श्री ताराचन्दजी महाराज साहब का पूर्वानुमान कितना सत्य और तथ्यपूर्ण सिद्ध हुआ?

श्रद्धेय गुरुदेव चिर अतीत से ही समाज मे अगाध, असीम श्रद्धा के केन्द्रबिन्दु बने रहे है। मुझे अपनी किशोर वय का एक प्रसंग आज भी स्मरण है। पूज्य माता धापकुँवरजी आपश्री की यशोगाथा सुनाया करती थी। इस अद्भुत गाथा से प्रेरित हो मेरा मन आपश्री के दर्शनार्थ लालायित रहने लगा। इस सहज जिज्ञासा से अभिभूत चित्त अत्यन्त अशान्त रहता। दुर्भाग्य ही था कि यह उत्कट कामना पर्याप्त दीर्घकाल तक पूर्ण नही हो पायी। मेरी आकुल-व्याकुल स्थिति कुछ ऐसी थी कि बार-बार सोचता-कब यह अवसर मिलेगा कि गुरुदेव के श्री चरणो मे समर्पित हो विनय कर सकूँ!

दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्ति
कर्णौ च तृप्तौ न च चक्षुषी मे
तयोर्विवादं परिहर्तु कामः
समागतोऽहं तव दर्शनाय ॥

अर्थात् आपश्री का गुण-श्रवण तो मैंने बहुत किया, किन्तु नेत्रो को दर्शन-लाभ न हो पाया। अत नेत्रो और कर्णो मे विवाद उत्पन्न हो गया है और उसे सुलझाने हेतु ही आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ हूँ।

विलम्ब से सही, अन्ततः यह सुयोग भी आया ही। इस अप्रतिम साधक-जलद के दर्शन से मेरा मन-मयूर नाच उठा। सौभाग्य के वे परम पावन पल कितने स्वर्गीय, सुखद, सुन्दर, मादक-मधुर थे, जब चिर तृषा को सुधा-सागर की प्राप्ति हुई थी। बात यो बनी कि अजमेर नगर मे सन्त शिखर-सम्मेलन का आयोजन था, माताजी तथा भ्राताश्री रमेशकुमारजी के संग इस अवसर पर मैं भी अजमेर गया। जैसा सुना था—महाराज साहब के प्रति समाज की भक्ति और श्रद्धा का वैसा ही अगाध भाव मैंने पाया भी। सम्मेलन मे अपार जन-समूह उमड़ पडा था। गुरुदर्शन को चिरकाल से छटपटाते, आकुल-व्याकुल मेरे नेत्रो को यह जमघट घनघटा की ओट-सा प्रतीत हुआ, किन्तु क्षणिक ही। चिरभिलषित-चिरप्रतीक्षित वह क्षण आ ही पहुँचा, जब निकट से महाराज साहब के दर्शन का लाभ लेकर अतृप्त नेत्रो को अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव हुआ। युग-युगान्तरो से चन्द्रिका के प्यासे मेरे युगल नयन-चकोर एकटक गुरुदेव के मुखचन्द्र की ओर निहारते ही रहे। सुधाकेन्द्र चन्द्र से नयनो की राह सुधा हृदय को आप्लावित करने लगी। उस अगाध सुधासिन्धु मे मेरा मन-मराल मुखरित हो उठा।

तेज-पुञ्ज के सामीप्य मात्र से ही मन मे एक अद्भुत शीतलता और पवित्रता का संचार हो गया। उस समय आपश्री समाज की समस्याओ को सुलझाने मे, विशृंखलित और अस्त-व्यस्त शक्ति को सुबद्ध रूप देकर उपयोगी बनाने के उपाय खोजने मे, गण्य-मान्य सज्जनो से विचार-विनिमय करने मे तल्लीन थे। अपने समक्ष दीन भक्ति-भाव से सविनय किशोर (मुझ) को खडा देख आपश्री के हृदय मे सहज स्नेह की हिलोर उठी, जो अधरो पर प्रसन्न मुस्कराहट वन कर बिखर गयी। मेरी ओर आपश्री उन्मुख हुए। उस कृपा-कटाक्ष के निक्षेप मात्र से मैं कृतकृत्य हो गया। वे अमूल्य क्षण इस जन्म मे तो क्या, जन्म-जन्मान्तरो मे भी मेरे लिए कभी विस्मृति का विषय नही वन सकेगे।

इस मधुर सस्मरण की साक्षी मे आज मुझे एक पाश्चात्य दार्शनिक की इस उक्ति मे यथार्थ की प्रतीति होती है "जो व्यक्ति छोटो से मिलकर उनका आदर-सत्कार करता है, उनसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता है, वही महापुरुष हो सकता है।"

'महापुरुष' विशेषण के सर्वथा उचित और अधिकारी विशेष्य पूज्य गुरुदेव का परिचय प्रस्तुत करना मेरे जैसे अकिञ्चन साधक के सामर्थ्य से परे की वस्तु है। निस्संदेह रवि-रश्मियो की भाँति आपश्री की प्रखर प्रतिभा, गिरीन्द्राभ गरिमा और कीर्ति तो स्वयंप्रभ है, यही नही उनका अवाध संचरण समाज मे सर्वत्र है। भला, आलोक भी कही व्याख्या की अपेक्षा रखता है! तथापि विनम्र शिष्य का यह विनीत प्रयास है। ये श्रद्धा-सुमन है, जो 'सुमन' की ओर से श्रद्धेय गुरुदेव के पूज्य चरणो मे सभक्ति समर्पित है।



जीवन : एक पर्यवेक्षण

इस धराधाम मे असख्य आत्माएँ मानव–देह धारण कर जीवन-यात्रा सम्पन्न करती आयी है, कर रही है, करती रहेगी। यह क्रम असमाप्य है, अनन्त और अछोर है। विचारणीय यह है कि मानव–देहधारी अपने इस समान धर्म के कारण क्या सभी सर्वथा एकरूपता का ही वहन करते है? नही–ऐसा नही होता। यही कारण है कि असंख्य मानव ऐसे है, जिनकी सामाजिक महत्त्व-होनता, अति सामान्यता और मात्र 'रुटीन' जीवन-यापन की भूमिका न तो उनके जीवन-काल मे ही किसी विशेष उपलब्धि का आधार बन पाती है और न ही किसी विधि मरणोपरान्त ही वे किसी स्मरणीय तत्त्व को छोडकर जा पाते हैं। अज्ञान का अधकार उनकी कीर्ति-छाया को उनका अनुसरण नही करने देता। संसार के मरुस्थल मे उनकी जीवन-यात्रा के पद-चिह्न समय की एक हल्की-सी बयार से ही लुप्त हो जाते है। धन्य है वे जिनके पद-चिह्न अमिट रहते है! यही नही, जिनके पद-चिह्नोको चिरस्थायी बनाये रखने का प्रबल प्रयास युग-युग मे किया जाता है और जो अपने यशोगात्र मे सदा-सदा के लिए अजर-अमर हो जाते है। यही तो देवत्व नही है!

निश्चित है कि इस महती गरिमा व महिमा पर स्वामित्त्व स्थापित कर सकने मे सामर्थ्यवान विभूतियो का अवतरण शता-ब्दियो मे ही कभी हो पाता है। कोटि-कोटि युगो के शतधा तप से ही धरती ऐसी श्रेष्ठ सन्तति का गौरव प्राप्त कर पाती है। यह तथ्य और ध्रुव सत्य है कि ये विभूतियाँ ही मानव-संस्कृति को अजस्र रखते हुए, उसे युगानुरूप ढालते हुए, समय के संग-संग अग्रसर करती रहती है। प्रतियुग मे मानव-जाति के लिए उचित, आदर्श

मार्ग का इगित करती है और उत्तर मे समग्र मानव-समाज श्रद्धा-सहित, साभार इन विभूतियो के पूत चरणो मे नमित होता है। ये प्रणम्य विभूतियाँ मानव-मन के विकारो को शमित कर, उन्हे पशुत्व की दिशा से विमुख कर मानवता की ओर उन्मुख कर देने की अपार और अलौकिक क्षमता पर अधिकार रखती है। आश्चर्य प्रकट करने का अधिकार हमे नही, किन्तु यह तथ्य है कि इन सदेह विभूतियो की अपेक्षा इनके 'नाम' मे यह महिमा शत-शत गुनी अभिवर्धित रूप मे प्रकट होती है तभी तो शताब्दियो तक उनकी स्मृति मात्र ही कोटि-कोटि मानवो का उद्धार करती चलती है। ये विभूतियाँ मानव-संस्कृति की अजर सम्पत्ति है और रहेगी।

ऐसी विभूतियो का चरित-गान भी एक विशिष्ट पुण्य-कर्म, अपितु एक सहज धर्म है। मेरा मन भी इसी कारण इस दिशा मे लालायित हो उठा है। परम श्रद्धेय राजस्थान-केसरी गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी महाराज के गहन गरिमायुक्त चरित के बखान को लेखक की कलम ने अपनाया तो है, परन्तु महत्त्व-प्रतिपादन और पूज्य गुरुदेव के चरित की अलौकिक विशिष्टताओ का चित्रण किस सीमा तक कर पायेगी, कुछ निश्चय नही।

जीवन-चरित्र का बखान करना मेरा संकल्प है, और वह भी पूज्य गुरुदेवश्री का जीवन-चरित्र! अत: स्वयं 'जीवन' के सम्बन्ध मे परिचयात्मक व्याख्या कदाचित् इस स्थल पर अप्रासगिक नही होगी। जीवन क्या है? यह एक अनबूझ पहेली है, जिसे सुलझाने का प्रयोग युग-युग मे अनेक चिन्तको द्वारा होता रहा है, किन्तु उसकी अपूर्णता का द्योतक ही यह तथ्य है कि आज भी विचारको के लिए यह पहेली ज्यो की त्यो विकट बनी हुई है। विचारक जीवन के स्वरूप को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते है और उसका वैसा ही स्वरूप वे स्वीकार भी करते है। मै इसे यो स्पष्ट करना चाहूँगा कि जीवन को दार्शनिक-गण चिन्तन मानते है, तो साधक-गण इसे एक साधना मानते है, कवि के लिए जीवन एक सरस काव्य है, तो पराक्रमी

पुरुषार्थियोके लिए जीवन एक संघर्ष है । जर्मनी के गंभीर चिंतनशील विद्वान गेटे के अनुसार तो जीवन अमरत्वका शैशव है (Life is childhood of immortality) । शापनहॉवर के अनुसार– ‘ Life is nothing, but postponement of death ’ अर्थात् मृत्यु का स्थगित होते रहना ही जीवन है । शेक्सपीयर की धारणा कुछ अन्य ही रूप लिये हुए है । उनका कथन रहा है– ‘Out, Out brief candle, Life is but a walking shadow.’–क्षणिक प्रकाश देने वाले दीपक बुझो ! जीवन तो केवल चलती फिरती छाया मात्र है । भारतीय दर्शन में जीवन की शुद्धता का महत्त्व प्रतिपादित है । हमारे आचार्यो के अनुसार जीवन है ‘ दोष-विवर्जितं यत् ’ – दोषरहित जीवन ही वास्तविक जीवन है । उपर्युक्त व्याख्याएँ जीवन के गूढ प्रसंग के अमुक-अमुक पार्श्वो के खण्ड-परिचय है । कदाचित् वे परस्पर पूरकता के सम्बन्ध की भी अपेक्षा रखते है ।

चिन्तको-विचारको का जीवन के प्रति यह अध्ययन हमारा सहायक हो सकता है । वैसे वर्गीकरण के आधार पर जीवन को समझना कदाचित् अधिक सरल, अधिक स्पष्ट हो सकेगा । एक मान्य वर्गीकरण के अनुरूप जीवन को तीन कोटियो मे रक्खा जा सकता है .

(क) आसुरी जीवन ।

(ख) दैवी जीवन ।

(ग) आध्यात्मिक जीवन ।

आसुरी जीवन :

इस कोटि मे जीवन का वह स्वरूप है जो सामान्यत दृष्टिगत होता है । भोग-विलास, राग-द्वेप, सत्ता-महत्ता के दल–दल में ग्रस्त तथाकथित सासारिक सुखोपभोग का जीवन ही आसुरी जीवन का रूप है । व्यक्ति प्रतिपल इन सुखो का अभिलापी रहता है, ये ही उसके जीवन-यात्रा के लक्ष्य वने रहते हैं । इन्ही की प्राप्ति-अप्राप्ति, सफलता-असफलता का आधार बनती है । प्रकट रूप मे आसुरी जीवन भोगवाद का घोष है । Eat, drink and be

marry.– इस कोटि के जीवनधारियो का नारा और नारा ही नही, वरन् प्रेरक सूत्र है। हमारे यहाँ पूर्वकाल मे भी इस विशेष दृष्टि से जीवन की महत्ता को देखा गया है। चार्वाक्-दर्शन इसीका प्रतिनिधित्व करता है, जिसका सन्देश है–"यावत् जीवेत् सुख जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृत पिबेत।" यह उस घोर भोगवाद का मन्तव्य है कि देह ही सर्वस्व है। आत्मा का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही। देह के अस्तित्व से ही सुखोपभोग संभव है। अत. इसके ह्रास के पूर्व ही वाछित सुखो की प्राप्ति कर लो। देहावसान सर्वावसान है, सर्वनाश है।

'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।' अतः देह रहते इस माध्यम का समुचित लाभ उठा लेना चाहिये। इस कोटि के चिन्तको का मत रहा है कि जव तक जीओ आनन्द व उल्लास के साथ जीओ। आमोद-प्रमोद के लिए यदि सामर्थ्य अनुमति न दे, तो भले ही ऋण कर लो–इस साधन के लिए कोई भी साधन वर्जित, निषिद्ध और अनैतिक नही। परलोक मे प्राप्त प्रतिकूल परिणामो की आशंका को भी इस विचार-पद्धति मे निर्मूल करते हुए कहा गया है कि 'परलोक' का अस्तित्व ही नही। अत आत्मा न कही से आयी है, न उसे मृत्यु के पश्चात् कही जाना है। अवसान तो सर्वथा और पूर्ण समापन है। अत इस समापन के पूर्व निर्भीक रूप से मनोनुकूल सुखो का येनकेन प्रकारेण उपभोग कर लिये जाने मे ही जीवन की सार्थकता निहित रहती है।

प्रकट है कि इस प्रकार के आसुरी जीवन की वुनियाद है अनन्त कामनाएँ, वासनाएँ, सासारिकताएँ, भौतिक सुखाभिलाषाएँ आदि आदि, जो वस्तुत. मृगमरीचिकाएँ है। अभिलाषाएँ कभी तृप्त नही होती–कभी समाप्त नही होती। एक अभिलाषा की पूर्ति अभिलाषा को समाप्त नही करती, वह अनेक अन्य अभिलाषाओ की जननी वन जाती है। और. . और यह क्रम अटूट बना रहता है। सिसरो की धारणा इस प्रसंग मे कितनी यथार्थवादिनी है कि इच्छाओ की प्यास न कभी बुझती है और न ही वह

कभी पूरी होती है । इस ससीम जीवन मे असीम आकाक्षाओ की भी बडी विचित्र विडम्बना है । अभिलाषा-जन्य असन्तोष समग्र जीवन को चंचलता और अशान्ति का ही प्रसाद तो दे पाता है। मानव के लौकिक और पारलौकिक सभी सुख ध्वस्त हो जाते है। शेष तब भी यदि रह जाते है तो अतृप्ति, असन्तोष, चिन्ता, व्यग्रता और कुल मिला कर करुणाजनक दैन्य । कदाचित् इसी परिणाम के कारण भारतीय मनीषियो ने आसुरी जीवन को निकृष्ट कोटिका जीवन माना है ।

दैवी जीवन :

आसुरी जीवन के विपरीत जीवन की श्रेष्ठ कोटि है – दैवी जीवन। जीवन मे जब सत्य का सहारा हो, अहिसा का आलोक हो, प्रेम का प्रदीप हो, करुणा का कमनीय कुँज हो, संयम का शस्त्र हो, आत्मानुशासन का आधार हो, सज्ञानता का सम्बल हो, तो जीवन श्लाध्य हो जाता है । यही तो जीवन का दैवी रूप है। मानवोचित समस्त सहज धर्मो और गुणो का समुच्चय है— इस प्रकार का जीवन । स्वकेन्द्रीयता से मुक्त होकर मनुष्य भटके पथिको को उचित मार्ग पर अग्रसर करने की क्षमता का प्रयोग करना ही अपने लिए सही रास्ता मानने लगे, तो उसकी मंजिल दैविक जीवन बन जाती है । आत्मा का दीपक उसके मार्ग को आलोकित करता है । शीतल पवन का आँचल उसके श्रमजन्य स्वेदकण पोछता है, आँधियाँ भी आती है, तो उसके मार्ग के काँटो को उडा ले जाती है । अँधकार कभी आता भी है, तो उसका ध्यान शेष जगत से हटाकर उसे आत्मलीन करने के उद्देश्य से ही ।

दैवी जीवन के सद्लक्षण मानव-देहधारी प्राणी को यथार्थ मानव का गौरव प्रदान करते है । न केवल तन से ही, वह मन से भी मानव होकर एक विशिष्ट दिव्यता का अधिकारी पात्र बन जाता है । विश्व-बधुत्व की महत् धारणाओ का वह न केवल चिन्तक रह जाता है, अपितु अभ्यास मे स्वयं उन्हे उतार कर एक ऐसा अनूठा आदर्श अपने जीवन का प्रस्तुत करता है कि

मुग्ध सामान्य जन उससे प्रभावित और प्रेरित हुए विना नही रहते है। यही जीवन की सार्थकता है, सफलता है।

आध्यात्मिक जीवन :

अपरिमित ज्ञानालोक से जगमगाता जीवन आध्यात्मिक स्तरीय जीवन है, जिसमे सम्यक् ज्ञान की लौ प्रचण्ड प्रकाश को विकीर्ण कर स्वानुकूल आचरण हेतु न केवल प्रेरणा देती है, वरन् इस मार्ग के सभी व्यवधान-तिमिरो को निर्मूल कर देती है। वह जीवन धन्य ही है। यही आध्यात्मिक जीवन की आधारभूत विशेषता है। आध्यात्मिक जीवन एक मंजूषा है जो रत्नत्रय की झलमलाहट से सदा ज्योतिर्मय रहती है। सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन एव सम्यक् चारित्र की यह त्रिवेणी — गंगा, यमुना, सरस्वती के सगम के समान आध्यात्मिक जीवन को तीर्थराज प्रयाग की ही भाँति न केवल गरिमा व पवित्रता देती है, वह तो उद्धारक रूप का निर्माण भी करती है। आध्यात्मिक जीवन व्यक्ति को जनहितार्थ अपेक्षित क्षमता भी देता है और इस दिशा मे गहन रुचिशीलता भी।

वस्तुत: उपर्युक्त तीनो धाराओ का समन्वय और सामजस्य ही आध्यात्मिक जीवन के रूप मे मानव-जीवन का चरम विकास कहा जा सकता है। यह भारतीय धारणा एकागी भी नही है। विश्व-चिन्तन क्षेत्र मे इसे समर्थन भी प्राप्त है, जो इसके औचित्य का स्पष्ट और सशक्त निर्धारण करता है। प्रमाण-स्वरूप टेनिसन का यह कथन प्रयुक्त किया जा सकता है कि आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मसयम जीवन को परम शक्तिशाली बनाते हैं। शब्दान्तर से यह धारणा भी मूलत. आध्यात्मिक जीवन-विषयक हमारे स्वरूप का ही समर्थन करती है।

रत्नत्रयकी चर्चा है। इनमे सर्वप्रथम और सर्वोपरि सम्यग् दर्शन है। शेष दो तत्त्व सम्यग् ज्ञान व सम्यक् चारित्र भी इसी की शक्ति से संचालित एवं सक्रिय रहते है। सत्य के प्रति दृढ निष्ठा व आस्था इसकी परमावश्यकता है। यही निष्ठा ज्ञान के

आनन्दप्रद स्वरूप का आधार होगी और चरित्र को प्राजल बना सकेगी, परिष्कृत कर सकेगी। सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र को ही भारती चिन्तको के एक अन्य पक्ष ने भक्ति-योग, ज्ञानयोग और कर्मयोग के नामो से अभिहित किया है। शब्दावली की भिन्नता होते हुए भी इनमे तात्त्विक अन्तरहीनता है। वस्तुतः इन तीनो का चरम विकास ही आत्मा को परमात्मा बनाता है।

जी हाँ, उपर्युक्त विवरण विषयान्तर नही, विषय-सामीप्य का ही प्रयास है। ऐसे अति उच्च, श्लाध्य एवं गरिमामय जीवन के धनी ही तो है पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी! जीवन-चरित किसी व्यक्ति-विशेष के जीवन की अमुक घटनाओ का लेखा-जोखा होने के कारण तब तक साहित्य की कोटि में स्थान नही पा सकता है, जब तक कि उसमे सार्वजनिक हित की महान् विशेषता का सन्निवेश न हो जाय। सर्वसाधारण पाठको के लिए जो प्रेरणा-स्रोत बन सके, कठिनाइयो मे मार्ग खोजने का अभ्यास करा सके, दुर्गुणो को त्याग कर सन्मार्ग पर अग्रसर होने को प्रोत्साहित कर सके, उदारता का समावेश कर सके, आदर्श मानव-व्यवहार का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर सके—ऐसे महापुरुष का जीवन-वृत्तान्त ही यथार्थतः जीवन-चरित कहलाने का अधिकारी हो सकता है। पूज्य गुरुदेव का जीवन इस कसौटी पर सर्वथा खरा उतरता है। कीर्ति-सौरभ से युक्त गुरुदेवश्री का मृदुल जीवन पुष्पराज गुलाब के समान है। गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी महाराज का स्थानकवासी जैन समाज मे दीप्तिमान किन्तु शीतल, प्रभावकारी, ओजस्वी किन्तु कोमल, तेजोमय किन्तु मधुर, प्रखर किन्तु नम्र व्यक्तित्व के रूपमे अप्रतिम व अनन्य स्थान है।

जीवन के प्रारभ मे सौभाग्य-प्रतीक स्वरूप गुरुदेव को महा-स्थविर श्री ताराचदजी महाराज का पुनीत चरणाश्रय प्राप्त हुआ। इसी मधुर एवं वात्सल्यपूर्ण सदाश्रय मे आपने संस्कृत, प्राकृत,

हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का गहन अध्ययन किया। पण्डितरत्न श्रद्धेय गुरुदेवश्री मनोमुग्धकारी वाक्शक्ति के स्वामी, भावुक कवि और समाज को उचित नेतृत्व प्रदान करनेवालो की अग्रपक्ति मे सुशोभित अत्यन्त महिमामय विभूति है।

समाज-सुधार एव व्यक्ति-प्रोत्साहन के दृष्टिबिन्दु से पूज्य गुरुदेव की धारणा एव मान्यता भावना से और कल्पना से भाषाबद्ध होकर अनेक अमर ग्रन्थो का रूप ले चुकी है। यथा।

१ अमरसूरि काव्य (सस्कृत रचना)
२ जिन्दगी की मुस्कान
३. साधना का राजमार्ग
४ ओम्कार एक अनुचिन्तन
५ रामराज्य
६ संस्कृति के स्वर
७ मिनखपणारो मोल
८ जिन्दगी की लहरे

उपर्युक्त ग्रन्थ गुरुदेवश्री के विचारोत्तेजक, प्रेरणास्पद गभीर प्रवचन-साहित्य की देन है। गुरुदेवश्री की सृजन, सम्पादन, प्रवचन आदि विषयक प्रतिभा के परिणामस्वरूप माँ भारती के कोष में लगभग ४० ग्रन्थरत्नो ने अपनी आभासे शोभावृद्धि की है।

सामाजिक गतिविधियो के स्थापन, सयोजन-सचालन मे गुरुदेव की अपरिमित सगठन-शक्ति एव समाज-प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। सादडी सन्त-सम्मेलन मे साहित्य शिक्षण मत्री, सोजत सम्मेलन में मेवाड पचमहाल मत्री और शिखर सम्मेलन मे आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की परामर्शदात्री समिति के सदस्य और महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलन, नासिक मे 'राजस्थान केसरी' के गौरवपूर्ण, अत्युच्च दायित्वो का जिस गरिमा और सफलता के

साथ आपने निर्वाह किया, उससे स्वतः ही एक आदर्श स्थापित हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी अपनी सतत साधना के ५ दशक सम्पन्न कर चुके है। आपश्री इस गौरवपूर्ण अवधि का सदुपयोग सत्साहित्य रचना, गुरुसेवा, स्थानकवासी जैन समाज के परिष्कार एवं विकास, जन-जन के कल्याण, संघ की एकता एवं क्षमता-वृद्धि, ध्यान-तप, ज्ञान, दर्शन व चारित्र की साधना मे सदुपयोग करते रहे है।

राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, बम्बई, खानदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, दिल्ली आदि विभिन्न भूभागो की पदयात्रा के दौरान मे आपश्री सदुपदेशो एव धर्मचर्चाओ के माध्यम से अगणित भूले भटके लोगो के जीवन-निर्माण का पुनीत कार्य करते रहे है। कहने की आवश्यकता ही प्रतीत नही होती कि पूज्य गुरुदेवश्री की बहुमुखी व्यक्तित्व-गरिमा प्रबल प्रेरणादायिनी सिद्ध होती रही है।

गुरुदेवश्री के दर्शनो से तृप्ति प्राप्त करने, सदुपदेशो से धन्य होने और उनके ज्ञान-अनुभव से लाभान्वित होने व ज्वलन्त सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओ के निदान मे सहायता प्राप्त करने के प्रयोजन से देश के विविध क्षेत्रो से सम्बन्धित विशिष्ट जन उत्सुक रहा करते है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, पं जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गाधी, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, सरदार गुरुमुख निहालसिह, श्री मोहनलाल सुखाडिया, श्री भाऊसाहब वर्तक, श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, जगद्गुरु शंकराचार्य, आचार्य रामचन्द्र सूरि, चारित्रचक्र-चूडामणि आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य श्री तुलसी, आगम-प्रभावक पुण्यविजयजी, आचार्य सागरनन्द सूरिजी. श्री विजयेन्द्र सूरिजी, श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री जैनेन्द्रकुमार आदि कतिपय प्रमुख व्यक्तियो के नाम उल्लेखनीय है।

राजस्थान-केसरी, व्याख्यान-वाचस्पति, जैनधर्माकाश के देदिप्यमान नक्षत्र गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी महाराज का जीवन कुछ

ऐसा है, जिसके सम्बन्ध मे यह प्रचलित उक्ति सर्वथा उपयुक्त लगती है :

ससारसागरस्यान्तं गन्तुमिहास्ति चेद्यदि ।
चरित्रं महता पोत कृत्वा गच्छन्तु भावका ॥

अर्थात्—इस अपार ससार-समुद्र से पार होने की यदि अभिलाषा है, तो महापुरुषो के चरितरूपी नौका का आधार वनाकर सुगमतापूर्वक पार कर लीजिये ।

परम पूज्य गुरुदेव के चरित्र के सम्बन्ध मे इस प्रचलित उक्ति को सर्वथा उपयुक्त ही कहा जा सकता है—'महाजनो येन गत सपन्था' यह उस उत्तम पुरुषोचित श्रेष्ठ जीवन-चरित है, जो समग्र मानव-जाति के लिए स्वयसिद्ध उत्तम, आदर्श जीवन-पद्धतिका स्पष्ट इंगित है।

रामचरितमानसमे उल्लेख है कि इस जगत मे दुराचारी जन भी ख्यातनाम, शुभगाथ सतो के ससर्ग से वैसे ही अपनी आत्मा का सुधार कर लेते है, जैसे लौह पारस-स्पर्श प्राप्त कर खरे स्वर्ण मे परिणत हो जाता है । गुरुदेवश्री के चरित मे भी यह उद्धारक क्षमता पूर्ण प्रखरताके साथ है। हमे सकोच यही है कि यह विराट् सौन्दर्य हमारी 'बुधिबासनी पुरानी' मे समायेगा ही कैसे? गुरुकृपा ही इसे संभव करेगी ऐसा विश्वास है । यही विश्वास चरितगान के हमारे सकल्प को दृढतर बनाता जा रहा है। जब 'विधि हरिहर कवि कोविद बानी, कहत साधु महिमा सकुचानी,' फिर हमारी क्षुद्र बुद्धि के लिए सकोच होना तो सहज स्वाभाविक ही है । शब्दान्तर के साथ अपनी बात हम सर्वकला निष्णात आचार्य मानतुग के कथन के मिस प्रकट करना चाहते है :

अल्पश्रुतं श्रुतवता परिहास धाम
त्वद्भक्तिरेवमुखरी कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति
तच्चारुचाम्र कलिकानिकरैकहेतु ।

हे प्रभु, मै अल्पज्ञ हूँ, विद्वज्जनो के लिए उपहास का पात्र हूँ । भला मै आपकी स्तुति करना क्या जानूं । किन्तु क्या करूँ,

आपकी भक्ति ही मुझे स्तुति करने के लिए मुखर व वाचाल बना रही है। कोयल की वाणी अन्य ऋतुओं मे ऐसी मधुर नही होती जैसी वसन्त मे। आम्र की बौरो का मदमाता परिवेश ही तो इसका कारण है।

अस्तु, गुरुदेव का उज्ज्वल चरित का सुनहरा वातावरण क्या श्रद्धावन्त मन-कोकिला को वाणी माधुर्य नही दे पायगा? प्रतिकूल परिस्थिति की तो कल्पना ही नही की जा सकी। यही अगाध आस्था हमारी प्रेरणा, हमारा सबल, हमारा पाथेय बना रहेगा, किन्तु गुरुदेव के प्रसाद-स्वरूप ही तो। और अत्यन्त उदारमना गुरुदेव से इस दिशा मे कार्पण्य की कल्पना कोई कठोरतम क्रूरकर्मी भी नही कर सकता।



जीवन – पूर्वाह्न

पूज्यपाद परम श्रद्धेय गुरुवर पुष्कर मुनि म० राजस्थान के आध्यात्मिक गौरव हैं, जैन धर्माकाश के देदिप्यमान नक्षत्र हैं, जिसके प्रखर आलोक मे घोर तिमिर विच्छिन्न हो रहा है और लक्ष-लक्ष श्रद्धालुजन उचित मार्ग पर अग्रसर होने की क्षमता प्राप्त कर रहे हैं। यथार्थ ही मे आपश्री आध्यात्म के कमनीय कानन के एकाधिकार प्राप्त केसरी हैं। "राजस्थान केसरी" की गरिमा गुरुदेव श्री की कीर्ति से संयुक्त होकर स्वयं ही अलंकृत एव गौरवान्वित हो रही है अथवा यो कहना भी अनुचित न होगा कि गुरुदेवश्री के विराट व्यक्तित्व की पर्याय होकर "राजस्थान केसरी" अपने उपयुक्त अर्थ मे अभिव्यक्त हो पा रही है। स्पष्ट है कि राजस्थान प्रान्त से गुरुदेव श्री के जीवन का सीधा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध प्रकट रूप से राजस्थान के अभिवर्धित आध्यात्मिक वैभव का द्योतक है।

राजस्थान का इतिहास अनेक परस्पर विपरीत अतियो की विशेषताओ का समुच्चय रहा है। यही पर राणा प्रताप की पराक्रमपूर्ण रणोल्लास की हुंकार प्रतिध्वनित होती रही, तो यही भूमि मीरा की प्रेमभक्ति की रस-धारसे सिंचित होती रही। इसी मरुधरा ने पृथ्वीराज जैसा सम्राट् प्रादुर्भूत किया जो अपने शासनकाल मे प्राय प्रति वर्ष एक युद्ध करता था और प्रति वर्ष एक विवाह। जयचन्द की जननी भी यही धरती है और दुर्गादास की भी। साहित्य संगीतादि कलाओ का विकास भी इस भूमि पर होता रहा है और रक्तनद भी यही प्रवाहित होते रहे हैं। राजस्थान एक ऐसा अद्भुत तीर्थस्थल है जहाँ देशभक्ति और आध्यात्मिक शक्ति की सरस-सरिताओ का सुन्दर सगम हुआ है। त्याग-बलिदान और

स्वाभिमान के अनुपम तत्त्वों के कारण विश्व इतिहास में इसका अविस्मरणीय महत्त्व स्वतः प्रतिपादित है।

भारत के पश्चिमी प्रदेश राजस्थान के द० पू० में मेदपाट (मेवाड़) का एक सुविशाल भूखण्ड है जिसके हृदय भाग पर प्राकृतिक सौन्दर्य सम्पन्न 'झीलो की नगरी' उदयपुर है । मेदपाट ने भारतीय संस्कृति एवं स्वाधीनता की रक्षा मे अति महत्वपूर्ण एवं गंभीर भूमिका निभायी है । शौर्य और धार्मिक दृढता दोनो ही समानान्तर रूप से मेवाड़ की गौरववृद्धि मे सदा सहायक रहे है ।

उदयपुर के समीप गोगुदा-क्षेत्र है, जो अपनी अनेक प्राकृतिक विशेषताओ के लिए विख्यात है। पर्वतीय क्षेत्र मे बसा गोगुदा राजस्थान के ऐसे समतल भागो में से एक है जिसको समद्रुतल से अत्युच्च माना जाता है । इसी विशेषता के कारण यहाँ प्रचण्ड ग्रीष्म काल मे भी सुखद शीतलता बनी रहती है और इस प्राकृतिक आशीर्वाद इसे सुन्दर स्वास्थ्यवर्घक स्थल का गौरव प्रदान किया है । सनीर सरित्-सरोवरो की शोभा, हरित वनखण्डो के वनस्पति का वैभव का परिवेश, क्षेत्र की श्री और शान्ति को बहुविधि विकसित करने मे सहायक रहा है ।

गोगुदा के समीप ही एक छोटा सा ग्राम 'सिमटार' है। यहाँ मुख्यतः ब्राह्मणोकी बस्ती है। ब्राह्मणो के शासन के इस गाँव में प्राय सभी ब्राह्मण जागीरदार है । यही पर एक सम्पन्न जागीरदार पालीवाल ब्राह्मण परिवार निवास करता था। गृहस्वामी थे श्री सूरजमलजी पालीवाल जिनकी दोपत्नियाँ थी । बडी पत्नी श्रीमती वालीबाई को सं० १९६७ मे एक पुत्र रत्न श्री अम्बालाल की प्राप्ति हुई थी और छोटी पत्नी के दो सन्ततियाँ थी—पुत्र श्री भेरूलाल और पुत्री तुलसी बाई।

मानव सुलभ स्वभाववश श्री सूरजमलजी का ध्यान छोटी पत्नी की और अधिक रहा करता था। अपनी इस तनिकसी उपेक्षा को भी बडी पत्नी श्रीमती वालीबाई का स्वाभिमान सहन न कर पाया और वे अपने पितृगृह नान्देशमा ग्राम मे चली आयी और

उसके पश्चात् यही रही । यही हमारे चरितनायकजी का वि सं १९६७ आश्विन शुकला १४ को जन्म हुआ । नान्देगमा ग्राम मुख्यत जैन धर्मावलम्बियो की वस्ती है। बालकका नाम अम्बालाल रखा गया ।

बालक अम्बालाल के शारीरिक शुभ लक्षणो के आधार पर उसके यशस्वी होने का आभास होने लगा था, तथापि गुरुदेवश्री ने आज समाज मे जो प्रतिष्ठा अर्जित की है उसकी तो पूर्व कल्पना भी उस समय कठिन थी । तव कौन कह सकता था कि आगे चलकर यह बालक महापुरुप होगा, आध्यात्मिक नेता होगा, साधनामार्ग का अथक पथिक होगा ।

अति प्रारंभिक धर्म-संस्कार

जन्म से सभी मनुष्य लगभग समान गुण-धर्म, क्षमता एव संमभावना लेकर आते है । आगे चलकर कोई उन्नत हो जाता है तो कोई अवनत रह जाता है । इसके मूल मे वातावरण ही मुख्य कारण है । जिसे जैसे मार्ग के अनुसरण का अवसर, प्रेरणा मिलती है उसी पर वह अग्रसर होता चला जाता है । तदनुरूप ही परिणाम रहते है । यह प्रारभिक वातावरण जो अत्यधिक प्रभावकारी रहता है, परिवार का होना है । अभिभावक गण अपनी पाठशाला मे अप्रत्यक्ष शिक्षा देकर सन्तति को जो रूप देना चाहे दे सकते है । जैसे कुभकार मिट्टी के लोंदे को जो आकार देना चाहे वही आकार पात्र को मिल जाता है ।

श्री अम्बालालजी पर भी पारिवारिक वातावरण का सुप्रभाव अंकित हुआ । उनमे धर्मप्रियता और सदाशयता के तत्त्व तीव्रता के साथ विकसित होने लगे । धर्मक्षेत्रीय सहिष्णुता और सर्वधर्म-समादर की जो विशेषता माता-पिता मे थी, उसका स्पष्ट प्रभाव बालक मे रहा । बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्तियो मे आपकी गहन और सक्रिय अभिरुचि रही । ग्राम अथवा समीपस्थ क्षेत्र के धार्मिक आयोजनो मे वे सम्मिलित होते रहते थे । वही सत्संग का प्रभाव किस प्रकार नवनवीन रूप लेते हुए पूज्य गुरुदेव के

इस महान व्यक्तित्व का आधार बना है, जो हमारे लिए वन्दनीय है, श्रद्धेय है ।

पारिवारिक पृष्ठभूमि वैष्णव धर्मावलम्बन की रही थी । आप अपनी माताजी के साथ एकादशी आदि धर्माचरणो मे रुचि लेते थे । प्रारंभिक जीवन-काल धार्मिक उल्लास एवं प्रेरणाओ के मध्य व्यतीत होता रहा । पारिवारिक सुख-सुविधाओ का यह वातावरण चिरस्थायी नही रहा । किशोर अम्बालाल को तो अपरिमित गौरव का धनी बनना ही था। महानता जिसे अपना आश्रय देना चाहती है, उसके सुख-साधनो को क्रमश· वह लुप्त करती चलती है । बालक अम्बालालजी भी इस सार्वभौम सिद्धान्त के अपवाद नही रहे । जब आपकी आयु मात्र ९ वर्ष की ही थी तभी आपकी ममतामयी माँ का स्वर्गवास हो गया और बालक बिलखता छूट गया । इन्हे मनाकर अपने साथ ले चलने को पिता श्री नादेशमा ग्राम आये और उन्हे किसी प्रकार चरितनायक श्री अम्बालालजी को सिमटार ले जाने मे सफलता भी प्राप्त हुई । स्वाभिमानी एवं स्नेह-पिपासु बालक को इस अवस्था मे भी परिवार मे अनुकूल वातावरण के अभाव का अनुभव हुआ । वे सिमटार त्यागने को विवश हो गये । वे लौटकर पुन· नादेशमा पहुँच गये ।

नादेशमा मे कुछ ही काल व्यतीत हुआ होगा कि एक और संयोग हुआ । भौमट क्षेत्र के ग्राम बडी परावली निवासी सेठ अम्बालालजी औरडिया नादेशमा पधारे । इस गाँव मे आपकी ससुराल थी । बालक अम्बालालजी की सारी अवस्थाओ का ध्यान कर उनके मन मे इन्हे अपने साथ ले चलने की अभिलाषा हुई । यह अभिलाषा पूर्ति हमारे चरितनायकजी को बडी परावली ले आयी । बालक के सुलक्षणी होने के संबंध मे सेठ श्री अम्बालालजी का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ । सेठ साहब के विवाहित जीवन के १०–१२ वर्ष अब तक व्यतीत हो चुके थे, किन्तु यह दम्पति सन्तति-अभाव की वेदना से ग्रस्त थी । घर मे चरितनायकजी का पदार्पण परिवार के लिए सुफलदायी रहा । दम्पति अब एक ही

नही दो-दो पुत्र-रत्नो को पाकर अति हर्षित थी। परिणामत· बालक अम्बालालजी के प्रति स्नेह-भाव मे अभिवृद्धि स्वाभाविक ही थी। अल्पायु बालक वन मे इस परिवार के पशुओ को चराया करता था। यही इनकी दिन चर्या का प्रमुख अग था। ये मन लगाकर अपने दायित्व का निर्वाह किया करते थे, किन्तु नियति को तो कुछ और ही स्वीकार था। जीवन का यह नया रूप भी ४ वर्षों से अधिक नही रह पाया। एक समय का प्रसग है कि बालक के पैर मे पीडा दायक चोट लगी, फिर भी दैनिक कार्यकलाप मे कोई अन्तर नही आया। परिवारने और विशेष रूप से सेठ श्री अम्बालालजी ने बालक की इस अस्वस्थता की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। प्रतिक्रियास्वरूप बालक का मन घोर वितृष्णा से भर गया। इनके मन मे स्वार्थाधारित जगत् के प्रति अनासक्ति का भाव प्रवल होने लगा। विचलित मन उचित दिशा की खोज मे व्यस्त हो विकल रहने लगा। सयोगवश ऐसी ही कोमल घडी मे शान्त स्वभावी महासती धूलकुवरजी का ठाणा ५ से इस ग्राम मे पदार्पण हुआ, जिन्होंने हमारे चरितनायक के जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने मे अद्भुत पहल की।[१]

शीतकाल था, बालक अम्बालालजी लकडियाँ जला कर ताप रहे थे। प्रथम अवलोकन से ही महासतीजी बालक से प्रभावित हुई और प्रश्न किया 'बच्चा, क्या कर रहा है?' और जो अप्रासगिक उत्तर इस प्रश्न का था उसने मन की सारी परते उतार फेकी। उत्तर था "मेरी एक इच्छा है। ४ वर्ष पहले मैंने जिन महाराज सा० (महास्थविर ताराचन्दजी म०) के दर्शन

---

१ इस प्रसग मे महासती धूलकुँवरजी का अति सक्षिप्त जीवन परिचय कदाचित् विषयान्तर का रूप नही लेगा। मेवाड के मादडा ग्राम मे आपका जन्म हुआ। माता-पिता का नाम क्रमश नाथीबाई और पन्नालालजी था। अल्पायु मे पति वियोग का कष्ट आपको परमाश्रय हेतु प्रेरित कर सका। २२ वर्ष की अवस्था मे तपोमूर्ति फूलकुँवरजी से आपने भगवती दीक्षा धारण की। गोगुदा ग्राम मे आप वर्षो तक स्थविर रही और २४ घटो का सथार कर आप स्वर्ग सिधार गयी।

किये थे, वे इस गाँव मे पधारे तो उनसे दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।

महासतीजी ने प्रारभ मे इस प्रसंग को गंभीरता से नही लिया, फिर भी उन्होने कहा कि महास्थविरजी इस समय मारवाड़ मे है और बालक चाहे तो उसे वहाँ पहुँचाने की व्यवस्था की जा सकती है, किंतु बालक ने जाने से इनकार कर दिया और अपनी वही अभिलाषा पुनः व्यक्त की । महासतीजी को इस अभिलाषा की सत्यता और गहनता का विश्वास हो चला । मादडा पधार कर महासतीजीने सारी स्थिति का समाचार श्री ताराचन्दजी महाराज सा० के पास पहुँचाया ।

श्री ताराचन्दजी महाराज साहब का मारवाड से विहार कर उदयपुर भोमट होते हुए अपने लक्ष्यस्थल बड़ी परावली पदार्पण हुआ । ग्राम मे महास्थविरजी का व्याख्यान चल रहा था । बालक अम्बालालजी जगल से लौट रहे थे और आकर्षित होकर व्याख्यान स्थल पर पहुँचे । इस समय व्याख्यान मे भृगुपुरोहित का प्रसंग वर्णित हो रहा था, जिसके पुत्र संयम ग्रहण करते है । इस प्रसंग का आपके भावाभिभूत बाल-मन पर प्रबल प्रभाव हुआ और आपकी भावना ताराचन्दजी महाराज साहब का अनुसरण करने की हो गयी । महास्थविरजी के विहार का समय आया और आपश्री साथ चल पड़े । इस समय भी पैर में कष्ट था । किन्तु मन की लगन ने तन की पीडा को जैसे लुप्त ही कर दिया था । मादडा मे उदयपुरवाले वैद्यजी, जो वही के जामाता थे, आये हुए थे उन्होने उपचार किया और आप कष्ट मुक्त हो गये ।

वैराग्य : एक विश्लेषण

ससार विरक्ति के अनेक कारण है स्थानाङ्ग मे उन कारणो का निर्देश इस प्रकार किया है ।

(१) स्वेच्छा से ली गई प्रव्रज्या

(२) रोष से ली गई प्रव्रज्या

(३) दरिद्रता से ली गई प्रव्रज्या
(४) स्वप्न देखकर ली गई प्रव्रज्या
(५) प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर ली गई प्रव्रज्या
(६) जाति स्मरण ज्ञान से जन्मान्तर का स्मरण होने पर ली गई प्रव्रज्या
(७) रोग के कारण ली गई प्रव्रज्या
(८) अपमानित होने पर ली गई प्रव्रज्या
(९) देवो द्वारा प्रतिबुद्ध किये जाने पर ली गई प्रव्रज्या
(१०) पुत्र स्नेह के कारण ली गई प्रव्रज्या

अन्य अनेक कारण भी स्थानाङ्ग आदि आगम व आगमेतर साहित्य मे बताये है ।

एक जैनाचार्य ने वैराग्योत्पत्ति के तीन कारण भी वताए है । वे इस प्रकार है ।

(१) दुःखगर्भित वैराग्य :

अशुभ कर्मों के कारण मानव के जीवन मे दु ख के वादल छा जाते है । जिस वैराग्य का कारण ऐसा दु ख, संकट या पीडा हो वह "दु खगर्भित वैराग्य" है । ऐसे वैराग्य धारक व्यक्तियो के लिए कहा जाता है –

नारिमुई घर सम्पति नासी ।
मुण्ड मुण्डाये भये सन्यासी ॥

दु ख का कारण दूर होने पर यह वैराग्य जा भी सकता है, इसलिये यह वैराग्य स्थायी नही होता ।

(२) मोहगर्भित वैराग्य :

माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि परिजनो का वियोग हो जाने पर मोहवश जो विरक्ति होती है, मन सूना-सूना हो उठता है, माँगने पर भी मृत्यु नही मिलती और व्यक्ति सन्यासी बन जाता है । ऐसी विरक्ति के भाव को मोहगर्भित वैराग्य कहा जाता है । यह वैराग्य मध्यम है, न साधारण है और न असाधारण ।

(३) ज्ञानगर्भित वैराग्य :

जन्म-जन्मान्तरो के शुभ कर्मोदय से, गुरु के उपदेशो के कारण अध्ययन से संसारके प्रति जो विरक्ति होती है, उसे ज्ञानगर्भित वैराग्य कहा जाता है। वैराग्य का यह रूप श्रेष्ठ एवं स्थायी है।

जैनागमो का अध्ययन करने से यह ज्ञान होता कि शुद्ध वैराग्य प्राप्ति के दो साधन है—एक नैसर्गिक, दूसरा आधिगामिक।

जिस वैराग्य मे गुरु-दर्शन, साधु-सगति, पठन-पाठन की आवश्यकता नही रहती हो और जो जन्म-जन्मान्तरों के शुभ संस्कारों द्वारा स्वत उत्पन्न होता है वह नैसर्गिक वैराग्य है और जिस वैराग्य मे बाह्य निमित्त की अपेक्षा हो, सन्त-संगति, पठनपाठन का सहयोग अपेक्षित हो वह आधिगामिक वैराग्य कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री को व्याधि का निमित्त मिला और वैराग्य भावना उद्‌बुद्ध हो गई। वैराग्य भावना से उत्प्रेरित होकर आप श्री पूज्य गुरुदेवश्री ताराचन्दजी महाराज के साथ हो गये और अपनी जन्मस्थली नान्देशमा पधारे। वहाँ पर आपश्री के मामा थे। पूज्य गुरुदेवश्री ने उनको दीक्षा का आज्ञा-पत्र लिखने के लिए कहा। मामा ने सिमटार समाचार देकर चारित्रनायकजी के पिताजी सूरजमलजी आदि से सहर्ष आज्ञा-पत्र लिखवा दिया।

तदनन्तर आप तिरपाल, ढोल, पदराडा, कम्बोल, सायरा, भानपुरा के मार्ग से अग्रसर हुए। सभी स्थानो पर आपकी भव्य दीक्षा बनोली निकाली गयी। इसके पश्चात् महास्थविरजी महाराज सा० सादडी होकर मण्डिया पधारे जहाँ श्री दौलतरामजी म० एवं मधुर व्याख्यानी श्री नारायणदासजी ठा० २ से आपका सुखद सम्मेलन हुआ। चारो मुनिराज पाली संघ के अनुरोध पर चातुर्मास हेतु पाली पधारे। स्थानकवासी समाज के महान् चमत्कारी श्री वक्तावरमलजी म० एवं पडित प्रवर श्री जोरावरमलजी म० का वर्षावास भी पाली मे ही था।



दीक्षा – देहरी

दीक्षा :

आध्यात्मिक जीवनोत्थान का प्रथम सोपान दीक्षा है । यही वह यात्रारंभ है जिसका चरम लक्ष्य मोक्ष है, जिससे घोर चिन्ताओं और क्लेष से मुक्ति और उद्वेगहीन परमशान्ति का लाभ संभव होता है । यह गुरुजनो का वह प्रसादपूर्ण आशीर्वाद है जो पारलौकिक पहचान ही नही दिलाता वरन् इहलौकिक बन्धनो, व्यवधानो को भी निर्मूल कर देता है दीक्षा है – जीवन का परिवर्तन । निश्चय ही दीक्षा-प्रक्रिया मे वेश-परिवर्तन, सिर-मुण्डन, गृहपरित्यागादि सब कुछ होता है, किन्तु यही दीक्षा के महान् विचार का सर्वस्व नही हुआ करता । ये तो कुछ वाह्य क्रियाएँ मात्र है, जो आभ्यन्तरिक परिवर्तन की परिचायक होती है । ये वाह्य परिवर्तन अपने मे दीक्षा के समग्र महत्वमय स्वरूप का वहन करने की क्षमता नही रखते ।

केश-मुण्डन सार्थक तभी होता है जब राग-द्वेष की जटाये मुडित हो सके । ममता-वुद्धि का त्याग आदि ही तो दीक्षान्तर्गत परिवर्तन के मूल तत्त्व है । भोगेच्छु कभी दीक्षोपयुक्त नही माना जा सकता । अतृप्त वुभुक्षा-ग्रस्त व्यक्ति दीक्षा का पात्र नही ठहराया जा सकता । जिसके अन्तरमन मे मोक्ष की कामना का तीव्रतम स्वरूप हो और उसी की प्राप्ति हेतु साधनारत होने के संकल्प के साथ वीतरागी हो जाने की दृढ अभिलाषा का वहन करनेवाला ही यथार्थ मे दीक्षार्थी हो सकता है । दीक्षा का प्रयोजन है अचंचल मन से मुक्ति-मार्ग पर सतत् गतिशीलता का शुभारंभ । यही यात्रा प्रव्रजन है और यही यात्री परिव्राजक । संयम इस यात्रा का पाथेय है और संयमशील वही हो सकता है जिसके मन मे आधि-व्याधि-उपाधि के भावो ने स्वयं हटकर समाधि को अपना स्थान दे दिया हो ।

दीक्षा की सार्थकता इसी मे है कि वह साधना के पथ को ज्योतिर्मय कर दे। दीक्षा-दीप प्रज्वलित होकर इस महती भूमिका निर्वाह मे सक्षम तभी हो सकता है जब उसमे वैराग्य की वर्तिका और विवेक का तेल होगा। दीक्षा-दीप अपनी इस सार्थकता के अभाव मे उपेक्षणीय और कान्तिहीन लघुमृत्तिका पात्र के अतिरिक्त कुछ नही है। पूज्य गुरुदेव ने दीक्षा का यही सार्थक स्वरूप अति प्रारभ से स्वीकार किया था। ऐसी दीक्षा-प्राप्ति के लिए उनका मन उद्विग्न रहा करता था और इसकी पात्रता-अर्जन हेतु ज्ञानसाधना मे तल्लीनतापूर्वक व्यस्त रहते थे। पूर्व हम लिख चुके है कि चारित्रनायकजी पूज्य गुरुदेवश्री के चरणो मे धार्मिक अभ्यास कर रहे थे। महास्थविरजी पाली चातुर्मास के पश्चात् दुदाडा पधारे, जहाँ आपके दर्शनो का लाभ महासतीजी श्री आनन्दकुवरजी ठा० १० को हुआ। तत्पश्चात् समदडी से सीवाना आगमन हुआ। सीवाना के श्रद्धालु श्रावको द्वारा बालक अम्बालालजी का दीक्षा प्रदान किये जाने का प्रबल अनुरोध किया गया था, किन्तु पूज्य महास्थविरजी के मतानुसार अभी इनके द्वारा और अधिक अध्ययन किया जाना अपेक्षित था। सीवाना से जालोर आगमन पर श्रावको का अनुरोध प्रबलतम हो गया और दीक्षार्थ स्वीकृति प्रदान कर दी गयी। इस स्वीकृति से नगरभर मे हर्षोल्लास व्याप्त हो गया। सभी सामाजिक इस पवित्रोत्सव की तैयारी मे एक-जुट होकर लग गये।

नवजीवन-प्रवेश

विक्रम सवत् १९८१ की ज्येष्ठ शुक्ला १० को दीक्षा का यह महान कार्य सम्पन्न हुआ। अम्बालालजी के साथ एक अन्य वैरागी रामलालजी ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। दोनो के इन वैरागी जीवनकाल के नाम विधिवत् परिवर्तित किये गये। अब दीक्षोपरान्त रामलालजी का मुनि प्रतापमलजी और अम्बालालजी का पुष्कर मुनिजी के रूप मे नवीन नामकरण हो गया।

श्री पुष्कर मुनिजी श्रद्धेय ताराचन्दजी म० के 'अन्तेवासी' बने और श्री प्रतापमलजी म० आदरणीय नारायणचन्दजी म० के

शिष्य घोषित हुए और इस दीक्षा के अवसर पर महासती श्री नेनूजी ठाणा ८, महासती श्री हरकूजी ठाणा ५ एवं महासती श्री पानाजी ठाणा ४ भी पधारी थी ।

इस प्रसंग मे इतिहास की एक जाज्वल्यमान घटना का सहज ही स्मरण हो आता है । जैन धर्म के एक परमोज्ज्वल रत्न रहे है सर्वगुण सम्पन्न आचार्य हरिभद्रसूरिजी । आचार्य श्री भी ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे । वे एक जैन साध्वी याकिनी महत्तरा के सान्निध्य मे आकर और उनका प्रतिबोध पाकर जैन संत वन गये थे । कैसा अद्‌भुत साम्य है, इस प्रसंग और गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी म० के दीक्षा ग्रहण मे । ब्राह्मण जातीय होते हुए भी आज स्थानकवासी जैन समाज को जिस कौशल के साथ आपश्री नेतृत्व प्रदान कर रहे है यह असाधारण प्रतिभा का ही परिचायक है । अपने मेधावल, साधनासामर्थ्य, संगठन शक्ति व लोकप्रियता द्वारा ही पूज्य गुरुदेव श्री 'राजस्थान केसरी' है ।



अध्ययन-मनन

पूज्य गुरुदेव श्री के गुरुगंभीर व्यक्तित्व मे उनके गहन अध्ययन की स्पष्ट झलक सदा ही विद्यमान रहती है। ज्ञान-रश्मियो से दीप्त मानस की प्रतिभा से आपश्री का व्यक्तित्व तेज और कान्ति का प्रखर पुज है। आपकी वाणी के सारगर्भित, मर्मस्पर्शी और हृदय परिवर्तनकारी होने का मूल आधार भी यही वहुज्ञता है। ज्ञान-राशि का यह अद्‌भुत कोष आपने अध्यवसाय, गहन चिन्तन, मनन आदि समर्थ साधनो से विकसित किया है।

पूज्य गुरुदेव के व्यापक व गहन-अध्ययन तथा उसके परिणाम स्वरूप इस भव्य प्रभाव से यह स्पष्ट हो जाता है कि सचेतन प्राणी होने के नाते मानव का मूलभूत धर्म ज्ञानार्जन करना है और साथ ही अर्जित ज्ञान के माध्यम से व्यष्टि एव समष्टि के कल्याण मे निरत रहना ही उच्च कोटि की मानवता है। जीव चार गतियो एवं ८४ लाख योनियो मे भ्रमणशील वना रहता है। इस आवागमन के अन्तर्गत कर्मानुसार ही उसे आगामी योनि प्राप्त होती है। अनन्त पुण्य प्रताप का सुपरिणाम ही मानवदेह-प्राप्ति के रूप मे प्रकट होता है। यह मानव-देह जीव के लिए एक ऐसा उपहार है जिसकी समकक्षता अन्य किसी योनि से नही हो सकती। इसी जीवन मे वह अपने मोक्ष का साधन जुटा कर भवबन्धनो तथा आवागमन के चक्र से मुक्त होने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। वस्तुत जीवन के हाथो मे पडी यह एक चिन्तामणि है, उसके लिए यह कल्पतरु है।

ऐसे महत्त्वमय उपहार को प्राप्त करके भी अगणित जन इसे व्यर्थ ही मे खो देते है। इसका कारण यही होता है कि

इस रूप मे वे इसका मूल्याकन ही नही कर पाते । अकर्तव्यो मे जब वे इसका अधिकाश समय व्यतीत कर चुके होते है, तब कभी-कभी उन्हे इसके 'अनुपम साधन' होने का आभास होने लगता है, किन्तु तब अनुकूल परिस्थितियाँ हाथ से निकल चुकी होती है और वे हाथ मलते रह जाते है। पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन मे यह स्थिति आयी ही नही। अति प्रारंभ से ही वे जीवन के महत्त्व को समझने व उसके अनुकूल कर्म मे व्यस्त रहे । यही नही अपने प्रत्यक्ष अनुभवो का लाभ सर्वसामान्य को पहुँचाने की दृष्टि से आपश्री सदा सभी को सचेत करते रहे, उचित मार्ग पर गतिशील होने को प्रेरित करते रहे है, कितना महिमामय, कितना हितकारी पुण्य कर्म है!

भगवान् महावीर के इस कथन को 'मानव-भव मे मानवता प्राप्त करना, धर्म-ज्ञान प्राप्त करना, धर्म मे गहन व दृढ आस्था रखना ही श्रेष्ठ व सफल जीवन है'—पूज्य गुरुदेवजी ने अपने आचरण व व्यवहार का विषय बनाया है । आपश्री के अनुसार जीव द्वारा मानवदेह धारण करना मात्र ही मानव होने के लिए प्रर्याप्त नही होता । विद्याध्ययन-ज्ञानाभ्यास के बिना साधारण अन्य जीवधारी व मानव-देहधारी मे कोई विशेष अन्तर नही रह जाता । मानव को इस विशिष्ट जीवन की महत्ता व प्रयोजनसे ज्ञान हो तो अवगत करता है ।

यह सर्वथा सत्य एव तथ्य है कि 'ज्ञान भार क्रिया बिना' अनुकूल व्यवहार के अभाव मे ज्ञान निरर्थक बोझा मात्र है, किन्तु इससे भी अधिक महत्ता तो इस बात की है कि क्रिया-बोध, उसका परिचय, उचित-अनुचित ज्ञान, कर्तव्य-अकर्तव्य की पहचान ज्ञान से ही सभव है । अस्तु, कर्म मानव को मानव बनाता है, तो ज्ञान कर्म को कर्म बनाता है ।

'नाणेन विना न हुति चरण गुणा'

'नाण नरस्स सार'

अर्थात् ज्ञान के बिना मानव-जीवन के आचरण निर्धारित नही होते।

ज्ञान ही मानव-जीवन का नवनीत है।

ज्ञानी ही तो आगे चल कर ध्यानी, त्यागी और तपस्वी बन पाता है। ज्ञान का आधार विद्या है, अध्ययन है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने जीवन के उदाहरण द्वारा इसके महत्व को भली प्रकार प्रतिपादित किया है। आपश्री ने इस तथ्य को भलोभाँति हृदयंगम कर लिया था कि विद्या के अभाव मे हम श्रेय-प्रेय और हेय-ज्ञेय उपादेय को पहचान नही पाते और पगु बनकर रह जाते है। आपश्री ने विद्या के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त कर उसके सार्थक स्वरूप की व्यावहारिकता को सिद्ध कर दिया और 'साविद्या या विमुक्तये' के सिद्धान्त के प्रति आपश्री की अगाध आस्था है।

गुरुदेवश्री वि० स० १९८१ मे दीक्षा-ग्रहण के पश्चात् धार्मिक अध्ययन मे दत्तचित्तता के साथ व्यस्त हो गये थे। व्याकरणाचार्य पं० रामानन्दजी शास्त्री से आपने काव्य, न्याय, व्याकरण, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, वैदिक दर्शन, चार्वाकदर्शन आदि का गंभीर ज्ञान प्राप्त किया। पेटलाद (गुजरात), पूना आदि स्थानो मे विभिन्न परीक्षाओ मे भी सम्मिलित हुए। समानान्तर रूपसे आपने जैन आगमो का अध्ययन भी किया। आचाराग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाग, भगवती ज्ञाताधर्म पन्नवणा आदि सभी आगमो की गहराई मे आप परिश्रमपूर्वक पहुँचे। कोई १५०-२०० थोकडे भी आपने कंठस्थ कर लिये थे। वेद, उपनिषद्, आगम, त्रिपिटक आदि के गंभीर अध्ययन द्वारा आपश्री ने वर्चस्व अर्जित किया है।

न्याय मे गुरुदेवने षड्दर्शनसमुच्चय, स्याद्वाद मंजरी, जैन तर्कभाषा, प्रमाण नयतत्वालोक, प्रमेय कमलमार्तण्ड आदि के अतिरिक्त साहित्य क्षेत्र के और ग्रथो का भी आपने यथोचित अध्ययन किया।

संस्कृत व्याकरण के अन्तर्गत लघुसिद्धान्त कौमुदी, सिद्धान्त कौमुदी, अष्टध्यायी आदि अनेक ग्रन्थोका आपने गहन अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त प्राकृत व्याकरण आदि का भी ज्ञान आपने प्राप्त किया।

हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध कृतियो और कृतिकारो के अध्ययन द्वारा जीवन-जगत् की समझ विकसित करने मे भी आप पीछे नही रहे ।

स्पष्ट है कि गुरुदेव का अध्ययन न केवल गहन अपितु व्यापक भी है । अध्ययन तो आपके जीवन का अभिन्न अग है । नानाविधि अध्ययन आज भी आपकी दिनचर्या का महत्वमय भाग है । इस अपार अध्ययन ने जहाँ गुरुदेव को अन्तरमुखी बना कर आत्मज्ञान उपलब्ध कराया, मनन-चिन्तन का अभ्यस्त बनाया, वहाँ वह अभिव्यक्ति के कौशल मे भी परिष्कार व निखार ला पाया है । आपमे मौलिक विचारशक्ति का तत्त्व अध्ययन-आधारित ही है । आपकी स्तुत्य बहुज्ञता का मूल आधार भी अध्ययन का आधिक्य ही है । इसी अधिकता ने आपमे अद्‌भुत अभिव्यक्ति कौशल का विकास कर दिया है । धाराप्रवाह प्रवचन की आपमे विलक्षण क्षमता है । अपने मत को सुस्थिर और प्रतिपादित करने मे आपके पास तर्कों व प्रमाणो का कभी अभाव नही रहता । सभी वौद्धिक स्तरो के व्यक्तियो के लिए आपके प्रवचनो मे ज्ञान व प्रेरणालाभ का समुचित अवसर रहता है । वाणी का अद्‌भुत चमत्कार आपका दास ही हो गया है । सृजन-क्षेत्र मे पूज्य गुरुदेव की गति वेजोड है । क्या गद्य और क्या पद्य, सभी रचनाएँ समान रूप से सरस, हृदयस्पर्शी और प्रभावोत्पादक होती है। अभिव्यक्ति की सहजता, सरलता, सुवोधता और अकृत्रिमता आपकी विशेषता है। सुललित भाषा, नाद सौन्दर्ययुक्त काव्य कला पर भावोत्तेजक कथ्य सब मिलकर काव्यरचनाओ को चित्ताकर्षक एव मनोरम तो वनाते ही है, उनके प्रभाव को भी वढा देते है । यही कारण है कि व्याख्यान के अन्तर्गत जिन विन्दुओ को आप विशेष महत्त्व-पूर्ण मानकर प्रभावशाली वनाना चाहते है उनको पद्यमय रूप दे देते है और आश्चर्य तो इसमे है कि आपकी ये पद्यवद्धता पूर्व तैयारी के साथ नही होती । ऐसे प्रभावपूर्ण प्रसग आशुरूप से ही काव्याभिव्यक्ति प्राप्त करते चलते है ।

समृद्ध परम्परा के सन्दर्भ मे

जीवन का सर्वांगीण विकास करने के लिए साधना अनन्य साधन है । साधना से साधक सिद्धि प्राप्त करता है । यह एक प्रदीप्तिमान प्रकाश है, यह एक ऐसी ज्योति है जिससे जीवन का हर कोण चमक उठता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी की कृति 'अमर सूरि काव्य' के अग्रांश पर आधारित उपर्युक्त पंक्तियां गुरुदेवश्री की साधना-दृढता की सुन्दर से सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। यह साधना वास्तव मे 'रचना' नही 'विकास' है। सुश्रृंखलित पूर्वपरम्परा की एक सुदृढ कडी है। साधना का दीर्घकालिक प्रवाह अपने सस्कारो सहित गुरुदेवश्री की साधना में सिमट कर सुरभित हो उठा है जिससे दिग्‌दिगन्त मुग्ध है । साधनायात्रा के कुछ समीप अतीत के पडावो का परिचय कदाचित् अप्रासंगिक नही होगा, अपितु इस माध्यम से विषय का हृदयंगम सुगम भी हो सकेगा । अस्तु, संक्षेप में ही साधना की पूर्व परम्परा की झलक प्रस्तुत है ।

बात भारतीय राजधानी दिल्ली नगर की है । समय था विक्रम सवत् १७१९ का । तातेड गौत्रीय सेठ देवीसिहजी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी के साथ वहाँ निवास करते थे । श्रीमती कमला देवी ने एक शुभ रात्रि मे अमर भवन का सुखद, सुन्दर स्वप्न देखा । परिणामत यथासमय पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई । यह शुभ दिवस था रविवार, आश्विन शुक्ला चतुर्दशी (वि० सं० १७१९) का । शिशु का नामकरण हुआ 'अमरसिंह' । उपयुक्त आयु-प्राप्ति पर बालक के लिए कलाचार्य के सान्निध्यकी व्यवस्था की गयी विद्याभ्यास हेतु । अद्‌भुत प्रतिभा के कारण अल्प समय मे ही अरबी, फारसी, उर्दू, सस्कृत तथा अन्य भाषाओ का अधिकारपूर्ण ज्ञान इन्हे हो गया। तनिक और अधिक वय प्राप्त होने पर पूज्यश्री लालचन्दजीम० के

सान्निध्य से आपकी गतिविधियो एवं व्यक्तित्व-स्वरूप मे असाधारण परिवर्तन लक्षित होने लगे। पिता को 'पुत्र के पाँव पालने मे' दीख पडने लगे। पुत्र के आध्यात्मिक विचारो की दृढता एवं गंभीरता ने पिता के मन मे संशय उत्पन्न कर दिया। कही यह वैराग्य धारण न कर ले? इस संशय को निर्मूल करने का उपाय भी किया गया। मात्र १३ वर्ष की अल्पायुमे ही आपको परिणय-सूत्र-मे आवद्ध कर दिया गया। आपकी अंत प्रेरणा पर यह वन्धन प्रहरा न डाल सका। मन इच्छित साधना मार्ग पर ही उत्तरोत्तर अग्रसर होता रहा। २१ वर्ष की आयु मे आपने पूज्य लालचन्दजी महाराज साहव के आश्रय मे ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक जीवनयापन का सकल्प धारण कर लिया। पुत्र की मानसिक अटलता को दृष्टिगत रखते हुए पिता ने भी दीक्षार्थ अनुमति प्रदान कर दी और २४ वर्षकी आयु मे (सं० १७४१) मे चैत्र कृष्णा १० को उल्लासपूर्ण समारोह की साक्षी मे आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की।

जैनागमो का गहन अध्ययन कर आपने अपने साधक व्यक्तित्व को प्रखरतर किया। ज्ञान एवं क्रिया मे आप दृढ थे ही। आपके पूज्य गुरुदेव लालचन्दजी म० ने संघ की साक्षी मे संथारा कर लिया और कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष मे दिव्यात्माने नश्वर देह का बंधन त्याग दिया। संवत् १७६१ मे आपकी सुविज्ञता के आधार पर आपको आचार्य पद पर नियुक्त किया गया।

सभी दिशाओ से पूज्य अमरसिंहजी म० को आचार्य पद की चादर ओढाने के प्रयोजन से प्रतिनिधि-मण्डल पहुँचने लगे। चैत्र शुक्ला पंचमी को दिल्ली मे आचार्य-पद महोत्सव का आयोजन निश्चित किया गया। अपार संख्या मे साधु-साध्वियाँ समारोह मे एकत्रित हुई। पूज्य पदारोहण उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मास दिल्ली मे ही हुआ जिसके दौरान मानवधर्म, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, निरामिश आहार, क्षमा आदि मानवोचित व्यवहारो से सम्वद्ध सदुपदेशो द्वारा प्राय प्रतिदिन हजारोकी जनता को पूज्य आचार्य श्री लाभान्वित करते रहे।

लगभग इसी समय एक अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण घटना घटित हुई। बादशाह की १८ वर्षीया अविवाहिता कन्या को गर्भ रह गया था। लोकलज्जा, से ग्रस्त बादशाह राजकुमारी की हत्या की योजना बना रहा था। इससे पीडित होकर जोधपुर के दीवान खीवसिहजी भण्डारी पूज्यश्री के चरणो मे पहुँचे। पूज्यश्री ने इस प्रसंग मे अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि पुरुष के संयोग के बिना भी कभी-कभी गर्भ स्थिर हो सकता है। स्थानाग सूत्रादि मे इसके कारणो का उल्लेख है। पूज्यश्री का यह मत अद्‌भुत ही नही, किसी सीमा तक अस्वाभाविक भी प्रतीत हो रहा था, किन्तु गर्भ परीक्षा पर यह धारणा सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। बादशाह अतिशय प्रभावित हुआ और हजारो दर्शनार्थियो को साथ लेकर पूज्यश्री के दर्शन की कामना से उपस्थित हुआ। पूज्यश्री के प्रभाव से बादशाह ने दो दिन का नियम लिया कि हिंसा का सर्वथा परित्याग करूँगा।

दीवान खीवसिहजी बादशाह का अनुरोध लेकर पूज्यश्री की सेवामे उपस्थित हुए कि पूज्यश्री का मारवाड पधारना हो, अत्यधिक आग्रह के कारण पूज्य श्री ने समस्त मुनि समुदाय के साथ मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को मारवाड की ओर प्रस्थान किया। अलवर, जयपुर, अजमेर होते हुए आप सोजत पधारे। यति लोगोने आपको कोट के मोहल्ले मे अवस्थित मस्जिद मे ठहराया। उस मस्जिद मे पहले एक मुसलमान मरकर जिन्द (व्यन्तर देव) हुआ था, जो रात्रि मे वहाँ पर किसी को भी ठहरने नही देता था। रात्रि होने पर वह जिन्द प्रगट हुआ, उपसर्ग दिये, पर ज्यो ही पूज्यश्री ने 'उवसग्गहर' स्तोत्र का पाठ किया कि वह जिन्द पूज्य श्री के चरणो मे गिर पडा। दूसरे दिन उसने मौलवी के शरीर मे प्रवेश कर यह उद्‌घोषणा कर दी कि आज से यह मस्जिद नही, जैन धर्म स्थानक होगा। आज भी वह मस्जिद के स्थानक के नाम से विश्रुत है। उस स्थानक का आज यद्यपि कायाकल्प हो चुका है तथापि वह आचार्य प्रवर के तपस्तेज को उजागर कर रहा है।

आचार्य प्रवर पाली पधारे और वहाँ यतियो के साथ शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त की। पूज्यश्री के बढते हुए तेज को यतिगण सहन न कर सके। पालीसे जोधपुर पधारे-दीवान खीवसिहजी राजकार्य हेतु वाहर गये हुए थे। यति भक्तो ने पूज्यश्री को आसोप ठाकुर साहव की हवेली मे उतारा जहाँ पर ठाकुर कल्याणसिहजी जोधपुर नरेश के वदले मे जहर का प्याला पीकर मरे थे और व्यन्तर देव हुए थे। रात्रि मे उस हवेली मे कोई भी व्यक्ति रह नही सकता था। पूज्यश्री अपने शिष्य समुदाय सहित वहाँ पर विराजे। व्यन्तर प्रकट हुआ, उसने अनेक उपसर्ग दिये, पर पूज्यश्री के तप-तेज से देवी शक्ति परास्त हो गई। प्रात कुतूहल के साथ लोगो ने देखा कि व्यन्तर देव पूज्यश्री का वाल भी वॉका न कर सका है। विरोधी पूज्यश्री के चरणो मे गिर पड़े। यह बात ज्यो ही लोगो ने सुनी त्यो ही आश्चर्यचकित हो गए। वे पूज्यश्री की आध्यात्मिक शक्ति को देख कर नत थे। सर्वत्र स्थानकवासी जैन समाज की विजय वैजयन्ती लहराने लगी। मारवाड़ मे सर्वप्रथम स्थानकवासी जैन धर्म का प्रचार करने का श्रेय पूज्य श्री अमरसिहजी म. को है। मारवाड के सभी गॉवो मे फिर कर पूज्यश्री ने शुद्ध स्थानकवासी धर्म का प्रचार किया।

पूज्यश्री धन्नाजी म जो उस समय साचोर विराज रहे थे, उन्होने सुना कि आचार्य श्री अमरसिहजी म ने मारवाड मे स्थानकवासी धर्म का खूब प्रचार किया है तो वे भी मारवाड मे पधारे। दोनो आचार्यो का मधुर मिलन नागोर मे हुआ। आचार्यश्री ने अजमेर, किशनगढ, भीलवाडा, शाहपुरा, उदयपुर, रतलाम, इन्दौर प्रभृति अनेक शहरो मे वर्षावास किये।

आचार्य प्रवर के प्रवल प्रभाव से उत्प्रेरित होकर पचेवर ग्राम सं १८१० वैशाख शुक्ला पचमी, मंगलवार को पूज्यश्री कनिरामजी महाराज ऋषि सम्प्रदायस्थ आचार्य ताराचन्दजी म., श्री जोगराजजी म, श्री मिवाजी म, श्री तिलोकचन्दजी म एव आर्याजी राधाजी, पूज्यश्री हरदासजी म के अनुयायी श्री मलूकचन्दजी म, आर्याजी

फूलाजी प्रभृति, पूज्यश्री परसरामजी के सम्प्रदाय के मुनि श्री खेतसीजी, श्री खीवसीजी, आर्या केशरजी आदि का सन्त सतियो का सम्मेलन हुआ और आध्यात्मिक सामाजिक आगमिक चर्चाएँ हुई । सभी की एक सामाचारी हुई और सभी एक सूत्र मे सूत्रित हो गए । स्मरण रखना चाहिये कि उस सम्मेलन मे पूज्य अमरसिहजी म. के लघु गुरुभ्राता पूज्यश्री दीपचन्दजी म एवं परम विदुषी भागाजी आदि भी उपस्थित थी । इस प्रकार सर्वत्र स्नेह सौजन्यता-पूर्ण सद्व्यवहार का संचार हुआ ।

पूज्यश्री का अन्तिम वर्षावास अजमेर संघ के अत्याग्रह पर अजमेर मे हुआ । उस वर्षावास मे खूब ही धर्मोद्योत हुआ और अन्त मे संवत् १८१२की आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को ५ दिन का सथारा धारण कर स्वर्गवासी हुए । पूज्यश्री ने इस प्रकार ८३ वर्ष की आयु पूर्ण करजीवन-लीला का शुभ समापन किया । आपके आशीर्वाद व आश्रय की शीतल छाया मे साधनारत १२ शिष्यो का आश्रय कुज ही जैसे ध्वस्त हो गया था । क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी ने मिलकर कम्पित हृदय लिये कर्पूर आदि सुगधित पदार्थो सहित, दिवंगत पूज्य श्री का दाह-सस्कार सम्पन्न किया ।

पूज्य अमरसिहजी महाराज उस आचार्य परम्परा के पुनीत और सुदृढ प्रारभ स्वीकार किये जाते है, जिसकी वर्तमान विकसित अवस्था पूज्य गुरुदेवश्री "राजस्थान केसरी" श्री पुष्कर मुनिजी म० के विराट् व्यक्तित्व के रूप मे विद्यमान है । निश्चित ही संस्कारो के रूप मे पूर्वाचार्यो की अनुपम प्रतिभा, क्षमता एवं विवेक-वैभव जो उत्तराधिकार के रूप मे आपश्री को प्राप्त हुआ है, वह आपश्री की प्रतिभा का आश्रय पाकर और अधिक सशक्त हुआ है । इस संबंध मे रचमात्र सन्देह नही कि परम्परा के साथ भविष्य मे भी यह वैभव विकासमान स्थिति मे अग्रसर हो पायगा । पूज्य अमरसिहजी म० के पश्चात् आचार्य परम्परा का विकास अधोलिखित रूप मे चित्रित किया जा सकता है :

पूज्यश्री अमरसिंहजी महाराज
पूज्यश्री तुलसीरामजी महाराज
पूज्यश्री सुजानमलजी महाराज
धर्मवीरश्री जीतमलजी महाराज
पूजनीय श्री ज्ञानमलजी महाराज
पूज्यश्री पूनमचन्दजी महाराज
आत्मार्थी मुनिश्री ज्येष्ठमलजी महाराज
महास्थवीर पण्डित मुनिश्री ताराचन्दजी महाराज
वर्तमान · राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज *

*

*विस्तृत परिचय परिशिष्ट में उपलब्ध ।

चातुर्मास डायरी

रचनात्मक, प्रेरक प्रसंगों सहित

व्रजनशीलता साधु-जीवन की एक महती मर्यादा है। मुनिजन इसी कारण सचरण-प्रिय होते है। विचरण इनके संयम का रक्षक बना रहता है। निश्चित स्थान के प्रति आकर्षण और आसक्ति का भाव अन्य अनेक अवाछित तत्त्वो का सृजक हो जाता है। साधुओ के निर्दोष व्यवहार की केवल कसौटी ही नही, विहार-प्रियता उस भाव को दृढतर भी करती रहती है।

"बहतापानी निर्मला, पडा गन्देला होय।
साधु तो फिरता भला, दोष न लागे कोय॥"

आदि उक्तियाँ प्रव्रजन के महत्व को भली भाँति प्रतिपादित कर देती है। विचरण की यह प्रवृत्ति समाज के व्यापक भाग को लाभान्वित करने की समर्थता से साधुजनो को विभूपित करती है। सरिता का प्रवाहित जल समीपस्थ वनस्पतियों को सीचता हुआ निरन्तर अग्रसर होता रहता है–प्रकृति का यह आचरण शुद्धतम रूप से मुनिजनो के लिए सदा अनुकरणीय आदर्श रहा है।

संचरणधर्मी साधु-समाज जहाँ अपने इस आदर्श को महत्व देता है, वहाँ श्रावक जन मुनिराजो की स्थिरता मे आनन्द का अनुभव करते है। सेवा-सत्कार का अवसर पाकर वे कृतकृत्य हो उठते है। सदुपदेशो से जीवन मे उत्कर्ष प्राप्त कर पाते है। भारत की जलवायु के अनुसार प्रकृति ने तीन प्रमुख ऋतुओ का विधान किया है–ग्रीष्म, शरद् और वर्षा। ग्रीष्म काल के प्रचण्ड आतप से धरती झुलसने लगती है। सर्वत्र लू का प्रकोप रहता है जो समस्त प्राणियों के लिए अतीव कष्टकर होता है। इस भीषण

ताप से ग्रस्त हो शीतलता हेतु वर्षा की कामना करने लगते है, और वर्षा के शुभागमन से सर्वत्र हर्ष छा जाता है। धरती हरित हो उठती है, श्याम जलधरो से आकाश आच्छादित हो जाता है, जलाशय निर्मल जल मे आपूरित हो लहराने लगते है, नदी-झरने कल कल छल छल करते हुए प्रवाहमान हो जाते है। प्रकृति की छटा चित्ताकर्षक हो जाती है। मेघानुरागी मयूर नर्तित हो उठता है—अपने प्रियतम की छवि निहार कर। वर्षाऋतु जहाँ वानस्पतिक वैभव को अभिवर्धित करती है, वहाँ धरातल पर नाना भाँति के कीट-कीटाणु सूक्ष्म जन्तुओ की भी सृष्टि करती है। अत इस काल मे भगवान् महावीर ने साधु-साध्वियो के विहार को वर्जित रखा है। साधु-समाज दृढतापूर्वक इस निषेध का पालन करता है। आषाढ शुक्ला पूर्णिमा से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक चार माह की अवधि साधुओ को विचरणरहित रह कर एक ही स्थल पर स्थिर रूप मे व्यतीत करनी होती है। यही चातुर्मास है।

चातुर्मास मे साधु-सन्तो को पर्याप्त अवसर मिल जाता है श्रावक-श्राविकाओ को सदुपदेशों द्वारा लाभान्वित करने का। प्रकृति मे मयूर और इधर श्रद्धालुओ के मन-मयूर एक ही साथ नृत्य-मग्न रहते है। प्रत्येक धर्म मे यह काल उपासनादि हेतु अनुकूल माना जाता है। जैन धर्मानुयायिओका पर्यूषण पर्व भी इसी समय आता है, तपस्याएँ की जाती है, व्याख्यान, ज्ञान-ध्यान आदि के कार्यक्रम चलते रहते है। वर्षा का शान्त वातावरण इन सब मे बडा अनुकूल सिद्ध होता है।

परम् पूज्य गुरुदेवश्री राजस्थान केसरी पडित रत्न श्री पुष्कर मुनिजी म०अब तक जिनवाणी की अमृतवर्षा करते हुए ५० चातुर्मास सम्पन्न कर चुके है। तत्सम्बन्धी दीर्घ तालिका से यह भली भाँति स्पष्ट होता है कि आपश्री ने इस माध्यम से देशके कितने व्यापक भाग को प्रभावित किया है एव प्रान्त-प्रान्त मे आपश्री को कितनी लोकप्रियता प्राप्त है।

चातुर्मास श्रृंखला

संख्या	विक्रम सं०	क्षेत्र का नाम	प्रान्त का नाम
१	१९८१	समदड़ी	मारवाड
२.	१९८२	नान्देशमा	मेवाड
३.	१९८३	सादडी	मारवाड
४.	१९८४	सीवाना	मारवाड
५.	१९८५	जालौर	मारवाड
६.	१९८६	सीवाना (सकारण)	मारवाड
७	१९८७	खाण्डप	मारवाड
८	१९८८	गोगुदा	मेवाड
९	१९८९	पीपाड	मारवाड
१०	१९९०	भंवाल	मारवाड
११.	१९९१	व्यावर	मारवाड
१२.	१९९२	लीमडी	गुजरात
१३	१९९३	नासिक	महाराष्ट्र
१४	१९९४	मनमाड	महाराष्ट्र
१५	१९९५	कम्बोल	मेवाड
१६	१९९६	सीवाना	मारवाड
१७	१९९७	खण्डप	मारवाड
१८	१९९८	समदडी	मारवाड
१९	१९९९	रायपुर	मारवाड
२०.	२०००	पीपाड़	मारवाड
२१	२००१	जोधपुर	मारवाड
२२	२००२	नान्देशमा	मेवाड
२३	२००३	धार	मध्यप्रदेश
२४	२००४	नासिक	महाराष्ट्र
२५.	२००५	घाटकोपर, बम्बई	महाराष्ट्र

२६.	२००६	चूडा	गुजरात
२७.	२००७	नान्देशमा	मेवाड़
२८.	२००८	सादडी	मारवाड़
२९.	२००९	मीवाना	मारवाड़
३०.	२०१०	जयपुर	मारवाड
३१.	२०११	दिल्ली	दिल्ली
३२.	२०१२	जयपुर	मारवाड
३३	२०१३	जयपुर	मारवाड
३४.	२०१४	उदयपुर	मेवाड
३५.	२०१५	वाघपुरा	मेवाड
३६	२०१६	जोधपुर	मारवाड
३७.	२०१७	व्यावर	मारवाड
३८	२०१८	सादड़ी	मारवाड़
३९.	२०१९	जोधपुर	मारवाड
४०	२०२०	जालोर	मारवाड
४१	२०२१	पीपाड	मारवाड
४२	२०२२	खाण्डप	मारवाड
४३	२०२३	पदराडा	मेवाड
४४.	२०२४	वालकेश्वर, वम्वई	महाराष्ट्र
४५.	२०२५	घोडनदी	महाराष्ट्र
४६.	२०२६	पूना	महाराष्ट्र
४७	२०२७	दादर वम्वई	महाराष्ट्र
४८	२०२८	कादावाडी वम्वई	महाराष्ट्र
४९	२०२९	जोधपुर	मारवाड
५०	२०३०	अजमेर	राजस्थान
५१	२०३१	अहमदाबाद	गुजरात

संवत् १९८१ : समदड़ी चातुर्मास

परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज ने, जैसा कि पूर्व मे निवेदन किया जा चुका है, जालोर नगर मे संवत् १९८१ से ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को अति शुभ मुहूर्त मे दीक्षा ग्रहण की थी। यह मुहूर्त सन्त-समाज के लिए स्वाति नक्षत्र सिद्ध हुआ जिसने परम कान्ति सम्पन्न मूल्यवान मोती प्रदान किया। विक्रम सं० १९८१ का वर्ष हो आपश्री के मुनि जीवन का प्रथम वर्षावास था, जहाँ से आपश्री के चातुर्मास की सुदीर्घ और सन्त परम्परा का समारंभ हुआ है। समदड़ी मे व्यतीत चातुर्मास के इस प्रारम्भिक काल मे आपश्री ने प्रारम्भिक भाषाओ का एव उनमे विरचित गौरव-ग्रन्थो का अध्ययन किया। आपश्री का जीवन त्याग और विराग से रजित हो गया था और संयम एवं तपश्चर्या आपके जीवन का मूलभूत लक्षण बन गया था।

संवत् १९८२ : उदयपुर आगमन एवं नान्देशमा—चातुर्मास

मेवाड के यशस्वी पुत्र और इस प्रदेश के गौरव गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ श्रद्धालु मेवाड प्रान्तीय जनता व्यग्र थी। उदयपुर आगमन हेतु बार-बार अनुरोध किया जा रहा था। अत. आपश्री ने स्वीकृति प्रदान की और ठाणा ३ समदडी से विहार कर जालोर, साण्डेराव, सादडी होते हुए मेवाड की ओर प्रयाण किया। देलवाडा, डबोक होते हुए आपश्री का आगमन जब तत्कालीन मेवाड राज्यकी राजधानी उदयपुर मे हुआ तो जिस भव्यता के साथ आप श्री का स्वागत हुआ वह एक स्मरणीय तथ्य है। पूर्व अनुरोधो मे जो श्रद्धा भाव था, वह इससे पुष्ट हुआ। महास्थविर श्री की मातेश्वरी महासती ज्ञानकुँवरजो तथा महासती मदनकुँवरजी सोहनकुँवरजी आदि वहाँ पर विराजित थी।

प्रसंगवश यह वह काल था जिसमे धर्माकाश साम्प्रदायिक सकीर्णताओ के मेघो से आच्छादित था। पूज्य गुरुदेव प्रस्तुत प्रवास काल मे मोतीझेंरा रोग से पीडित हो गये थे। उदयपुर मे इतर सम्प्रदाय सम्बद्ध सन्तजन भी विराजित थे, किन्तु शिष्टता-

वग भी उन्होंने कुशलक्षेम विषयक किसी औपचारिकता का निर्वाह आवश्यक नही माना । चित्र की अपूर्णता के भय से ही यह उल्लेख तनिक अनिवार्य हो गया । मेघाच्छादन तो अस्थायी ही होता है । आकाश पुन. स्वच्छ हो गया और इस सन्दर्भ मे यह स्पप्ट करना भी आवश्यक प्रतीत नही होता कि इस निराकरण मे गुरुदेवश्री की कितनी महती भूमिका रही है ।

उदयपुर प्रवास के इसी समय मे आपश्री के गुरुदेव से महासती ज्ञानकुँवरजी द्वारा अनुरोध किया गया कि गुरुदेवश्री के जन्मक्षेत्र नान्देशमा ग्राम मे आगामी चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की जाय । नान्देशमा संघ की प्रार्थना से प्रभावित हो आपश्री के गुरुदेव ने तत्संबंधी स्वीकृति प्रदान की और नान्देशमा-चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ । यहाँ आपश्री ने सस्कृत का अभ्यास प्रारम्भ किया ।

संवत् १९८३ : सादड़ी चातुर्मास

नान्देशमा-चातुर्मासोपरान्त गोगुन्दा होकर आपश्री ने बगडून्दा की ओर विहार किया । होली-चातुर्मास वगडून्दा मे हुआ । उदयपुर से महासती धूलकुँवरजी ठाणा ५ का इसी समय वहाँ आगमन हुआ । आपके साथ दो विरक्त बहने आयी थी जो संयम अंगीकार करने की आकाक्षा रखती थी । ये विरक्त बहने थी श्री धनराजजी की पुत्री सेडी वाई तथा इनकी पुत्री वाल ब्रह्मचारिणी अजब कुँवर वाई । इन दोनो माता-पुत्री के लिए दीक्षानुमति प्रदान कर दी गयी और खाखड ग्राम मे दीक्षा महोत्सव का आयोजन किया गया । फाल्गुन शुक्ला २, संवत् १९८२ मे दीक्षा महोत्सव पर आपश्री को स्वामी दौलतरामजी म० का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वगडून्दा मे ही विराजना पडा । दीक्षोपरान्त सेडीवाई का नाम महासती गंभूकुँवरजी रखा गया एव वाल ब्रह्मचारिणी अजवकुँवर वाई का नाम विदुपी महासती श्री शीलकुँवरजी रखा गया । दोनो महासतियो की वडी दीक्षा पर गुरुदेवश्री उदयपुर से देलवाडा पधारे । देलवाडा मे घासा संघ के प्रतिनिधि चातुर्मास

कराने हेतु उपस्थित हुए। महास्थविरजी म० ने फरमाया कि यदि इस वर्ष चातुर्मास मेवाड मे करूँगा तो घासा क्षेत्र मे और मेवाड़ छोड दिया तो बन्धन मे नही। तदनन्तर गुरुदेवश्री नान्देशमा पधारे। सादडी संघ के अत्याग्रह पर आपश्री पदराडा, सायरा, राणकपुर होते हुए चातुर्मासार्थ सादडी पधारे। इस वर्ष महासती धूलकुँवरजी एवं लघुसाध्वी शीलकुंवरजी आदि सतियो का भी वर्षावास सादडी मे ही हुआ। इस वर्ष वर्षा अधिक हुई थी—लगातार तीन दिन की वर्षा से अनेक मकान धराशायी हो गये थे। और चरितनायकजी को भी तेला (तीन दिन का उपवास) हो गया। यह तो सर्व विदित है ही कि जैन साधु वर्षा के समय भिक्षार्थ नही निकलते। जैन साधुओ की यह कठिन चर्या देखकर जैनेतर जनता के हृदय मे अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई। जब महाराज श्री चातुर्मास पूर्ण कर सादडी से ब्यावर पधारे, तो ब्यावर के रायली कम्पाउण्ड मे आपके प्रतिदिन प्रवचन होते थे। जनता अच्छी सख्या मे उपस्थित होती। ब्यावर से आपश्री का आगमन नीमाज-जेतारण के मार्ग से बिलाडा हुआ। बिलाडा मे उस समय इतर सम्प्रदाय के सन्तगण विराजित थे, जो धार्मिक मतभेदो के कतिपय बिन्दुओ पर शास्त्रार्थ के अभिलापी थे, किन्तु गुरुदेवश्री के आगमन की सूचना से ही शास्त्रार्थ का विचार त्याग कर विहार कर गये।

संवत् १९८४ : सिवाना—चातुर्मास

बिलाडा से विहार कर आपश्री का शुभागमन पीपाड नगर मे हुआ। यहाँ एक शुभयोग रहा। पूज्य श्री हस्तीमलजी म० तथा पण्डितरत्नश्री चौथमलजी म० (जयमलजी म० के सम्प्रदाय के) पीपाड मे पहले से ही विद्यमान थे। गुरुदेवश्री के आगमन ने इस स्थल एवं अवसर को मानो त्रिवेणी-संगम का ही स्वरूप प्रदान कर दिया। दिव्य मूर्तित्रय के सान्निध्य लाभ से सर्वत्र हर्षातिरेक व्याप्त हो गया था। पीपाड से आपश्री अपने गुरुदेव के साथ जोधपुर पधारे। यहाँ समदडी, सिवाना, मोकलसर, जालोर आदि के संघ गुरुदेवश्री के चातुर्मास की कामना के साथ एकत्रित

थे । द्रव्य क्षेत्र काल-भाव की अनुकूलता देखते हुए साधु–मर्यादानुसार सिवाना चातुर्मास हेतु आग्रह स्वीकृत हो गया । यथा-समय यह चातुर्मास सोत्साह सम्पन्न हुआ ।

संवत् १९८५ : जालोर–चातुर्मास

सिवाना से विहार कर मोकलसर आदि क्षेत्रो मे यात्रा करते हुए आपश्री का आगमन खण्डप मे हुआ जहाँ जालोर सघ आपश्री की सेवा मे चातुर्मास के अनुरोध के साथ उपस्थित हुआ । साधु-मर्यादानुरूप अनुरोध स्वीकार किया गया और आपश्री बाडमेर जिले के क्षेत्रो को पुनीत करते हुए चातुर्मास हेतु जालोर पधारे ।

संवत् १९८६ : सिवाना–चातुर्मास

जालोर–चातुर्मास समापन पर गुरुदेवश्री का आगमन पुनः सिवाना हुआ, जहाँ से आगे का लक्ष्य था कुसीप गाँव । अस्वस्थता कारण कुसीप मे लगभग एक माह विश्रामार्थ रुकना पडा । यहाँ पुन सिवाना संघ की ओर से किया गया अनुरोध मान्य रहा और स्वास्थ्य सबंन्धी परिस्थितियो के कारण औचित्य स्वीकारते हुए संवत् १९८६ का चातुर्मास सिवाना मे व्यतीत किया गया ।

संवत् १९८७ : खण्डप–चातुर्मास

सिवाना से विहार कर आपश्री समदडी होते हुए जोधपुर पधारे । जोधपुरवासियो का यह सौभाग्य ही था कि प्रर्याप्त दीर्घकाल तक उन्हे गुरुदेवश्री की सेवा का सुयोग्य अवसर प्राप्त हुआ । यहाँ खण्डप संघ के अत्याग्रह पर आगामी चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की गयी । धर्म–ध्यानादि की दृष्टि से यह खण्डप-सघ चातुर्मास हेतु अविस्मरणीय रहा । विशेष उल्लेखनीय यह वात रही कि आपश्री के सान्निध्य मे ‘अमर जैन ज्ञान भण्डार’ की स्थापना हुई जिसमे सेठ धनराजजी गुमनाजी लुँकड का विशेष सहयोग रहा ।

सवत् : १९८८ गोगुन्दा–चातुर्मास

मेवाड की धर्मप्रिय जनता आपश्रीके दर्शनार्थ व्यग्र थी, किन्तु स्वामी दौलतरामजी म० की अस्वस्थता के कारण समस्या उत्पन्न हो गयी थी । नारायणदासजो म० ने स्वेच्छापूर्वक वही रुक कर दौलतरामजी म० की सेवा करना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार इस समस्या का निराकरण हो गया । खण्डप चातुर्मास समापन पर आपश्री समदडी पधारे । मेवाड की श्रद्धालु धर्मप्रिय जनता के आग्रह पर आपश्री ने सादडी की ओर प्रस्थान किया और राणकपुर, सायरा, गोगुन्दा के मार्ग से उदयपुर पहुँचे । गोगुन्दा-संघ के आगामी वर्षावास विषयक आग्रह पर आपश्री के गुरुदेव ने स्वीकृति का भाव व्यक्त किया और तदनुसार सवत् १९८८ का गोगुन्दा–चातुर्मास हुआ । इस अवधि का एक उल्लेखनीय बिन्दु यह रहा कि आपश्री ने उर्दू भाषा का अध्ययन किया। इस वर्ष वर्षावास मे महासती धूलकुँवरजी एव शीलकुँवरजी भी विराज रही थी ।

संवत् १९८९ : पीपाड़–चातुर्मास

गोगुन्दा–चातुर्मास की समाप्ति पर आपश्री ने भोमट क्षेत्र की ओर विहार किया और ओगणा होते हुए झालावाड़ पधारे। झालावाड से सादडी होकर आपश्री समदडी पधारे जहाँ नारायणदासजी म० का मिलन हुआ तथा महास्थविरजी म० पाली का अत्यधिक आग्रह होने पर सघ एकता की दृष्टि से नारायणदासजी म० को साथ लेकर पाली पधारे और हमारे चरितनायकजी ठाणा ३ से खण्डप पधारे। पाली मे इस समय 'मरुधर मुनि सम्मेलन' की तैयारियाँ चल ही रही थी । आपश्री के गुरुदेव मरुधर प्रदेश के मुनि समाज मे अग्रणी स्थान रखते थे, अत. आपके दृढ स्कंधो पर भी सम्मेलन का महत्वपूर्ण दायित्व था। 'सम्मेलन मे संघ एकता' को प्रबल बनाने के प्रभावी मार्गो और साधनो पर गभीरता से विचार किया गया । इस जैन इतिहासख्याता अधिवेशन मे आपश्री के पूज्य गुरुदेवश्री ताराचन्दजी म० का

अविस्मरणीय प्रवचन 'सघ एकता' की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रहा और समस्त उपस्थित मुनिवृन्द आपश्री के रचनात्मक सुझावो से अतीव प्रभावित हुआ। तत्पश्चात् गुरुदेवश्री का पुन. वाडमेर जिले मे आगमन हुआ। मोकलसर पधारे मोकलसर मे आपके ही सप्रदायस्थ श्री उत्तमचन्दजी म० शास्त्रज्ञ, जुहारमलजी म०, वाघमलजी ठा० ३ से विराजित थे। ग्रीष्मऋतु एव लू का प्रकोप चल रहा था अकस्मात रात्रिमे स्थविर श्री दौलतरामजी म० का, जो आपके साथ में थे, स्वर्गवास हो गया। मोकलसर से दुन्दाडा, पधारे इस वर्प पीपाड आदि के सघो द्वारा चातुर्मास हेतु निवेदन किये जा रहे थे तदनुसार पीपाड मे चातुर्मास हेतु निर्णय किया गया।

सवत् १९९० : भंवाल—चातुर्मास

पीपाड के इस भव्य चातुर्मास के समापन पर गुरुदेव श्री ने वाडमेर जिले मे विहार किया। इसी वर्ष अजमेर नगर मे 'बृहत् साधु सम्मेलन' के आयोजन हेतु तैयारियॉ चल रही थी। आपश्री के गुरुदेव ने सम्मेलनमे सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की तो श्रावक वर्ग का उत्साह कई गुना बढ गया।

दुन्दाडा मे इसी समय एक दु खद वृत प्राप्त हुआ कि विदुषी महासती ज्ञानकुँवरजी उदयपुरमे परलोक सिधार गयी। 'स्मृति-सभा' का आयोजन हुआ—त्याग, प्रत्याख्यान कराये गये।

'बृहत् साधु सम्मेलन' मे उपस्थित होने के प्रयोजन से गुरुदेवश्रीने अजमेर की ओर विहार किया। इस वार आपका मार्ग पाली होकर था। यह सम्मेलन विगत् १५ शताब्दियो जैन इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना मानी जाती है। इतिहास साक्षी है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के अनन्तर पाटलीपुत्र मे मुनि-सम्मेलन हुआ था। यह प्रथम ही अवसर था। इसके पश्चात् कालान्तर पर, लगभग ३ शताब्दियो पश्चात् दूसरा सम्मेलन मथुरा मे किया गया था। तृतीय अवसर वह था, जब प्रभुवीर के ९८० वर्ष पश्चात् वल्लभीपुर (सौराष्ट्र) मे विराट साधु सम्मेलन का आयोजन हुआ। मुनिवृन्द के कण्ठो

मे स्थित शास्त्रो को इस अवसर पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास हुआ। १३ मास तक चले इस विराट् सम्मेलन के मुख्य संचालक देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण थे। उन्ही की कृपास्वरूप आज वर्तमान मे हमे 'आगम' उपलब्ध है।

उपर्युक्त वल्लभीपुरी-सम्मेलन के अनन्तर डेढ सहस्राब्दी ऐसी व्यतीत हुई जिसमे इस दृष्टि से प्राय सर्वथा शून्य व्याप्त रहा। अत अजमेर नगर मे आयोज्य इस सम्मेलन की महत्ता का उच्च मूल्याकन किया जाना स्वाभाविक ही था। इस अवसर पर सर्वसम्प्रदायो के प्रमुख मुनिजन एकत्रित हुए थे। स्थानकवासी जैन समाज की स्फूर्ति भी देखते ही बनती थी। सन् १९३३ की ५ से २९ अप्रैल तक यह सम्मेलन चला जिसमे २५० से अधिक मुनिवर सम्मिलित हुए थे। आयोजन की महान उपलब्धियो के पीछे गुरुदेव श्री के गुरुदेव की प्रतिभा और प्रभाव को सर्वत्र स्वीकारा गया। आपश्री के व्यक्तित्व एवं गरिमा को समाज के बिखरते तारो के संगठन मे अद्भुत सफलता प्राप्त हुई।

सम्मेलन की समाप्ति पर आपश्री ने मेड़ता की ओर विहार किया और यथासमय भवाल-चातुर्मास का आयोजन हुआ। इस अवधि की उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही कि स्थानीय संघ द्वारा गुरुदेवश्री के सान्निध्य मे 'लोकाशाह विद्यालय' की स्थापना हुई।

संवत् १९९१ : ब्यावर – चातुर्मास

भंवाल से यथासमय बाडमेर जिले की यात्रा आरंभ हुई और सीवाणची मे विचरणोपरान्त आपश्री का पाली आगमन हुआ। ब्यावर-संघ गुरुदेवश्री के चातुर्मास हेतु लालायित था। अत तदर्थ स्वीकृति प्रदान की गयी। यह चातुर्मास यथाविधि चल ही रहा था कि अनायास ही एक संकट आ उपस्थित हुआ। स्थानाग सूत्रके ५ वे ठाणे मे उन परिस्थितियो का विधान है, जिनके अन्तर्गत किसी चातुर्मास काल मे ही विहार अनिवार्य हो जाता है। ऐसी ही स्थिति प्रस्तुत वर्षाकाल मे आ गयी। वस्तुस्थिति यह थी कि समदडी मे प्रवर्तकश्री दयालचन्दजी म० अति गंभीर रूप से रुग्ण

हो गये थे । परिणामत गुरुदेवश्री को विवश होकर अवधि पूर्व ही व्यावर से विहार कर समदडी पहुँचना पडा । यह घटना कार्तिक माह के कृष्णपक्ष की है । महाराज साहब के स्वास्थ्य मे सुधार होने पर आपश्री ने समदडी से विहार किया ।

संवत् १९९२ : लीबडी–चातुर्मास

समदडी से विहार कर आपश्री का पुन· व्यावर आगमन हुआ । यहाँ आपश्री 'काव्य प्रथमा' परीक्षा मे सम्मिलित हुए और तत्पश्चात् भीलवाडा, चित्तौड होते हुए नीमच से विहार कर आपश्री मालवा पधारे । मालवा प्रान्त के जावरा, रतलाम आदि स्थानो से होते हुए आपश्री ने गुजरात प्रान्त मे प्रवेश किया और लीबडी सघ (पंचमहाल) के अनुरोध पर आगामी वर्षावास हेतु स्वीकृति प्रदान की गयी और सानन्द चातुर्मास सम्पन्न हुआ ।

संवत् १९९३ : नासिक-चातुर्मास

गुरुदेवश्री का विचरण गुजरात और मालवा के संधिस्थल पर चल रहा था, तभी गुजरात के आग्रह पर आपश्री उस प्रदेश की ओर उन्मुख हुए । लीबडी से गोधरा, बडौदा होते हुए गुरुदेव श्री का आगमन खंभात होते हुए पेटलाद (आनन्द) हुआ, जहाँ आपने 'न्याय-प्रथमा' तथा 'सस्कृत काव्य मध्यमा' परीक्षाएँ उत्तीर्ण की । कालान्तर मे बम्बई की ओर विहार हुआ । मार्ग मे मुसलमान भाइयो के एक ग्राम (भरूच के पास नवीपुर मे) विश्राम के समय भूतिया बंगलेवाली वह घटना हुई (अन्यत्र प्रस्तुत ग्रन्थ मे यह प्रसंग विस्तृत रूप से वर्णित है) जिसने मुसलमानो का हृदय परिवर्तन कर दिया था । यथा समय बम्बई पधारे बम्बई मे उस समय स्थानकवासी समाज का वातावरण अशान्त बना हुआ था। सत्याग्रही मुनिश्री मिश्रीलालजी स्थानकवासी समाज की एकता के उद्देश्य से बम्बई स्थानकवासी समाज के प्रमुख सेठ वेलजी लखमसी नप्पू के वंगले के वाहर फुटपाथपर आमरण अनशन का संकल्प कर वैठ गए। उपवास के ६० से अधिक दिन व्यतीत हो चुके थे । वम्वई के प्रमुख व्यक्तियो ने आपश्री से आग्रह किया, मुनि

मिश्रीलालजी को समझाने के लिए। गुरुदेवश्री के पधारने पर मुनि मिश्रीलालजी ने कहा — आप मरुधर प्रान्त के मन्त्री है, यदि पूज्य हुक्मीचन्दजी म० के दोनो पक्षो को एक कराने की जिम्मेदारी आप ले लेवे तथा अन्य शर्ते भी आपको मान्य हो, तो मै पारणा कर सकता हूँ। कुछ शर्ते तो आपश्री को स्वीकार्य थी, पर कुछ बाते ऐसी भी थी, जिन्हे सुलझाना आसान न समझकर आपश्री माटुगा से विहार कर कादावाड़ी उपाश्रय मे सौराष्ट्र के प्रसिद्ध वक्ता कवि श्री नानचन्दजी म०, शतावधानी श्री सन्तबालजी म०, आत्मार्थी मोहन ऋषीजी म० प्रभृति मृनिवृन्द विराज रहा था। आपश्री भी उसमे सम्मिलित हुए। उस समय चौपाटी पर आर्य समाज का अधिवेशन चल रहा था। अधिवेशन के एक दिन के सभापति कवि नानचन्दजी महाराज थे। उस सभा मे गुरुदेवश्री को भी आमन्त्रित किया गया और यथासमय आप भी सम्मिलित हुए। कादावाडी मे आपश्री के सम्मिलित प्रवचन होते थे। इसी समय नासिक सघ वर्षावास के अनुरोध हेतु उपस्थित हुआ और तदर्थं स्वीकृति दे दी गयी। गोटी, इगतपुरी होते हुए आपश्री चातुर्मासार्थ नासिक पधारे। नासिक मे मरुधर सन्तो का पदार्पण एवं चातुर्मास का प्रथम ही अवसर था। नासिक के मारवाडी सज्जनो ने आपश्री के प्रति श्रद्धा व भक्ति का भाव प्रकट किया। इस समय हमारे चरितनायकजी का काशी से आये हुए प० व्याकरणाचार्य श्री रामानन्दजी के सान्निध्य मे अध्ययन सुचारू रूप से चल रहा था। अध्ययन के प्रमुख विषय संस्कृत, न्याय, काव्य आदि थे।

संवत् १९९४ : मनमाड़–चातुर्मास

नासिक–चातुर्मास के समापन पर आप श्री ने पूना की ओर विहार किया। पूना मे आपश्री संस्कृत परीक्षा 'न्यायमध्यमा काव्य-तीर्थ' मे सम्मिलित हुए। तदुपरान्त आपश्री अहमदनगर होते हुए राहोरी पधारे। राहोरी मे विदुषी महासती श्री एव राजकुँवरजी एवं जैन जगत की उज्ज्वल तारिका श्री उज्ज्वलकुमारीजी से मिलन हुआ। महासती श्री उज्ज्वलकुमारीजी से व्याकरण, न्याय,

काव्य आदि विषयक कई प्रश्नोत्तर भी हुए। महासतीजी ने यह भावना प्रकट की कि हमारे चरितनायकजी उन्हे न्याय का अध्ययन करावे–अत वर्षावास सम्मिलित हो। पर कारणवशात् ऐसा नही हो सका। तदनन्तर राहोरी से चरितनायकजी मनमाड पधारे। मनमाड मे इस वर्ष के वर्षावास हेतु अहमदनगर, घोड-नदी, औरंगाबाद एव स्थानीय सघ प्रार्थना हेतु उपस्थित हुए। सभी संघो का अत्याग्रह होने के कारण एकाएक किसी के पक्ष मे निर्णय देने मे कठिनता समझी जाने लगी। अन्तत· समस्या का समाधान यही निकाला गया कि चारो संघो के नाम की पर्चियाँ डाली जायँ। जिस संघ के नाम की लॉटरी खुलेगी निर्णय उसी के पक्ष मे रहेगा। ऐसा ही किया गया और लॉटरी मनमाड की खुली। तदनन्तर मनमाड़ से विहार कर आपश्री नासिक पधारे जहाँ पर चरितनायकजीने 'अमर सूरि काव्य' की रचना की। यथासमय मनमाडमे चातुर्मासार्थ भव्य स्वागत के साथ प्रवेश हुआ।

संवत् १९९५ : कम्बोल–चातुर्मास

मनमाड से विहार कर गुरुदेवश्री चालीसगाँव, पाचोरा, जलगाँव, भुसावल आदि स्थानो का विचरण करते हुए खण्डवा पहुँचे। खण्डवा समाज मे नया जोश उत्पन्न हुआ और धार्मिक आयोजन होने लगे। २५० सौ दया का पौषध का आयोजन हुआ। उसी दिन रतलाम से धर्मदास मित्र मण्डलवालो की ओर से ४० व्यक्तियो का शिष्टमण्डल रतलाम पधारने के आग्रह से उपस्थित हुआ। उन लोगो ने अपनी सही स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारे सघ में मतभेद होने से हमारे विपरीत पक्ष इस समय विनती करके पूज्यश्री हस्तीमलजी म० को रतलाम लाया है। अत आपको भी चलना होगा। और जबतक आप स्वीकृति प्रदान नहीं करेगे तबतक हम अन्न-जल का त्याग' करते है। महास्थविरजी म० के सामने धर्मसकट उपस्थित हो गया। अन्त मे स्वीकृति प्रदान कर दी गयी। आपश्री यथासमय रतलाम पधारे तथा आपश्री का प्रवचन धर्मदास जैन मित्रमण्डल मे प्रारम्भ

हुआ। जनता दिन प्रतिदिन बढने लगी। जैनेतर जनता भी अच्छी संख्या मे प्रवचन से लाभान्वित होने लगी। महास्थविरजी म० के अस्वस्थ होने से हमारे चरितनायकजी ने प्रवचन किये। इधर विराजित श्रद्धेय हस्तीमलजी म० ने अजमेर सम्मेलन के नियमानुसार अपना व्याख्यान वन्द कर दिया। स्वास्थ्य लाभ होने पर रतलाम से जावरा, मन्दसौर, नीमच, छोटी सादडी, वडी सादडी होते हुए कानोड़, भीडर, वल्लभनगर होकर एकलिगजी पधारे, जहाँ पर विदुषी महासती श्री शीलकुँवरजी से मिलाप हुआ। यही पर क्षत्रिय वालक केशरीसिहजी का महास्थविरजी म० के साथ धार्मिक अभ्यास हेतु आगमन हुआ जो कि आज पण्डित श्री हीरामुनिजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। एकलिगजी से आपश्री उदयपुर पधारे, जहाँ पर आपके सम्प्रदाय को मेवाड प्रान्तीय साध्वीगण का सम्मेलन हुआ। ३५ महासतियाँ एकत्रित हुई। इनमे नजरकुँवरजी, आनन्दकुँवरजी, मदनकुँवरजी, सोहन-कुँवरजी, धूलकूँवरजी, लहरकुँवरजी प्रभृति के नाम उल्लेखनीय है। यहाँ कम्वोल सघ के आग्रह पर वर्षावास के लिए आपश्री कम्बोल पधारे। चातुर्मास काल मे केसरीसिहजी, बावू धन्नालालजी एवं हुकमीचन्दजी तीनो बालक धार्मिक अभ्यास करते रहे।

संवत् १९९६ : सिवाना–चातुर्मास

कम्बोल से आपश्री का आगमन वाकल हुआ। मादडा मे पण्डित हीरामुनिजी म० की दीक्षा सम्पन्न हुई। तत्सम्बन्धी समारोह मे महासती धूलकुँवरजी, सोहनकुँवरजी, शीलकुँवरजी (ठाणा २९) की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही। यहाँ आपश्री से मारवाड़ के श्रद्धालु भक्तो द्वारा पुन. मारवाड–विचरण हेतु अनुरोध हुआ। परिणामत गुरुदेवश्री मोकलसर, समदडी, बालोतरा होते हुए सिवाना पधारे जहा आगामी चातुर्मास व्यवस्थित हुआ।

संवत् १९९७ : खण्डप–चातुर्मास

सिवाना–चातुर्मास की समाप्ति पर आपश्री मोकलसर, खण्डप, राखी, भावरी होते हुए पाली पधारे। पाली से आपश्री ने जोधपुर

हेतु विहार किया, जहाँ खण्डप मे चासुर्मास हेतु आपश्री से अनुरोध किया गया जिसे स्वीकृति प्रदान कर दी गयी ।

खण्डप वर्षावास के समाप्त होने पर आपश्री का मेवाड़ मे आगमन हुआ । इन दिनो मेवाड मे पूज्या गुरुआनीजी महासती सोहनकुँवरजी विराज रही थी । महासतीजी से श्रीमती तीजावाई (श्री जीवनसिंहजी की धर्मपत्नी एवं श्री कन्हैयालाल वडिया की पुत्र-वधू) का दीक्षा प्राप्ति का अत्यन्त भावभीना एवं आग्रहपूर्ण अनुरोध चल रहा था । इनकी पुत्री सुन्दरकुँवर पहले ही संवत् १९९४ मे मात्र १३ वर्षीय आयु मे दीक्षा प्राप्त कर चुकी थी । वे आज जैन धर्माकाश की उज्ज्वल तारिका साध्वीश्री पुष्पवतीजी के नाम से प्रख्यात है ।

पुत्र की खोज में माता

खण्डप चातुर्मास मे एक घटना घटी । आश्विन मास था एवं प्रात काल करीब आठ बजे का समय था । एक वृद्धा ब्राह्मणी ने अपने परिवार के ८–१० व्यक्तियो को साथ लेकर स्थानक मे प्रवेश किया। मुनिजन अपने स्वाध्याय मे संलग्न थे । यों तो सन्तो के दर्शनार्थ जन आते ही है, पर यह टोली निराली ही थी। इन लोगो के चेहरे पर ईर्ष्या एव घृणा टपक रही थी । सर्व प्रथम उन्होने स्थानक पर कब्जा किया, तत्पश्चात् उस वृद्धा ने आँखो से अगारे बरसाते हुए कहा : मेरा बेटा साधु बना है । मुझसे बिना पूछे तुम लोगो ने इसे फुसलाकार साधु बना दिया । यदि आप सब अपना भला चाहते हो तो इसे मुझे सौप दो । वुढिया की बात से आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था । गॉव मे कुतूहल प्रसारित हो उठा । एक व्यक्ति ने बुढिया से पूछा कि तुम्हारा लडका कब और कहाँ साधु बना ? वृद्धा ने तीखे स्वर मे प्रत्युत्तर देते हुए कहा कब और कहॉ बना–यह पूछने की अब आवश्यकता नही, उसे जल्दी ही छोड दो–नही तो लाठियाँ चलेगी और उसे जबरदस्ती उठाकर ले जाया जायगा । वृद्धा को आश्वासन देते हुए कहा गया कि इतने सन्तो मे तुम्हारा लडका कौन

है? वृद्धा ने तपाक से अपनी अँगुली का इशारा चरितनायकजी की ओर कर दिया। चरितनायकजी सोचने लगे कि यह वृद्धा मेरी नयी माता कैसे पैदा हो गयी? होगी कोई पूर्व भव की। इतने मे वृद्धा के साथ टोली उठ खड़ी हुई और लाठियाँ और रस्सियाँ सँभाल कर चरितनायकजी को ले जाने को तैयार हो गयी। एक सज्जन ने फटकार कर उन्हे नीचे बिठा दिया। तब वृद्धा ने रोते हुए चरितनायकजी की ओर सकेत करते हुए कहा, तू अपने मन से ही पट्टी उतार कर फेक दे और मेरे साथ चल। पुत्र-वियोग की व्यथा से वृद्धा का हृदय आहत था। उसके नयनो से अश्रुधारा बह निकली और देखते ही देखते वह मूर्च्छित हो गयी। जब वह होश मे आयी तो उसे कोमलता के साथ समझाया गया — यह साधु (चरितनायकजी) मारवाड़ी नही, मेवाडी है। नान्देशमा गाँव मे इनका जन्म हुआ। तुम्हारा पुत्र स० १९८३ मे साधु बना है, परन्तु ये सं० १९८१ से ही जालोर मे ही दीक्षित हो चुके थे। उसे दीक्षा की पत्रिका भी दिखला दी गयी। तब कही उसे विश्वास हुआ कि वास्तव मे यह मुनि मेरा बेटा नही है और वह अपने दल-बल के साथ हताश हो कर चली गयी।

संवत् १९९८ : समदड़ी – चातुर्मास

गुरुदेवश्री मेवाड से प्रस्थान कर जब पुन: मारवाड पहुँचे तो श्रीमती तीजाबाई आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुई और अपने पुत्र श्री धन्नालाल की दीक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध मे अनुनय करने लगी। श्री धन्नालाल विगत २ वर्षो से गुरुदेवश्री के पावन चरणाश्रय में रहकर ज्ञान–साधना मे तल्लीन थे।

दीक्षा के विषय मे खण्डप संघ की ओर से भी बार-बार प्रबल अनुरोध किया जा रहा था। गुरुदेवश्री ने द्रव्य क्षेत्रकाल भाव को लक्ष्य मे रखते हुए दीक्षा के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। संवत् १९९७ की फाल्गुन सुदी ३ को दीक्षा-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। दीक्षोपरान्त श्री धन्नालाल का नामकरण

'देवेन्द्र मुनिजी' के रूप मे हुआ। पूज्य देवेन्द्र मुनिजी आज जैन साहित्याकाश के प्रभावान नक्षत्र है। नयी चेतना के साथ जैन दर्शन को आधुनिक परिवेश मे प्रस्तुत करने का आपका स्तुत्य, सफल और समर्थ प्रयास चल रहा है। श्रीमती तीजावाई ने आपाढ शुक्ला ३ को महासती सोहनकुँवरजी के सान्निध्य मे दीक्षा ग्रहण की और तब से आपका शुभ नाम प्रभावतीजी है।

खण्डप मे स्थविर श्री शार्दूलसिंहजी म० एवं महासतीवृन्द भी उपस्थित थी। तत्पश्चात् विहार करके आपश्री मोकलसर पधारे। वहाँ पर नव दीक्षित श्री देवेन्द्र मुनिजी की बडी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के दूसरे दिन जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० अपनी शिष्य मण्डली सहित मोकलसर पधारे। मुनिद्वय का व्याख्यान सम्मिलित रूप से चलता रहा। वहाँ से चरितनायकजी सिवाना, समदडी होते हुए दुन्दाडा पधारे, जहाँ पर महास्थविर श्री दयालचन्दजी म० विराजमान थे। चातुर्मास भी 'सुखे समाधे' दुन्दाडा का स्वीकृत कर दिया गया और चरितनायकजी, श्री हीरामुनिजी, देवेन्द्र मुनिजी ठा-३ से जोधपुर पधारे। वहाँ ड्योडीदारो के स्थानक मे स्थविर श्री रावतमलजी म० ठा २ एवं प नारायणदासजी म ठा २ से विराजमान थे। अकस्मात् व्याख्यान के समय आप वहाँ पधारे तो जनता स्वागत मे खडी हो गयी और आपके साथ लघु देवेन्द्र मुनिजी को देखकर 'एवन्तामुनि' कह कर जय जय कार करने लगी। लगभग एक मास पर्यन्त आप जोधपुर विराजे। जैन व जैनेतर जनता व्याख्यान मे आती। ओसवाल पचायती नोहरे मे भी जाहिर व्याख्यान हुए। वहाँ से आप पुन दुन्दाडा पधारे। वहाँ पर शार्दूलसिंहजी म० भी ठा० ४ से पधारे। पण्डित रूपचन्दजी बीमार हो गए थे। चातुर्मास काल सन्निकट था। वहाँ पर ९ ठाणो का चातुर्मास होना ठीक नही समझा गया। अत समदडी सघ की विनती मानकर समदडी चातुर्मास किया। रुग्ण होने से शार्दूलसिंहजी म० ने दुन्दाडा मे ही चातुर्मास व्यतीत किया।

संवत् १९९९ : रायपुर – चातुर्मास

समदडी से विहार कर आपश्री साडेराव पधारे। साडेराव मे पजाव केसरी पूज्य काशीरामजी म० पधारे। उनसे मिलाप हुआ। 'स्थानक' शब्द को लेकर कुछ चर्चा चली तो पंजाब केसरीजी को उसका उत्पत्तिजनक अर्थ स्वीकार करना पडा। तत्पश्चात् आप सादडी पधारे। वहाँ पजाबी मुनि श्री भागचन्द्रजी म एव पं मुनि तिलोकचन्दजी म० का सम्मिलन हुआ। वडा स्नेहमय व्यवहार रहा। आपश्री के सदुपदेश से श्रावको मे जागृति आयी। एक धार्मिक पाठशाला भी स्थापित की गयी। वही शाला आज लोकाशाह जैन गुरुकुल के रूप मे प्रसिद्ध है। सादडी से विहार कर आप राणकपुर होते हुए सेरा प्रान्त मे पधारे। जब कभी भी आपका इस प्रान्त मे पदार्पण होता है, तब एक हलचल-सी मच जाती है। जव चरितनायकजी पदराडा पहुँचे तो महासती श्री सोहनकुँवरजी भी अपनी शिष्याओ सहित उदयपुर से सामने पधारी। पदराडा से गोगुन्दा होते हुए आपने हल्दी घाटी का मार्ग पकड़ा। हल्दी घाटी वही स्थल है जहाँ मेवाडी अल्पसख्यक शूरवीरो ने महाराणा प्रताप के नेतृत्व मे विशाल शत्रुसेनासे लोहा लिया था। घाटी की मिट्टी का रंग हल्दी जैसा पीला होने के कारण यह हल्दी घाटी के नाम से प्रसिद्ध है। घाटी मे न सघन वृक्षावली है और न अधिक चढाव। अभी घाटी के ऊपर एक साधारण-सा चबूतरा बना हुआ है, जिस पर घोड़े के साथ महाराणा प्रताप की मूर्ति है। करीब दो-दो मील की दूरी पर दोनो ओर ग्राम बसे हुए हैं। वहाँ पाँव रखते ही मानव के हृदय मे उत्साह का संचार होता है। चरितनायकजी हल्दी घाटी होकर खमनोर पहुँचे, जहाँ जैनो की अच्छी आबादी है। वहाँ से विहार कर आप नाथ-द्वारा पधारे।

नन्दलालजी राँका के सुपुत्र श्री नजरसिंहजी ने ससार से विरक्त हो कर गुरुदेवश्री के साथ सयम धारण करना चाहा, लेकिन पारिवारिक जनो की सहमति न होने पर आप स्वय ने ही व्याख्यान मे एक दिन साधुवेश धारण कर और 'करेमीभते' का पाठ पढकर

छोटी दीक्षा अंगीकार कर ली। उसके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी कोयलबाई की दीक्षा नाथद्वारा मे ही धूम-धाम से सम्पन्न हुई। नजरसिंहजी का दीक्षित नाम शान्तिमुनिजी रक्खा गया तथा कोयलबाई श्रीमतीजी (चन्द्रकान्ता) के नाम से प्रसिद्ध हुई। नाथद्वारा संघ ने आपश्री से चातुर्मास की प्रार्थना की। आपश्री ने कहा, यदि मेवाड मे रहे तो देखा जायगा, यदि बाहर चले गए तो अन्यत्र कही चातुर्मास होगा। वहाँ से विहार कर काकरोली, देवगढ होते हुए ब्यावर पधारे, जहाँ पर पूज्य खूबचन्दजी म० एवं प्रवर्तक हजारीमलजी म० विराजमान थे। पारस्परिक अच्छा स्नेह-मिलन रहा। कुछ दिन बिराजकर यहाँ से आपश्री नीमाज की ओर पधारे। खुशालपुरा पधारे, तो पीपाड, नीमाज, रायपुर आदि के संघ वर्षावास हेतु अनुरोध के साथ उपस्थित हुए। विगत दीर्घकाल से रायपुर सघ आपश्री से चातुर्मास हेतु अनुरोध कर रहा था। साधुमर्यादानुसार इस संबंध में स्वीकृति प्रदान की गयी और आपश्री का आगमन रायपुर हुआ। वर्षावास मे शान्तिमुनिजी ने मास खमण तप की आराधना की। रायपुर के ठाकुर साहब श्री गोविन्दसिहजी ने महल में व्याख्यान करवाया। पारणा के प्रसंग पर मुनिश्री को राजमहल मे ले गए। अनेक सज्जनो ने मास-मदिरा सेवन का एवं शिकार खेलने का त्याग किया।

संवत् २००० : पीपाड़ – चातुर्मास

रायपुर का चातुर्मास सानन्द व्यतीत कर चरितनायकजी रायपुर से विहार कर के झूठा पीपलिया होकर बिलाडा की ओर पधारे। मरुधरा मे पानी कभी-कभी अमृत से भी अधिक मूल्यवान होता है। विलाडा के मार्ग पर वाण गगा आती है। वहाँ सदैव पानी रहता है। अत दूर-दूर से प्यासे हिरण आदि वनचर पशु, विविध प्रकार के विहंग अपनी प्यास वुझाने को वहाँ पहुँचते हैं। यहाँ पर आपश्री के सदुपदेश से प्रभावित हो कर शिकारियो ने शिकार नही खेलने का नियम लिया। आपश्री विहार करते हुए नागोर पधारे। श्री सघ मे अपार उत्साह दिखाई दिया। पर्यूषण जैसी धर्माराधना होने लगी। आपश्री के वाजार मे जाहिर व्याख्यान

होते थे। मर्यादानुसार वहाँ बिराजने के बाद कुचेरा की ओर प्रस्थान हुआ। कुचेरा मे कोटा सम्प्रदाय के श्री गौडीदासजी एवं मोहनमुनिजी का स्नेह-मिलन हुआ। वहाँ से आप भोपालगढ होकर जोधपुर पधारे। तत्पश्चात् वि० स० २००० का चातुर्मास पीपाड़ सिटी मे हुआ। चातुर्मास काल मे अच्छा धर्म-ध्यान हुआ। कोठारी परिवार ने काफी अच्छी सेवा का लाभ लिया। पीपाड का कोठारी परिवार हरसोल से आकर बसा हुआ है। यह पूज्य अमरसिहजी म० की परम्परा का अनुयायी है, जिसके प्रतिनिधि चरितनायकजी वर्तमान मे सबसे बडे है।

संवत् २००१ : जोधपुर–चातुर्मास

पीपाड के वर्षावास-समापन पर आपश्री बिलाडा पधारे। वहाँ से पुन· नागोर होते हुए आपश्री का आगमन कुचेरा हुआ। चातुर्मासहेतु-जोधपुर सघ के अति दीर्घकालीन अनुरोध के लिए स्वीकृति का यह अनुकूल अवसर अनुभव किया गया। उल्लेखनीय है कि जोधपुर स्थानकवासियो का केन्द्र माना जाता है, जहाँ २–३ हजार स्थानकवासी परिवार है। प. प्रवरश्री सहस्रमलजी म० अपने शिष्य समुदाय सहित जोधपुर पधारे थे, पर यकायक अस्वस्थ हो जाने से आपको भी सकारण जोधपुर चातुर्मास करना पडा। आप प्रकृति से बहुत सरल व मिलनसार थे। पूज्य गुरुदेवश्री के व आपश्री के सम्मिलित प्रवचन आहोर ठाकुर साहब की हवेली मे होते, जिसमे हजारो की सख्या मे जैन-अजैन जनता उपस्थित होती थी।

संवत् २००२ : नान्देशमा – चातुर्मास

जोधपुर–चातुर्मास सम्पन्न होने पर बाडमेर क्षेत्र को पावन करते हुए आपश्री पुन· मेवाड की ओर उन्मुख हुए। उदयपुर पधारे। भीषण ग्रीष्म का समय था, चरितनायकजी भिक्षा के लिए पधारे, पर चक्कर आ जाने से सीढियो से नीचे गिर पडे। सिर मे गहरी चोट आई। खून की धारा बह गई। जब दीर्घकाल के पश्चात् आपको होश आया तो लोगो ने कहा डोली से हम आपको

स्थान पर ले जाये, पर आप पैदल चलकर अपने स्थान पर पधारे। सूर्यास्त हो जाने से आपने न तो दवा ली और न टाके ही लगवाये, किन्तु मुस्कराते हुए कष्ट को सहन किया। यह है चरितनायकजी का दृढ मनोवल। पूज्य गुरुदेवश्री की जन्मभूमि के ग्राम नान्देशमा मे इस वर्ष का चातुर्मास आयोजित हुआ। विशेष उल्लेखनीय है कि वर्षावास काल मे आपके सान्निध्य मे श्रावको का प्रान्तीय सम्मेलन हुआ। चातुर्मास समाप्ति के विहार पर प्रान्त के २ हजार सज्जन विदाई देने एकत्रित हुए।

संवत् २००३ : धार–चातुर्मास

नान्देशमा का वर्षावास पूर्ण कर हमारे चरितनायकजी अपने गुरुदेव के साथ वाटी, भूताला आदि छोटे छोटे क्षेत्रो को पावन करते हुए उदयपुर पधारे। उदयपुर के दोनो संघ जवाहर मडल एवं महावीर मडल वाले गुरुदेव की सेवा मे श्रद्धा सहित आते रहे। महासती श्री सोहनकुँवरजी वही विराजित थी। कुछ दिन रुककर भवाना की ओर प्रस्थान किया और देलवाडा, डबोक होते हुए चरितनायकजी अपने गुरुदेव की जन्मभूमि बबोरा गाँव पधारे। महास्थविरजी म० ने ५० वर्षो के पश्चात् अपनी जन्मस्थली को पावन किया था। इसलिए उत्साह होना स्वाभाविक ही था। आपश्री की सिह गर्जना सुनकर श्रावक संघ की भावना चौगुनी वढ गयी। वाजार के मध्य मे प्रतिदिन व्याख्यान होते। दया, पौषध आदि धार्मिक क्रियाएँ भी प्रर्याप्त हुई। संघ ने चौमासा की प्रार्थना करते हुए कहा यदि आपश्री चौमासा करे तो हम लोग ग्यारह हजार दया पौषध करेगे। बम्बोरा से विहार कर आपश्रीने भिण्डर, कानोड, डूंगला, बडी सादडी, छोटी सादडी, आदि क्षेत्रो मे धर्म-जागृति की। सर्वत्र सघो मे जोश रहा। तदनन्तर आपका प्रवेश मालव प्रदेश मे हुआ जिसके लिए प्रसिद्ध है—

'डग डग रोटी पग पग नीर।
मालव धरती गहन गंभीर॥'

मालवा का जन शरीर से सुन्दर, मन से उदार, बात करने मे चतुर, पर कोरा वाक्पटु ही नही होता, उसमे ज्ञान एव विवेक के साथ श्रद्धा और भक्ति भी होती है। आपश्री का होली चातुर्मास मन्दसौर मे व्यतीत हुआ। यहाँ स्थानकवासियो के करिब ३०० परिवार है। इसे प्राचीन युग मे दशार्णपुर नगरी भी कहते थे, क्यो कि यहाँ झमकुपुरा, खलचीपुरा आदि दस पुरा है। आपश्री मन्दसौर से जावरा पधारे। यहाँ के भाइयो ने व्याख्यान-वाणी का पर्याप्त लाभ लिया। जावरा से रतलाम, बदनावर होते हुए आप श्री धार पधारे। उस समय वहाँ युवक हृदय सम्राट् धनचन्द्रजी एव मूल मुनिजी म० विराजमान थे। साथ-साथ व्याख्यान हुए। सघ का उत्साह सराहनीय था। धारसे नालछा होते हुए इन्दौर मे धर्मदासजी म० के स्थविर ताराचन्दजी म०, पण्डित रत्न मुनि श्री किसनलालजी म०, प्रसिद्ध वक्ता सौभाग्यमलजी म० आदि सन्त विराजित थे। सौभाग्यमलजी म० अपनी शिष्य मण्डली व विशाल जनसमूह सहित अगवानी को पधारे। इन्दौर बम्बई का बच्चा कहलाता है। यहाँ सट्टा बाजार की बुराइयो पर सारगर्भित एव प्रभावयुक्त प्रवचन किए। परिणामत अनेक सज्जनो ने सट्टे का त्याग कर दिया। इसी अवसर पर सौभाग्यमलजी म० के पास एक वैरागी ने दीक्षा अंगीकार की। 'हाथी के हौदे' दीक्षा उत्सव हुआ। तदन्तर धार संघ की प्रार्थना स्वीकार कर चातुर्मासार्थ धार पधारे। सुप्रसिद्ध राजा भोज की राजधानी होने का गौरव इस नगरी को प्राप्त है। धार की चित्रकला सुप्रसिद्ध है। वहाँ मिट्टी की ऐसी-ऐसी मूर्तियाँ बनती है जिसकी कीमते हजारो तक पहुँचती है। पर्यूपण के दिनो मे धार के चौदह तालाबो पर प्रहरी नियुक्त कर दिए जाते है। मछली पकडने पर कठोर प्रतिबन्ध रहता है। धार मे वैरागी शंकरलालजी की दीक्षा हुई, जो बाघपुरा-निवासी है और इनके पिता का नाम लालचन्दजी पोरवाल तथा माता का नाम तीजबाई है। आपश्री की दीक्षा विजया दशमी के दिन हुई और आपका नाम गणेशमुनिजी रखा गया। श्री गणेशमुनिजी लेखक, कवि, प्रवक्ता, गायक, कलाकार व

कुशल साधक है। अब तक दसो महत्त्वपूर्ण पुस्तको का लेखन व सम्पादन कर चुके है। आप देवन्द्र मुनिजी के लघु गुरुभ्राता है।

संवत् २००४ : नासिक-चातुर्मास

धार से विहार कर आपश्री नालछा, माडव होते हुए सिरपुर पधारे और धूलिया पहुँचे, जहाँ पर लाभचन्दजी म० एव चौथमलजी म० का मिलाप हुआ एव विदुषी सती सुमतिकुँवरजी ने भी दर्शन किए। महाराष्ट्र की भूमि मे पधार कर महाराष्ट्र के क्षेत्रो मे विचरण कर रहे थे, तभी नासिक संघ का पुन॰ तीव्र अनुरोध हुआ और इसे स्वीकृति प्रदान करते हुए आगामी वर्षावास आपश्री ने नासिक मे किया। नासिक नगर के समीप ही भारत का प्रसिद्ध तीर्थस्थल 'पचवटी' है, जहाँ पर कहते है कि रावण ने सीता का अपहरण किया था, तब राम व्याकुल होकर पशु-पक्षियो से सीता के समाचार पूछते थे। आज भी वहाँ वट के पाँच वृक्ष खड़े है। देवेन्द्र मुनिजी की अस्वस्थता के कारण नासिक मे नौ मास पर्यन्त रुकना पडा।

संवत् २००५ : घाटकोपर-चातुर्मास

इस वर्ष भी आपश्री महाराष्ट्र प्रदेश मे ही विचरण करते रहे। नासिक का चातुर्मास समाप्त कर आपश्री बम्बई पधारे। बम्वई स्थानकवासी समाज का एक सुदृढ केन्द्र है जहाँ वर्तमान मे २० स्थानक है। उल्लेखनीय है कि इनमे से प्रत्येक मे प्रतिवर्ष चातुर्मास होता रहता है। बम्वई के 'डालर एरिया' के रूप मे प्रसिद्ध घाटकोपर का सघ इस वर्ष इस रूप मे सौभाग्यशाली रहा कि गुरुदेवश्री के चातुर्मास की स्वीकृति उसे प्राप्त हुई।

संवत् २००६ : चूड़ा—चातुर्मास

घाटकोपर का भव्य चातुर्मास कर चरितनायकजी अपने गुरुदेव के साथ पनवेल पधारे जहाँ पर कुछ समय ठहर कर पुन हीरामुनिजी एवं देवेन्द्रमुनिजी को संस्कृत की वाराणसी परीक्षा दिलाने हेतु बम्वई पधारे। विभिन्न उपनगरो को पावन करते हुए

आपश्री कांदावाड़ी पधारे । वहाँ उपाध्याय पण्डित श्री प्यारचन्दजी म० तथा श्री पूनमचन्दजी म० आदि सन्तो का मिलाप हुआ। परीक्षा पश्चात घाटकोपर पधारने पर आत्मार्थी श्री मोहनऋषिजी म० आदि ठा० १७ का स्नेह-सम्मिलन हुआ। स्थानकवासी जैन समाज के संगठन के सम्बन्धमें हमारे चरितनायकजीने काफी अच्छे सुझाव दिये। संगठन पर गम्भीर विचार-विनिमय हुआ और आगामी सम्मेलन के लिए योजना पर विचार किया गया और पञ्चसूत्री योजना प्रस्तुत की। वम्बई के पश्चात् हमारे चरितनायकजी ने देवेन्द्रमुनिजी को साथ लेकर ठा० २ नासिक संघ के आग्रह से नासिक की ओर विहार किया। नासिक मे ठहर कर आपश्री गजपन्था पधारे। गजपन्था दिगम्बर जैन समाज का महान तीर्थ है। यही पर आपश्री का एवं दिगम्बराचार्य शान्तिसागरजी का स्नेह-मिलन हुआ। वहाँ से विहार कर आपश्री वणो डिढोरी होते हुए वासदा पधारे। वासदा मे स्थानकवासी एव मन्दिर मार्गी समाज के ३५ परिवार है। आपश्री वहाँ दो दिन विराजे। व्याख्यान के समय बाजार बन्द रहे। जैन व जैनेतर प्रचुर रूप मे लाभान्वित हुए। वहाँ से विहार कर ३ कोस दूर जहाँ गर्मजल के कुण्ड है, वहाँ पधारे। इस स्थान पर वासदा निवासी आ पहुँचे। आपश्री ने दिन भर विश्राम कर सायकाल गुजरात की ओर विहार किया। नवसारी मे आपश्री ने महास्थविरजी म० के दर्शन किये। यहाँ काठियावाड का शिष्टमंडल आया जिसने दया-धर्म विरोधी प्रचार को रोकने के लिए आग्रह किया। शतावधानी मुनिश्री पूनमचन्दजी म० डूगर-सिगजी म० ठा० १० से सूरत, अकलेश्वर, भडौच होते हुए आपश्री खंभात पधारे जहाँ खभात सम्प्रदाय के श्री खोडाजी एव हर्षद मुनिजी से स्नेह-मिलन हुआ। तत्पश्चात् लीवडी होते हुए आप चातुर्मासार्थ चूडा पधारे।

संवत् २००७: नान्देशमा—चातुर्मास

चूडा से विहार कर आप लीबडी पधारे और करीब दस दिन वहाँ विराज कर वढवाण सिटी पधार गए जहाँ पर श्री

पूनमचन्दजी म० व नवीन मुनिजी म० का मिलाप हुआ; सार्वजनिक प्रवचन हुए। वहाँ से आप जोरावर नगर व सुरेन्द्रनगर पधारे। सुरेन्द्रनगर मे सिद्धान्तशाला का निरीक्षण किया गया। मोरवी, राजकोट आदि संघो की प्रार्थनाएँ आने लगी। आपश्री काठियावाड से गुजरात की ओर पधारे और लखतर होते हुए वीरमगॉव पधारे। यहॉ पर २५० स्थानकवासी परिवार है। यहॉ दरियापुरी सम्प्रदाय के पडित मुनि श्री हर्षचन्दजी म० से मिलाप हुआ। तत्पश्चात् आपश्री साणंद पधारे और साणंद से अहमदाबाद पधारे। गुजरात की राजधानी अहमदाबाद मे विराज कर हिम्मतनगर होते हुए ईडर पधारे। ईडर मे विदुषी महासती शीलकुँवरजी ने अपनी शिष्य मण्डली के साथ अगवानी की। यहॉ से विहार कर आपश्री घोडादर पधारे। यहाँ से लेकर उदयपुर तक सभी गॉव अरावली की गोद मे बसे हुए है। रास्ता वडा ही असुविधाजनक है। आपश्री लम्बा विहार कर बाघपुरा पधारे। उस समय बाघपुरा मे सोहनकुँवरजी, शंभुकुँवरजी ठा० १९ से विराजमान थी। जब आप वाघपुरा पधारे तो सारे झालावाड़ वाकल प्रदेश के दर्शनार्थी उमड पड़े। जागीरदारो ने भी व्याख्यान का लाभ उठाया। आपश्री उदयपुर होते हुए सेराप्रान्त मे पधारे। पदराड़ा मे आचार्य आनन्दऋपिजी म० से, जो उस समय पॉच सम्प्रदायो के प्रधानाचार्य थे, मिलाप हुआ। श्रमण सघ के सम्बन्ध मे गम्भीर विचार-विमर्श हुआ। तदनन्तर चातुर्मास हेतु नान्देशमा पधारे।

संवत् २००८: सादड़ी-चातुर्मास

गुरुदेव श्री नान्देशमा से विहार कर मेवाड़ के तृपित श्रद्धालुओ को जिनवाणी की अनुपम सुधा से तृप्त करते हुए राणकपुर के मार्ग से सादडी की ओर अग्रसर हुए तथा आपश्री के गुरुदेव ताराचन्दजी म० मेवाड मे साध्वियो को दर्शन देने हेतु मेवाड मे रुक गए। मेवाड़ मे साध्वीवर्ग को दर्शन देकर महास्थविरजी म० सादडी होकर नाड़ोल पधारे। रात्रि के आठ बज चुके थे। एकाएक महास्थविरजी म० के मुँह पर लकवे का आक्रमण हो

गया । प्रातःकाल जैसे-तैसे विहार प्रारम्भ किया । इस समय चरितनायकजी बगडी (सज्जनपुर) विराज रहे थे । समाचार मिलते ही चरितनायकजी एवं देवेन्द्र मुनिजी बगडी से उग्र विहार कर महास्थविरजी म० की सेवा में जवाली पहुँचे । पाली सघ को समाचार पहुँचते ही वह डॉक्टरो को लेकर उपस्थित हुआ । जवाली से विहार कर आप पाली पधारे जहाँ धूम-धाम से महावीर जयन्ती मनाई गयी । रोग के पूर्णत: शान्त न होने से जोधपुर पधारे । सकुशल जोधपुर पधारने पर भट्टारकाचार्य वैद्यराज यति श्री उदयचन्दजी चाणोद गुरासाहबने चिकित्सा की । चौथे दिन रोग-मुक्ति हो गयी । गुरासाहब की हवेली मे पर्याप्त समय तक विराजने के पश्चात् जेष्ठ मास मे आपने पाली की ओर विहार किया । जोधपुर, सिवाना, समदडी, पाली, सादडी आदि सघो की ओर से वर्षावास हेतु प्रार्थना की जाने लगी । इस वर्ष सादड़ी-सघ का भावभीना अनुरोध चातुर्मास हेतु स्वीकार कर लिया गया । यह वह काल था जब सघ-एकता की तीव्र आवश्यकता पुनः गंभीरता के साथ अनुभव की जाने लगी थी और इस दिशा मे प्रबल प्रयत्न होने लगे थे । गुरुदेवश्री की प्रेरणा से प्रोत्साहित होकर सादड़ी-सघ वृहत् साधु सम्मेलन की तैयारियो मे तत्परतापूर्वक जुट गया । सादडी का यशस्वी वर्षावास पूर्ण कर हमारे चरित-नायकजी देवेन्द्र मुनिजी को 'साहित्यरत्न' परीक्षा दिलाने हेतु जोधपुर पधारे तथा जोधपुर से आहोर पधारे और आहोर मे महास्थविरजी म० से मिलन हुआ । आहोर से आप जालोर पधारे । इस समय के विहार मे आपश्री ने स्थान-स्थान पर सघ एकता को अपना मुख्य विषय बना लिया था । जहाँ-जहाँ भी आप पधारे सगठन का शख फूँककर एकता का घोष किया । आपश्री के सदुपदेशो का अच्छा प्रभाव हुआ और साधु-सम्मेलन की भूमिका सुदृढ हुई । जालोर से विहार कर मोकलसर, सिवाना, समदडी, आईपुरा होते हुए आप साण्डेराव पधारे । साण्डेराव से फालना होकर सादडी सम्मेलन मे पधारे ।

बृहत्साधु सम्मेलन सादड़ी

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन बृहत्साधु सम्मेलन अक्षय तृतीया के शुभ दिन प्रारम्भ हुआ। श्रमणगण सगठन हेतु एकत्रित हुए। जनता अपार सख्या मे सादडी में उमड पडी। लगभग ५० हजार नर-नारी एकता के इस पुनीत यज्ञ का समर्थन करने हेतु सादडी के प्रागण मे उपस्थित हो चुके थे। नव्य-भव्य भवन लोकाशाह गुरुकुल मे सभाएँ होती थी। आगन्तुको के लिए लोकाशाह नगर का निर्माण किया गया था। स्थानकवासी सम्प्रदाय की प्राय वरिष्ठ विभूतियाँ वहाँ उपस्थित थी। उस विशाल मुनिमण्डल मे गुरुदेवश्री के गुरुदेव महास्थविर ताराचन्दजी म० सर्वाधिक प्रतिष्ठा सम्पन्न सन्त थे। मुनिराजो की सभा मे शान्ति से कार्य प्रारम्भ हुआ। वीच-वीच में वाद-विवाद के साथ उत्तेजना का वातावरण भी बनता, पर शान्ति और शिष्टता के साथ। अन्तत 'वर्धमान श्रमण सघ' की स्थापना हुई। विभिन्न सम्प्रदायो का सरिताओ की तरह श्रमण संघ के महासागर मे विलीनीकरण हो गया। पदवीधारी मुनिराजो ने अपनी-अपनी पदवियो का सहर्ष त्याग कर दिया। तत्पश्चात् वयोवृद्ध जैनागमवारिधि श्री आत्मारामजी म० को आचार्य पद, आगमज्ञ गणेशीलालजी म० को उपाचार्य पद व पण्डितश्री आनन्द ऋषिजी म० को प्रधान मत्री पद पर निर्वाचित किया गया। इसके अतिरिक्त १६ विद्वान मुनिराजो का मत्रि-मण्डल बना, जिसमे हमारे चरितनायकजी का नाम भी मत्री पद पर सम्मिलित हुआ। आपश्रीने सादडी बृहत सम्मेलन के श्रमण सघ के साहित्य शिक्षण मत्री पद को गौरवान्वित किया। अपनी विलक्षण प्रतिभा, सूझ-बूझ, सगठन-शक्ति और विचार-गाभीर्य से गुरुदेवश्री ने सम्मेलन की सफलता हेतु जो नेतृत्व प्रदान किया, वह ऐतिहासिक महत्व का अविस्मरणीय प्रसग रहेगा।

संवत् २००९ : सिवाना—चातुर्मास

सम्मेलन की समाप्ति पर आपश्री ने सिवाना चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की। तत्पश्चात् आपश्री फालना, साण्डेराव होकर

वाड़मेर जिले को जिनवाणी रसका पान कराते हुए सिवाना चातुर्मासार्थ पधारे ।

चातुर्मास मे अत्यधिक धर्मध्यान हुआ । विशेष उल्लेखनीय बात यह रही कि वर्षावास के काल मे मदार (उदयपुर) निवासी ओसवाल जातीय भेरूमलजी ने ६२ वर्ष की अवस्था मे कार्तिक शुक्ला नवमी के दिन दीक्षा ग्रहण की। भेरूमुनिजी बडे ही सेवाभावी, सरल प्रकृति के तपस्वी सन्त थे। चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ ।

संवत् २०१० : जयपुर–चातुर्मास

इन दिनो सोजत मे मन्त्रि-मंडल की अत्यावश्यक बैठक आयोजित होनेवाली थी । पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति इस बैठक मे अनिवार्य अनुभव की जा रही थी । अत. आपश्री ने सिवाना-चातुर्मास की समाप्ति पर सोजत की ओर विहार किया । सोजत मे पण्डित श्री समरथमलजी म०, व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० तथा कविवर श्री अमरचन्दजी म० विशेष रूप से आमन्त्रित किए गए थे। उपाचार्यश्री गणेशीलालजी म० की अध्यक्षता मे मन्त्री सम्मेलन का कार्य हुआ । सचिता-चित-संबन्धी निर्णय सोजत मे हुआ । प्रान्तवार मन्त्रियो का कार्य–विभाजन किया गया । तदनुसार हमारे चरितनायकजी मेवाड और पंचमहाल प्रान्त के मन्त्री नियुक्त हुए । सोजत से विहार कर गुरुदेवश्री बाल ब्रह्मचारिणी विदुषी महासती श्री शीलकुँवरजी के पास विगत वर्षो मे अभ्यास करती हुई वैरागिन बहने श्री चन्दनबालाजी एवं श्री मगनबाई को दीक्षा देने के लिए उदयपुर पधारे । दीक्षा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ । उदयपुर से आपश्री वाटी पधारे, जहाँ पुन महासती श्री शीलकुँवरजी की सेवा मे खम्माकुँवरजी को दीक्षा दी गयी । इस दीक्षा महोत्सव मे पण्डित श्री अम्बालालजी म० ठा०२ से पधारे । तत्पश्चात् चरितनायकजी ब्यावर पधारे। इस समय ब्यावर मे महास्थविरजी म० एव स्वामी हजारीमलजी आदि सन्त विराजमान थे। जयपुर संघ के मन्त्री गुलाबचन्दजी बोथरा आदि चातुर्मासार्थ शिष्टमंडल लेकर आए। साधु मर्यादानुसार स्वीकृति दे दी गयी । तत्पश्चात् आपश्री के नसीराबाद पधारने पर

मत्री मुनिश्री पन्नालालजी म० से मिलाप हुआ। नसीराबाद से आपश्री अजमेर पधारे। वहा सहमंत्री हस्तीमलजी म० एवं कविश्री अमरचन्दजी म०, प. मिरेमलजी म० आदि सन्त विराजित थे, सामूहिक व्याख्यान हुए। यहाँ से विहार कर किशनगढ होते हुए आप वर्षावास हेतु जयपुर पधारे। उधर जयपुर संघ विगत काफी वर्षों से गुरुदेवश्री के चातुर्मास हेतु लालायित था। यह चातुर्मास अत्यन्त उत्साह का प्रसंग बना रहा। चातुर्मास की परिसमाप्ति पर एक दुखद घटना भी उल्लेखनीय रही। वह यह थी कि नव दीक्षित श्री भेरुमुनिजी महाराज का मार्गशीर्ष शुक्ला मे अचानक स्वर्गवास हो गया।

संवत् २०११ : दिल्ली–चातुर्मास

चातुर्मास के पश्चात् जयपुर वर्षावास के समापन पर गुरुदेव श्री लम्बा विहार करके अलवर पधारे। अलवर के भाइयो ने आपका मुक्त हृदय से भावभरा स्वागत किया। व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित अलवर पधारे। स्नेह-मिलन अच्छा रहा। श्रीकैलाशकुँवरजी व जैन सिद्धान्ताचार्य कुसुमवतीजी भी वहाँ विराजमान थी। अलवर से विहार कर चरितनायकजी फिरोजपुर, नगीना होकर सोना पधारे। वहाँ गाँव के मध्य मे एक कुण्ड है जिसमे सदैव गर्म पानी रहता है। आगे गुडगाँव और मरौली होते हुए आपश्री दिल्ली पधारे। दिल्ली स्थानकवासी जैनियो का एक बडा केन्द्र है। गुरुदेव दरियागंज से सब्जी मण्डी पधारे। प्रवचन होने लगे। उन्ही दिनो कविरत्न स्नेहमूर्ति श्री अमरचन्दजी म० भी पधारे। सघ के अत्याग्रह पर चाँदनी चौक की वर्षावास हेतु स्वीकृति दी गयी। इसी अवधि मे चरितनायकजी का प्रोस्टेट ग्रन्थि का सफलतापूर्वक ऑपरेशन हुआ। चातुर्मास पूर्ण कर गुरुदेव नयी दिल्ली पधारे। वह ४ दिसम्बर का दिन था जब आपश्री दिल्ली मे तत्कालीन प्रधानमत्री प० जवाहरलाल नेहरू के निवासस्थान पर पहुँचे थे। पंडितजी ने गुरुदेवश्री की ससम्मान अगवानी की। इस अवसर पर

आपश्री ने पंडितजी के अवलोकनार्थ पूर्वाचार्य धर्मवीर जीतमलजी म० की कलाकृतियाँ प्रस्तुत की, जिन्हे देखकर वे प्रसन्न एव प्रभावित हुए । भिन्न क्षेत्रो के नेताद्वय मे अनेक महत्वपूर्ण ज्वलन्त प्रश्नों पर ५५ मिनट तक विचार-विनिमय हुआ । तदनन्तर पंडितजी, श्रीमती इन्दिरा गाधी एव श्री संजीव गाधी ने गुरुदेवश्री को करबद्ध नमस्कार मुद्रा सहित श्रद्धापूर्वक विदा किया ।

संवत् २०१२ : जयपुर-चातुर्मास

दिल्ली के विभिन्न उपनगरो मे विराजकर आपश्री ने दिल्ली से प्रस्थान किया और फिरोजपुर पहुँचे । वहाँ पर जैनियो का एक भी परिवार न होने के कारण कुछ दिक्कत महसूस होने लगी, लेकिन संयोग से भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ रामकृष्णजी डालमिया को धर्मपत्नी श्रीमती दिनेशनन्दिनी ने आकर गुरुदेवश्री के दर्शन किए । उन्होने गुरुदर्शन के उपलक्ष मे मिष्टान्न की प्रभावना की, जिससे सारे शहर का वातावरण ही बदल गया । तत्पश्चात् पलवल, वनचारी, मोडल, कोसी होकर चरितनायकजी वृन्दावन, मथुरा होकर आगरा पधारे । उस समय आगरा मे मत्री मुनिश्री पृथ्वीचन्दजी म०, गणी श्री श्यामलालजी म०, तपस्वी श्री श्रीचन्दजी तथा श्री कीर्तिमुनिजी आदि सन्त विराजमान थे। सिकन्दरा तक लोहामडी आगरा के श्रावकगण सम्मुख आए। समारोह के साथ आपश्री का आगरा मे प्रवेश हुआ। व्याख्यानो का ठाठ लग गया। वहाँ से मानपाडा पधारे जहाँ साहित्यरत्न मुनिश्री सुरेश मुनिजी से मिलाप हुआ । यह समागम बडा ही आनन्ददायक रहा । भरतपुर होते हुए चरितनायकजी अपने गुरुदेव के साथ जयपुर पधारे । जयपुर सघ महास्थविरजी म० के स्थिरवास के लिए प्रार्थना करने लगा और महास्थविरजी म० ने चातुर्मास तक की स्वीकृति दे दी । जयपुर वर्षावास अत्यन्त आनन्ददायक क्षणो मे व्यतीत हुआ । सौभाग्य से उस वर्ष कविवर श्री अमरचन्दजी म० और स्वामी श्री हजारीमलजी म०, स्वामी श्री फतेहचन्दजी म०, पण्डित मधुकरमुनिजी एव पण्डित कन्हैयालालजी कमल

आदि का चौमासा भी जयपुर मे हुआ। समस्त मुनि-मण्डल ने एक ही स्थान पर लाल भवन मे वर्षावास सम्पूर्ण किया।

संवत् २०१३ : जयपुर–चातुर्मास

यथा समय जयपुर से विहार किया गया (भीनासर सम्मेलन को लक्ष्य मे रखकर), किन्तु श्री देवेन्द्र मुनिजी की अस्वस्थता के कारण पुन जयपुर आगमन हुआ। इस समय 'भीनासर-सम्मेलन' की यथोचित तैयारियाँ चल रही थी, किन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवधान-वश इस वर्ष का वर्षावास जयपुर मे ही व्यवस्थित हुआ। साथ ही विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी, पुष्पवतीजी, प्रभावतीजी आदि सतीवृन्द भी चातुर्मास मे वही रही। इस अवधि मे एक अघटित घटना हुई। आपश्री के श्रद्धेय गुरुदेव परम महास्थविर श्री ताराचन्दजी म० एकाएक गभीर रूप से रुग्ण हो गये। श्रमण सघ के प्रधान मत्री व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज भी इस समय वही विद्यमान थे। महास्थविरजी पर ६ वर्ष पुराने रोग पक्षाघात ने पुन आक्रमण कर दिया। इसका आभास उस समय हुआ जब गोचरी के समय जल-प्राप्ति हेतु आपने हाथ बढाया, किन्तु वह रिक्त होकर निढाल हो गया।

"अब मेरी आयुष्य का अन्त समीप है, प्रधान मत्रीजी को बुलवाओ और संथारा कराओ।" ये वे शब्द थे जिनका उच्चारण महास्थविरजी म० कठिनाई के साथ कर सके। उन्होने अपना अन्तिम उपदेशात्मक सदेश प्रदान किया–

"सभी पारस्परिक सहयोग की भावना के साथ व्यवहार करना और मेरे प्रयत्नो को यथासभव निर्मल बनाए रखना। त्याग-विराग से अपने जीवन को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर बनाते रहो।"

विदुषी महासती सोहनकुँवरजी, प्रभावतीजी आदि भी इस समय उपस्थित हो गई और महास्थविरजी म० ने सभी से 'खमत खामणा' की। श्री मदनलालजी म० ने संथारा करा दिया। शुद्ध

भाव से प्रतिक्रमण-पाठ भी किया जिसे सुनकर गद्गद भाव से आपने टिप्पणी की 'प्रतिक्रमण चोखो सुणायो।' महास्थविरजी की जनमानस आह्लादकारिणी वाणी धारा का यही अन्तिम छोर था। जिह्वा लडखडाने लगी। श्वास असामान्य हो गया। चेतना क्षीण होने लगी। कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी का प्रभात, सूर्योदय पूर्व ५ बजे का ब्रह्म मुहूर्त, महास्थविरजी महाराज के नयनो से एक आलोक विकीर्ण हुआ . . और फिर सव कुछ शान्त . सब कुछ समाप्त।

गुरु–वियोग जन्य हा-हाकार से समग्र वातावरण सकुल हो गया। उल्लेखनीय है कि पूज्य महास्थविरजी म० ने अपने अन्तेवासी शिष्य श्री पुष्कर मुनिजी० म०. (पूज्य गुरुदेवश्री) के समक्ष लगभग ६ माह पूर्व ही इस भविष्य का मार्मिक सकेत कर दिया था। आज पूज्य महास्थविर ताराचन्दजी म० हमारे मध्य नही, किन्तु धर्म की समृद्धि, मुनिजनो का आत्मोत्कर्ष आदि सव आपके ही आशीर्वादो से सभव हो रहा है।

संवत् २०१४ : उदयपुर–चातुर्मास

जयपुर से विहार कर हमारे चरितनायकजी देवेन्द्र मुनिजी एवं गणेशमुनिजी को 'साहित्यरत्न' परीक्षा दिलवाने हेतु नगर के वाहर विराजे। उस समय पजाब केसरी प्रेमचन्दजी म० (जो महास्थविरजी म० के गुरुभाई के शिष्य थे) तथा कवि रत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म० भी जयपुर पधारे तथा आपश्री को गुरुवियोगजनित दु ख को दूर करने हेतु सान्त्वना दी। अत्यधिक आग्रह होने पर चरितनायकजी पुन जयपुर लालभवन पधारे। परीक्षा के बाद जयपुर से विहार किया और हरमाडा पधारे। हरमाडा मे स्वामीजीश्री फतेहचन्दजी म० एव पं मुनि कन्हैयालालजी 'कमल' से मिलाप हुआ और मदनगज (किशनगढ) होते हुए अजमेर पधारे। इधर श्रमण संघ के उपाचार्य गणेशीलालजी म० एव उपाध्याय हस्तीमलजी म० पुष्कर पधार रहे थे। अत आप दोनो महापुरुषोके स्वागतार्थ पुष्कर पधारे और पुष्कर से तीनो महापुरुषो का भव्य स्वागत

समारोह के साथ अजमेर नगर में प्रवेश हुआ। संघ की समस्याएँ पाली प्रकरण को लेकर बढ रही थी। उसे सुलझाने के लिए तीन महापुरुषो की एक समिति बनी, जिसमे उपाचार्य श्री उपाध्यायजी एव हमारे चरितनायकजी को सम्मिलित किया गया था। उसी समय 'कान्फ्रेस' के अध्यक्ष विनयचन्दभाई के नेतृत्व मे कॉन्फ्रेस का शिष्ट मण्डल उपस्थित हुआ। विचार-विमर्श के पश्चात् समितिने निर्णय दिया, जिसके अनुसार सन्त-सतियों को निर्देश दिया गया।

चरितनायकजी ठा० ४ से अजमेर से विहार कर विजयनगर पधारे, जहाँ मन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म० से मिलन हुआ। विजय-नगर से महासती अभयकुँवरजी को दर्शन देने हेतु भीम पधारे और यही पर मरुधर केसरीजी म० से मिलाप हुआ। मरुधर केसरीजी एवं चरितनायकजी का देवगढ तक साथ-साथ विहार हुआ। वहाँ से चरित-नायकजी नाथद्वारा पधारे, जहाँ पर उपाचार्य श्री के शिष्य सुमेर मुनिजी आदि से स्नेह-मिलन हुआ। चातुर्मास हेतु उदयपुर सघ को स्वीकृति दी गयी। वहाँ से चरितनायकजी मेवाड मंत्री मोतीलालजी म० से मिलने हेतु देलवाडा पधारे। वहाँ से उदयपुर होते हुए गोगुन्दा पधारे, जहाँ पर महासती श्री शंभुकुँवरजी एवं शीलकुँवरजी आदि विराजमान थी। सेरा प्रान्त मे विचरण कर यथासमय उदयपुर वर्षावास हेतु पधारे। उपाचार्यश्री ने दिवाकरीय मुनि हस्तीमलजी एव तपस्वी राजमलजी को आपके संरक्षण मे रखने के उद्देश्य से उदयपुर वर्षावास हेतु भेजा। विशेष उल्लेखनीय बिन्दु यह रहा कि इस वर्षावास के काल में हगामीलालजी आदि अनेक वकीलो तथा बुद्धिजीवियो ने चरितनायकजी से 'तत्वार्थ सूत्र' एव जैन फिलोसफी का गहन अध्ययन किया और इस वर्ष का वर्षावास उदयपुर मे आयोजित हुआ।

संवत् २०१५ : बाघपुरा—चातुर्मास

उदयपुर वर्षावास पूर्ण होने पर हमारे चरितनायकजी देवेन्द्र मुनिजी व गणेश मुनिजी को परीक्षा दिलवाने हेतु नगर के बाहर

आयड़ क्षेत्र मे विराजे । इधर कानोड़ चातुर्मास समाप्त कर उपाचार्य श्री उदयपुर पधारे । चरितनायकजी का विहार का विचार था, पर उपाचार्यश्री का अत्यधिक आग्रह होने पर पुनः नगर मे पधारे । संवत्सरी आदि अनेक श्रमणसंघीय प्रश्नो पर विचार-विमर्श हुआ। और विभूतिद्वय के मध्य संघ-एकता के प्रश्न पर मूल्यवान एवं उपयोगी विचार-विमर्श हुआ । उसके बाद आपश्री ने उदयपुर से विहार किया और वाकल, झालावाड व सेराप्रान्त मे आपका भव्य स्वागत हुआ । पदराडा मे चातुर्मास की स्वीकृति के अनुरोध के साथ ब्यावर सघ उपस्थित हुआ और अपने-अपने मन्तव्यो सहित मेवाड़ के भी अनेक संघ एकत्रित हो गये थे । अन्ततः मेवाड़ प्रान्तीय बाघपुरा को आगामी चातुर्मास हेतु चुन लिया गया। इन दिनो सद्‌गुरुणीजी सोहनकुँवरजी ब्यावर मे अस्वस्थ थी । आपश्री इन्हे दर्शन देने के लिए ब्यावर होते हुए पुन मेवाड की ओर उन्मुख हो गये और आपश्री का आगमन यथासमय बाघपुरा हुआ। वही इस वर्ष का चातुर्मास सम्पन्न हुआ। चातुर्मास मे परम विदुषी महासती श्री शीलकुँवरजी भो अपनी शिष्याओ के साथ विराजमान थी । बाघपुरा चातुर्मास मे आपश्री ने इस बार पत्र देकर उपाचार्यश्री से पुछवाया कि मरुधर केसरीजी के साथ साम्भोगिक साधुमर्यादानुसार सम्बन्ध है या नही ? किन्तु उपाचार्यश्री की ओर से कोई समाधान प्राप्त नही हुआ ।

संवत् २०१६ : जोधपुर–चातुर्मास

बाघपुरा से विहार कर आपश्री मारवाड की ओर अग्रसर हुए। इस वर्ष के चातुर्मास हेतु दुन्दाडा मे जोधपुर सघ के आग्रह को स्वीकृति मिली। गुरुदेवश्री देवेन्द्रमुनिजी के उपचार हेतु लूणी जक्शन होते हुए जोधपुर पहुँचे। इधर मरुधर केसरीजी म० जोधपुर पधारे। सेठ हीराचन्दजी भीखमचन्दजी के वंगले मे सम्मिलित जाहिर व्याख्यान हुए । जब यह समाचार उपाचार्यश्रो के पास पहुँचे तो उन्होने चरितनायकजी के प्रति आपत्ति उठाई कि आपने मरुधर केसरीजी के साथ प्रवचन क्यो दिये ? चरितनायकजी ने पूर्व पत्र की स्मृति दिलाते

हुए प्रत्युत्तर मे लिखा कि यदि मरुधर केसरीजीसे सम्बन्ध नही है तो वे श्रमणसंघ के प्रान्त मन्त्री कैसे है? अनेक बार इस सम्बन्ध मे आपश्री से पुछवाया पर कोई समाधान न मिल पाया। हमसे पूर्व मत्री श्री पन्नालालजी म० आदि ने भी सम्बन्ध रखा है आदि। काफी लम्बे समय तक पत्राचार चलता रहा और अन्त मे आपके विपरीत तर्क न मिल पाने के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप आपके विरुद्ध पेम्पलेट भी निकाला गया। पर चरितनायकजी ने जव पेम्पलेट का उत्तर दिया तो समाज मे एक जबर्दस्त तहलका-सा मच गया। उपाचार्यश्री की अवैधानिक कार्यवाही से समाज के सभी महारथियो ने अविश्वास प्रस्ताव पारित करने की तैयारी की। जोधपुर से विहार कर चरितनायकजी बिलाडा, पीपाड होते हुए पुन: वर्पावास हेतु जोधपुर पधारे।

संवत् २०१७ : ब्यावर–चातुर्मास

जोधपुर चातुर्मास समाप्त होने पर आपश्री मार्ग के अनेक क्षेत्रो को रसप्लावित करते हुए ब्यावर पधारे। स्थानीय सघ के अनुरोध पर इस वर्ष का चातुर्मास यही के लिए निश्चित हुआ। ब्यावर वर्पावास में भी इसी समस्या को लेकर कान्फ्रेस के शिष्ट-मंण्डल चरितनायकजीकी सेवा मे पहुँचे। गुरुदेवश्री के मुखारविन्द से एकता तथा सामाजिक स्थितियों का समाधान पाकर शिष्ट-मण्डल प्रभावित हुआ एव उसे उपाचार्यश्री की अवैधानिक कार्यवाहीकी जानकारी हुई।

संवत् २०१८ : सादड़ी – चातुर्मास

ब्यावर से विहार कर चरितनायकजी विजयनगर पधारे। यहाँ उपाध्याय हस्तीमलजी म० व मत्री श्री पन्नालालजी म० के साथ समाज की समस्याओ पर विचार-विमर्श हुआ। तीनो महारथियो ने मिलकर महत्वपूर्ण विपय 'अखण्ड रहे यह संघ हमारा' पर वक्तव्य दिया। वक्तव्य के प्रभाव-स्वरूप समाज मे नयी जागृति के लक्षण दिखाई देने लगे। परिणामत. उपाचार्यश्री को लगा कि मेरी अवैधानिक कार्यवाही का सर्वत्र अनादर हो रहा है।

अतः उन्होने श्रमण-संघ से व उपाचार्य-पद से त्याग-पत्र की घोषणा कर दी। त्याग-पत्र की सूचना मिलते ही विजयनगर से उपाचार्य श्री की सेवा मे शिष्ट-मण्डल भेजकर निवेदन किया गया कि त्याग-पत्र न देकर जो अवैधानिक कार्यवाही हो चुकी है, उसका परिष्कार कर दिया जाय। खैर, चरितनायकजी वहाँ से अपनी शिष्य-मण्डली के साथ विहार कर भीम होते हुए समीर मुनिजी व सुमेर मुनिजी को साथ लेकर ९ सन्तो सहित लावा सरदारगढ पधारे। उस समय लावा सरदारगढ मे तेरापन्थी सम्प्रदाय के आचार्यश्री तुलसीजी विराजमान थे। जगल मे मिलाप हुआ। परस्पर परिचय के बाद आचार्य तुलसीजी ने कहा आपश्री ने हमारा साहित्य देखा या नही? चरितनायकजी ने कहा, 'देखा है'। तुलसीजी ने जानना चाहा कि वह कैसा लगा? चरितनायकजी का उत्तर था, 'कुछ अच्छा लगा'। 'कुछ' शब्द का समाधान करते हुए चरितनायकजी ने कहा, आज के इस सभ्य एवं सगठन के युग में 'भिक्षु दृष्टान्त' जैसे क्लेशवर्धक एवं साम्प्रदायिक भावना फैलानेवाले ग्रन्थ को प्रकाशित करवाना उचित नही लगता। आचार्य श्री तुलसी ने कहा, 'भिक्षु दृष्टान्त' मे ऐतिहासिक सत्य-तथ्य है। अत इसका प्रकाशन करवाना आवश्यक समझा गया। चरितनायकजी ने कहा कि यदि ऐसी बातो को ही आप ऐतिहासिक सत्य-तथ्य मानते है तब तो ऐसे बहुत से प्रसग हमारे पास भी संकलित है। उदाहरण-स्वरूप आपश्री के जयाचार्य के समय हमारे सम्प्रदाय के आचार्य जीतमलजी म० भी हुए है। एक बार उपर्युक्त दोनो महापुरुषो का पाली के पास रोइट गाँव मे मिलन हुआ था। सयोग से दोनो महापुरुषो को आमने-सामने के मकान मे ही ठहराया गया था। रात्रि के समय जयाचार्यजी के मुख से एक कविता-पाठ नि सृत हुआ —

कर रे जीव तू भक्त भीखू तणी
जाण तीर्थंकर पहळ देवा।
वीर री गादी पर आय विराजियो
सहल गिने ति के मूढ जेवा

सैंकड़ों वर्ष लग जीव ने तारिया
मायडी एवडो पूत जायो ।
इस का प्रत्युत्तर देते हुए हमारे जीतमलजी म० ने फरमाया-
छोड रे जीव पत पात पाखण्डनी
समकित मूल नही रहत बाकी
देवगुरु धर्म उत्थापियो पापिया
नागडा खोय दिनी रै नाकी
सैकड़ो वर्ष लग जीव डुबोविया
पापणी एवडो पूत जायो
धणी बेठा थका घाडा पडता तो
हिवडा तो पाचमो काल पायो ॥

आचार्यश्री तुलसीजी के मुँह से ऐसा प्रतिभास हो रहा था कि उन्होने उसका प्रकाशन कर ठीक नही किया है ।

यहाँ से विहार कर आपश्री पुन मेवाड की ओर अग्रसर हुए । मेवाड के कतिपय क्षेत्रो को पावन करने हुए आपश्रो का प्रवेश सेरा प्रान्त में हुआ । यहाँ आपश्रो ने सादडी संघ को आगामी चातुर्मास हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान की । और तप, त्याग, व्रत, प्रत्याख्यान सहित यह वर्षावास यथासमय सोत्साह सम्पन्न हुआ । इस चातुर्मास काल मे देवेन्द्र मुनिजी विशेष रुग्ण रहे ।

संवत् २०१९ : जोधपुर – चातुर्मास

सादडी-चातुर्मासोपरान्त देवेन्द्र मुनिजी की अस्वस्थता के समाचार प्राप्त कर देवेन्द्र मुनिजी की मातेश्वरी महासती श्री प्रभावतीजी एवं वहन महाराजश्री पुष्पवतीजी अपनी शिष्याओ के साथ सादड़ी पधारी । चरितनायकजी सादडी से विहार कर साण्डेराव पधार गये थे । महासतीजी भी साण्डेराव पहुँची । उस समय सतीजी की सेवा मे उदयपुर निवासी श्री कन्हैयालाल लोढा की सुपुत्री वाल ब्रह्मचारिणी अनोखा वहन धार्मिक अभ्यास कर रही थी । उदयपुर मे अनोखा वहन की दीक्षा की तैयारियाँ प्रारम्भ हो चुकी थी । चरितनायकजी से दीक्षा देने हेतु उदयपुर पधारने का निवेदन किया गया । अस्वस्थता

के कारण आपश्री का पधारना असम्भव जानकर महासती पुष्पवतीजी व प्रभावतीजी पुनः उदयपुर पधारी एवं भूतपूर्व उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज के सान्निध्य मे दीक्षा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इधर जोधपुर पधारने के निवेदन हेतु जोधपुर का संघ साण्डेराव पहुँचा। न्यायाधीश इन्द्रनाथजी मोदी एवं डा० बी० एल० मेहता के आग्रह से उपचारार्थ यथासमय साण्डेराव से विहार कर जोधपुर पधारे। घोड़े के चौक मे आपका चातुर्मास न्यायाधीशजी के इन्द्रभवन मे हुआ एवं सिंहपोल मे मरुधर केसरीजी का चातुर्मास हुआ और कई व्याख्यान सम्मिलित रूपसे हुए।

संवत् २०२० : जालोर-चातुर्मास

जोधपुर से विहार कर आपश्री का आगमन सीवाणची प्रान्त मे हुआ। यहाँ आपश्री की भेट महासती हरखुजी म० आदि महासती वृन्द से हुई। आगामी चातुर्मास जालोर मे व्यवस्थित हुआ। इस वर्षावास की अवधि मे गुरुदेवश्री के 'नेश्राय' मे जिनेन्द्रमुनिजी ने दीक्षा ग्रहण की। श्रीजिनेन्द्र मुनिजी स्वभावसे मिलनसार व अध्ययन प्रेमी सन्त है। विजयादशमी के दिन दीक्षा महोत्सव में न्यायाधीश श्री इन्द्रनाथजी मोदी आदि विशिष्ट सज्जनो ने भी भाग लिया।

संवत् २०२१ : पीपाड़-चातुर्मास

जालोर-चातुर्मास के समापन का वह समय था जब अजमेर मे शिखर सम्मेलन की तैयारियाँ हो रही थी और आपश्री का मार्गदर्शन अपेक्षित अनुभव किया जा रहा था। आपश्री ने उग्र विहार किया और आहोर, साण्डेराव, भीम, गुलाबपुरा, ब्यावर होते हुए अजमेर कार्यक्रम मे सम्मिलित हुए। सम्मेलन मे भाग लेने हेतु पंजाब, मालवा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, दिल्ली आदि विभिन्न क्षेत्रो से लब्धप्रतिष्ठित साधु-साध्वीगण उग्र विहार कर अजमेर पहुँचे थे। उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी को आचार्य पद दिया गया। गुरुदेव श्री सम्मेलन के पदो के भार से मुक्त होने के अभिलाषी थे, किन्तु अत्याग्रहवश आपश्री को सम्मेलन का संचालन-सूत्र सभालना ही

पडा । आचार्य प्रवर पूज्य आनन्द ऋषि म० की परामर्शदात्री समिति मे भी आपश्री को सम्मान्य स्थान प्राप्त हुआ । विशेष उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के स्थान पर प्रवर्तक मण्डल की व्यवस्था की गयी। यही आगामी वर्षावास पीपाड नगर मे होना निश्चित हो गया । आपश्री सम्मेलन के समापन पर विहार कर मेडता के मार्ग से कुचेरा पधारे । 'चन्दनबाला श्रमणी संघ' की अध्यक्षा महासती श्री सोहनकुँवरजी म० ने भी अजमेर से कुचेरा की ओर विहार किया ।

कुचेरा मे हो हम दोनो बन्धुओ (मै राजेन्द्र कुमार व मेरे ज्येष्ठ भ्राता रमेशकुमारजी) को लेकर धर्मानुरागिनी माता श्रद्धेया धापूकुँवरजी सेवामे उपस्थित हुई थी। माताजी ने आपश्री से हमारे धार्मिक शिक्षण हेतु अनुरोध किया था। परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री की कृपापूर्ण स्वीकृति प्राप्त हुई और मुझे व भ्राता श्री रमेशकुमार सहित सद्गुरुदेव के चरणाश्रय मे स्थान मिला । दोनों बन्धुओ ने ज्ञानाभ्यास प्रारंभ किया ।

गुरुदेवश्री कुचेरा से विहार कर नागोर पधारे, जहाँ उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म० का आगमन भी हुआ और मुनिद्वयका मिलन आनन्ददायी एव मधुर रहा । तद्नन्तर आपश्री गोठन, खागटा होते हुए चातुर्मास हेतु पीपाड पधारे । पीपाड का श्रद्धालु कोठारी परिवार, जो व्यवसाय के सम्बन्ध मे अब बम्बई, अहमदाबाद मे बस गया है, समग्र चातुर्मास पर्यंत गुरुदेवश्री की सेवा मे व्यस्त रहा । सद्गुरुणीजी श्री सोहनकुँवरजी म० भी अपनी शिष्याओ सहित इस समय पीपाड मे विराजती थी और हमारी माताजी (श्रीमती धापूकुँवरजी) ने आपके श्री चरणो मे पूरे चातुर्मास धार्मिक अध्ययन किया ।

संवत् २०२२ : खण्डप–चातुर्मास

पीपाड वर्षावास के समय जोधपुर मे पण्डित प्रवर्तक श्री हीरालालजी म० एव तरुण तपस्वी लाभचन्दजी म० तथा महासती कमलावतीजी का चातुर्मास था । जोधपुर के चातुर्मास काल

मे एक अघटनीय घटना घट जाने से समाज मे तलहका मच गया। चरितनायकजी ने आचार्यश्री को सूचित किया कि 'जोधपुर प्रकरण' उग्र रूप धारण कर चुका है। अत विश्वस्त व्यक्तियो को भेज कर सत्य-तथ्य की परीक्षाकर प्रकरणका शीघ्र ही निर्णय अनिवार्य है। उनके साथ हमारे सम्बन्धो का स्वरूप भी निश्चित हो जाना चाहिये। उस पर भी आचार्यश्री से कोई समाधान न हुआ और इधर प्रवर्तक पन्नालालजी म० का आदेश प्राप्त हुआ कि जब तक समाधान न हो तब तक सम्बन्ध न रखा जाय।

पीपाड़ से वर्षावासोपरान्त विहार कर गुरुदेवश्री का आगमन खाँगटा हुआ, जहाँ पर उपाध्याय हस्तीमलजी म० का मिलाप हुआ। खाँगटा से भोपालगढ पधारे तो उसी दिन वहाँ प्रवर्तक हीरालालजी एवं लाभचन्दजी म० भी पधार गए। प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म० का आदेश आनेसे चरितनायकजी ने मधुर व्यवहार रखते हुए उन्हें सारी स्थिति से अवगत कराया। तदनन्तर वहाँ से विहार कर चरितनायकजी का जोधपुर आगमन हुआ। हम दोनो बन्धु आपश्री की सेवा मे थे ही। प्रतिक्रमण पच्चीस बोल, नवतत्व, ४२ दोप ५२ अनाचार, दशवैकालिक आदि साधु जीवन अपेक्षित धार्मिक अध्ययन हम लोगो का तब तक हो चुका था। हममे दीक्षा ग्रहण करने की अन्त प्रेरणा जागृत हुई। हमारी यह मनोकामना गुरुदेवश्री से की गयी जो हमारी माताजी एव दादीजी की विनती मे व्यक्त हुई। इन्ही दिनो सिवाना संघ गुरुदेवश्री की सेवा मे उपस्थित था इस प्रार्थना हेतु कि दीक्षा सिवाना मे ही हो। आपश्री ने द्रव्यक्षेत्र काल भाव देखकर साधु मर्यादानुसार हमारी दीक्षा हेतु सिवाना का आस्थावान स्थल ही निश्चित कर लिया। स्थानीय संघ ने उत्साहपूर्वक महोत्सव आयोजित किया और हम दोनो बन्धु गुरुदेवश्री के आशीर्वाद के साथ परिव्रजित हुए दि. १५–३–'६५, फाल्गुन शुद १३, सोमवार के दिन। प्रसगवश यह उल्लेखनीय है कि हमारी मातुश्री की दलोदा के समीप अफजलपुर मे महासती नानकुँवरजी के पास मे दीक्षा हुई। उनका नामकरण 'प्रकाशवतीजी' के रूप मे हुआ। सिवाना

दीक्षा महोत्सव मे जोधपुर, उदयपुर, पीपाड, बम्बई, मेड़ता, ब्यावर, जालोर आदि अनेक स्थानो से हजारो श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाएँ उपस्थित हुईं। सिवाना से विहार कर गुरुदेवश्री मोकलसर पधारे जहाँ पर हमे बडी दीक्षा प्रदान की गयी। दीक्षा महोत्सव पर गुरुणीजी श्री पुष्पवतीजी, प्रभावतीजी, रामूजी, सीताजी, वक्सुजी आदि अनेक महासती जन पधारी थी। खण्डप होते हुए आपश्री मझल, दुन्दाडा होकर समदडी पधारे जहाँ पर उपाध्याय हस्तीमलजी म० से मिलाप हुआ। हम दोनो नव दीक्षितो को देखकर उपाध्यायश्रीने हर्ष व्यक्त किया। कुछ दिन दोनो महापुरुषो का विराजना हुआ तथा इतिहास के सम्बन्ध मे गंभीर विचार-विनिमय हुआ। उपाध्यायजी म० ने देवेन्द्र मुनिजी से कहा कि तुम्हे इतिहास का कार्य करना है।

इस वर्ष गुरुदेवश्री का चातुर्मास खण्डप मे हुआ। हम दोनो बन्धुओ के साधु-जीवन का प्रथम वर्षावास खण्डप से ही प्रारंभ हुआ।

संवत् २०२३ : पदराड़ा-चातुर्मास

खण्डप से आपश्री विहार कर जालोर पहुँचे। तत्पश्चात् आपश्री रोइट पधारे जहाँ सद्गुरुणीजी श्री सोहनकुँवरजी से भेट हुई। उस समय सोहनकुँवरजी का स्वास्थ्य अस्वस्थ था। यह स्थान जोधपुर के समीप है, अत वहाँ से अनेक श्रद्धालुजन आपश्री के दर्शनार्थ आये। न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथ मोदी का नाम उनमे विशेष उल्लेखनीय है। रोइट से विहार कर आपश्री पाली-सादडी मार्ग से मेवाड पधारे। भगवान महावीर जयन्ती नान्देशमा ग्राम मे आयोजित की गयी। इस वर्ष भीलवाडा, साडेराव, गोगुदा, झालावाड, वाकल, पदराडा आदि ३०-३४ सघो के २ हजार श्रद्धालुजन गुरुदेवश्री की सेवा मे आगामी चातुर्मास की लालसा से उपस्थित हुए। निर्णय पदराडा के पक्ष मे हुआ। अभी चातुर्मास के आरंभ होने मे समय शेष था। आपश्री का उदयपुर आगमन हुआ। उग्र विहार कर आपश्री को उदयपुर से गोगुन्दा जाना पडा, क्योकि वहाँ महासती श्री शम्भुकुँवरजीका परलोक-गमन हो चुका था। यथासमय आपश्री

चातुर्मास हेतु पदराडा पहुँचे । इसी चातुर्मास काल में एक दुखद समाचार मिला। पाली मे सद्गुरुश्री सोहनकुंवरजी का परलोकवास हो गया और महास्थविर ताराचन्दजी म० के परमभक्त सुश्रावक से० नाथुलालजी साहब परमार पदराड़ा निवासीका भी स्वर्गवास हुआ। पदराडा मे इस वर्षावास काल मे पूज्य महास्थविर ताराचन्दजी म० की स्मृति मे "श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय" की स्थापना हुई ।

संवत् २०२४ : बालकेश्वर-बम्बई चातुर्मास

गुरुदेवश्री पदराडा का चातुर्मास समाप्त कर समीपवर्ती क्षेत्र मे विचरण कर रहे थे कि बम्बई संघके प्रतिनिधिमण्डल अनेक बार इस प्रार्थना के उद्देश्य से आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुए कि आपश्री का बम्बई पदार्पण हो। अत: आपश्री ने बम्बई की ओर विहार करना निश्चित किया। कोल्यारी-हिम्मतनगर होते हुए आपश्री का अहमदाबाद आगमन हुआ । यह सारा मार्ग घने जंगलो एवं पर्वतो से भरा

---

१. महासती श्री सोहनकुँवरजी : संक्षिप्त परिचय

आपका जन्म गोगुदा के समीप तिरपाल ग्राम में सवत् १९४९ में हुआ था । पिता का नाम रोडमलजी और माता का गुलावबाई था। वाल्यावस्था का नाम क्षमाकुमारी था । इनमे पूज्य नेमीचन्दजी म० के सदुपदेशो के परिणामस्वरूप वैराग्य-भावना जागृत हुई और मात्र ८ वर्ष की आयु में आपने माताजी और दो अपने ज्येष्ठ भ्राताओके साथ दीक्षा अगीकार कर ली । गुरुआनी श्री रायकुँवरजी स्वर्ग सिधार गयी और सिंघाडे का सारा दायित्व आप पर आ गया था । शास्त्राभ्यास के तेज से सम्पन्न महासती सोहनकुँवरजी का जीवन तप-त्याग प्रधान था । अजमेर साधु सम्मेलन मे आपको 'चन्दनबाला श्रमणी सघ' की अध्यक्षा बनाया गया। पाली चातुर्मास मे भादरवा सुदी १४ को सथारा कर आप स्वर्ग सिधारी ।

२ महासती श्री शभुकुँवरजी परम विदुषी साध्वी रत्न शील कुँवरजी म० की माताजी थी । आपकी जन्मस्थली वाघपुरा और ससुराल खाखट थी । माता पुत्री दोनो ने स १९८२ फाल्गुन शुक्ला दूज को खाखट मे दीक्षा ग्रहण की । आपकी सद्गुरुणी का नाम महासती धूलकुँवरजी था। गोगुन्दा मे आपका ससथारा स्वर्गवास हुआ ।

था। वम्वई संघ को आश्वासन दिया जा चुका था, अत: अहमदावाद संघ का अत्याग्रह होने पर भी वह स्वीकार नही किया जा सका। आपश्री अहमदावाद से वड़ौदा, भड़ौच होते हुए पालघर पहुँचे। पालघर से आपश्री का आगमन विरार हुआ जहाँ गुरुदेवश्री के अमृत वचनो से लाभान्वित होने के प्रयोजन से महाराष्ट्र के मंत्री भाऊसाहव वर्तक भी पधारे। वम्वई प्रवेश पर थाणा, अँधेरी, वालकेश्वर आदि संघो का अनुरोध होने लगा। गुरुदेवश्री ने अपना चातुर्मास वालकेश्वर–वम्वई खोला। वहाँ हरकचन्द कोठारीके हॉल मे चातुर्मास हुआ। पास ही कादावाडी क्षेत्र मे पण्डित श्री विजयमुनि एवं पण्डितश्री समदर्शीजी का चातुर्मास था। स्नेह-मिलन होता रहा।

संवत् २०२५ : घोड़नदी-चातुर्मास

वालकेश्वर से यथासमय प्रस्थान कर गुरुदेवश्री पुनः वालकेश्वर पधारे तथा आपके सान्निध्य मे राजस्थान स्थानकवासी संघ की स्थापना हुई। अचलसिहजी एम० पी०, जवाहरलालजी मुणोत, चम्पालालजी कोठारी आदि सैकडो भाइयो ने भाग लिया। कोट कादावाडी, चीचपोकली, दादर, माटुगा होते हुए पूना की ओर अग्रसर हुए। घाटकोपर तथा घोडनदी के संघ अनुरोध लेकर आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुए। अन्त मे गुरुदेवश्री ने अपना निर्णय घोडनदी संघ के पक्ष मे दिया। यह चातुर्मास घोड़नदी संघ के इतिहास मे अभूतपूर्व रहा। श्रावक जन आपश्री से अत्यधिक प्रभावित हुए।

संवत् २०२६ : पूना–चातुर्मास

घोडनदी–चातुर्मास की समाप्ति पर गुरुदेवश्री का आगमन अहमदनगर हुआ। अहमदनगर मे उन दिनो श्रद्धेय पण्डित प्रवर आत्मार्थी श्री मोहनऋषि म०, श्रद्धेय प्रवर्तक विनयऋषिजी म० तथा जैन जगत की यशस्वी तारिका उज्ज्वलकुँवरजी अपनी शिष्याओ के साथ विराज रही थी। आप सवसे गुरुदेवश्री की आनन्दप्रद भेट हुई। अहमदनगर की व्याख्यान-सभाओं मे आपश्री की अमृतवाणी का रसास्वादन करने को हजारो श्रद्धालुजन एकत्रित होते थे।

घोड़नदी से आपश्री के साथ आशु कवि श्री मारुतिराव आये हुए थे । व्याख्यान के तुरन्त पश्चात् कविजी उसका पद्यमय रूपान्तर प्रस्तुत कर सभा की शोभा मे और अभिवृद्धि कर दिया करते थे ।

अहमदनगर से विहार कर गुरुदेवश्री संगमनेर होते हुए जब सिन्नर पहुँचे तो मालव केसरी श्री सौभागमलजी म० से आपश्री का मिलन हुआ । सघ-एकता आदि अति महत्वपूर्ण विषयो पर मुनिद्वय मे मूल्यवान विचार-विमर्श हुआ । उन दिनो नासिक संघ 'महाराष्ट्र श्रावक सम्मेलन' की योजना मे रुचिशील ही नही, सक्रिय भी था । मालव केसरीजी एवं गुरुदेवश्री के सुयोग्य सान्निध्य मे नासिक मे यह विराट श्रावक सम्मेलन आयोजित किया गया । इसी सम्मेलन मे आपश्री को गौरवपूर्ण उपाधि '**राजस्थान केसरी**' से अलकृत ही नही, सम्मानित भी किया गया था ।

सम्मेलन सम्पन्न हो जाने के पश्चात् केसरीद्वय अर्थात् पूज्य गुरुदेव एव श्री सौभागमलजी म० का लगभग १ माह तक साहचर्य रहा। तत्पश्चात् सिन्नर-संगमनेर मार्ग से ही आपश्री का आगमन पूना हुआ । अहमदनगर, नासिक, पूना आदि के संघो की ओर से आगामी चातुर्मास हेतु प्रार्थनाएँ थी और आपश्री ने पूना-चातुर्मास के लिए घोपणा की । पूना मे स्वामी स्थविरश्री चाँदमलजी म०, जीतमलजी म० और लालचन्दजी म० से आपश्री का अति मधुर और स्नेहमय मिलन हुआ । कुछ काल यह साहचर्य बना रहा । पूना से विहार कर आपश्री ने घोडनदी, अहमदनगर आदि क्षेत्रो मे विचरण किया और यथासमय चातुर्मास हेतु पूना पधारे । यह अवधि विशेष तपस्याओ की अवधि रही । मास खमण २१,१५,१८ आदि अनेक तपस्याएँ हुई ।

संवत् २०२७ : दादर-चातुर्मास

पूना-चातुर्मासोपरान्त आपश्री लोनावला होते हुए बम्बई पधारे । बम्वईके विभिन्न क्षेत्रो मे जिनवाणी की पुनीत धारा प्रवाहित करते हुए आपश्री ने विरार तक विचरण किया । आगामी चातुर्मास हेतु आपश्री ने दादर-सघ का अनुरोध स्वीकार

किया । घाटकोपर मे श्रमणी विद्यापीठ की स्थापना हुई । तपस्वी रतीलालजी म०, हर्षद मुनिजी, पण्डित श्री विजय मुनिजी आदि का स्नेह-सम्मिलन हुआ

संवत् : २०२८ : काँदावाड़ी–चातुर्मास

दादर–वर्षावास सम्पन्न होने पर गुरुदेवश्री ने बालकेश्वर, काँदावाडी, कोर्ट, चिंचपोकली, माटुँगा, काँदीवली, मुलुण्ड, विलेपार्ले, सान्ताक्रुज, घाटकोपर, बोरिवली आदि क्षेत्रो का विचरण किया । इस वर्ष का चातुर्मास काँदावाडो मे निश्चित रहा । प्रस्तुत चातुर्मास काल मे पण्डित दलसुखभाई मालवणिया, पं अगरचन्दजी नाहटा, भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मत्रीजी आदि महानुभावो से आपश्री की भेंट विशेष उल्लेखनीय एव उपादेय रही । देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री द्वारा सम्पादित गुजराती भाषा मे कल्पसूत्र काँदावाडी सघ की ओर से प्रकाशित हुआ और उसका विमोचन चिमनलाल चक्कूभाई शाहने किया था। कल्पसूत्र इतना अत्यधिक लोकप्रिय हुआ कि दो हजार प्रतियाँ सिर्फ एक सप्ताह मे समाप्त हो गईं। पुन तीन हजार प्रतियाँ प्रकाशित की गईं । वे भी समाप्त हो गईं ।

संवत् २०२९ : जोधपुर-चातुर्मास

काँदावाडी-चातुर्मास की समाप्ति पर संघहित की दृष्टि से गुरुदेवश्री ने उग्र विहार किया राजस्थान की ओर । विशेष प्रयोजन था साडेराव मे 'राजस्थानी मुनि-सम्मेलन' का आयोजन । मार्ग मे, केलवा रोड मे विदुषो महासती प्रेमकुँवरजी के सान्निध्य मे विगत २–३ वर्षो से ज्ञानाभ्यास कर रही भावदीक्षिता श्री लता कुमारीजी को दीक्षा प्रदान कर आपश्री पालघर, सूरत, भडौच, वडौदा, आणन्द, नवसारी, खेडा आदि स्थानो पर होते हुए अहमदाबाद पधारे । अहमदावाद श्री संघ का आगामी चातुर्मासार्थ प्रबल अनुरोध था, किन्तु गुरुदेवश्री ने तत्काल कोई निर्णय नही दिया । अहमदाबाद से प्रस्थान कर आपश्री पालनपुर, आबू, शिवगंज होते हुए साडेराव पहुँचे । 'राजस्थान प्रान्तोय मुनि-सम्मेलन' मे अनेक मूर्धन्य एव

विशिष्ट मुनिवरो ने भाग लिया, जिनमे आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि म० का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

इस वर्ष चातुर्मास हेतु अनुरोध के प्रयोजन से अहमदावाद एवं जोधपुर के सघ उपस्थित हुए और गुरुदेवश्री ने जोधपुर के लिए स्वीकृति प्रदान की। आपश्री के सान्निध्य मे साडेराव सम्मेलनमे प्रवीण मुनिजी ने दीक्षा ग्रहण की। प्रवीण मुनिजी बहुत ही सेवाभावी और सरल व सरस प्रकृति के सन्त है। सम्मेलन के समापन पर आपश्री ने सादडी, सायरा, पदराडा, गोगुदा आदि स्थानो का विचरण करते हुए उदयपुर आगमन किया । उदयपुर से विहार कर आपश्री सादडी, पाली मार्ग से चातुर्मास हेतु यथासमय जोधपुर पधारे। यहाँ परम विदुषी जैन-जगत की उज्ज्वल तारिका महासती श्री शीलकुँवरजी का चातुर्मास भी अपने समुदाय के साथ हुआ । वर्षावास मे महासतीजी की सुशिष्या दयाकुँवरजीने ३२ तप की आराधना की ।

संवत् २०३० : अजमेर-वर्षावास

जोधपुर का भव्य वर्षावास पूर्ण कर गुरुदेवश्री महासती रामूजी को दर्शन देनेके लिए वाडमेर जिले की ओर अग्रसर हुए । धवा, कल्याणपुर, समदडी, सिवाना होते हुए जालोर पधारे और जालोर से खण्डप, मझल, अजीत, लूणी जंक्शन होते हुए पुनः जोधपुर पधारे । इधर सिवाना मे परम विदुषी महासती श्री रामूजी के स्वर्गवास के समाचार मिले । शोकसभा की गयी । महासतीजी का आदर्श जीवन था और अन्त समय मे भी अनशन-पूर्वक समाधि मरण से आप स्वर्ग सिधारी । जोधपुर से आपश्री विहार कर पीपाड होते हुए मेड़ता पधारे । मेडता से बडूगॉव की अत्यधिक प्रार्थना होने से उस ओर विहार किया । वडू नागोर जिले का एक छोटा सा गॉव है, जो कि हम दोनो भ्राताओ की जन्म-भूमि है । चारो तरफ रेगिस्तान का इतिहास बिखरा पड़ा है । देश के मूल्यवान पत्थर मकराणा को खानो के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है । बडू गॉव मे एक प्रसिद्ध डोसी परिवार रहता

है, जो धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्रो में प्रारम्भ से ही अग्रगण्य रहता आया। उसी परिवार मे गुमानमलजी, हेमराजजी, जसराजजी और प्रेमचन्दजी ये ४ भाई थे। उसमे श्री हेमराजजी जसराजजी वर्तमान मे विद्यमान है। सबसे बडे भ्राता गुमानमलजी डोसी की धर्मपत्नी धर्मानुरागिणी लाडजीबाई है। इन्ही के सुपुत्र श्री पूनमचन्दजी डोसी हुए और दो पौत्र हुए श्री पूनमचन्दजी के रमेशकुमार और राजेन्द्रकुमार। वे ही हम दोनो भाई है—मुनि के रूप मे। हमारी मातेश्वरी है श्री धापुकुँवरजी, जिन्होंने पूज्य पिताश्री के स्वर्गवास होने पर लगभग १० वर्ष तक वैद्या का कार्य किया। हमारी दीक्षा के पश्चात् हमारी मातेश्वरी ने भी संयम मार्ग को अंगीकार किया, जिनका नाम महासती प्रकाशवतीजी रहा। वडू पी, थावला होते हुए आपश्री चातुर्मासार्थ अजमेर पधारे। चातुर्मास की प्रार्थना हेतु इस वर्ष बाडमेर जिले मे खण्डप ग्राम मे अजमेर सघ, भीलवाड़ा सघ, भोपालगज सघ, सायरा, सीघाडा, जालोर, मझल, सिवाना, खण्डप आदि संघ उपस्थित हुए। गुरुदेवश्री ने अपना निर्णय अजमेर के पक्ष मे दिया और यथासमय अजमेर (चातुर्मासार्थ) पधारे। कारणवशात् परम विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी के शिष्या-परिवार मे से महासती चतरकुँवरजी, कैलासकुँवरजी, कुसुमवतीजी, पुष्पावतीजी, प्रभावतीजी, श्रीमतीजी, प्रियदर्शनाजी व चरित्रप्रभाजी ठा० ८ का सम्मिलित वर्षावास हुआ। चातुर्मास मे अनेक तपस्याएँ हुई। पूज्य महास्थविर श्री हगामीलालजी म० का भी अजमेर मे ही चातुर्मास था। मुनिद्वय का पारस्परिक स्नेहसम्बन्ध देखकर अजमेर सघ अत्यधिक प्रभावित व प्रसन्न हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के पास देवास निवासी रतनलालजी मोदी के सुपुत्र श्री चतुरकुमार, श्री महेन्द्रकुमार व श्री बसन्तकुमारजी धार्मिक अभ्यास कर रहे थे और महासती श्री कैलासकुँवरजी के पास उदयपुर-निवासी कन्हैयालालजी सियाल की सुपुत्री श्री स्नेहलता कुमारी धार्मिक अभ्यास कर रही थी। अजमेर सघ ने अपने यहाँ दीक्षा महोत्सव कराने का आग्रह किया। द्रव्य क्षेत्र कालभाव को

देखते हुए गुरुदेवश्री ने वैरागी चतुरकुमार व वैरागिन स्नेहलता को दीक्षा की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पा कर सघ मे अपार उत्साह छा गया । सघ दीक्षा महोत्सव की तैयारी मे जुट गया। वैरागी श्री चतुरकुमार एवं वैरागिनी श्री स्नेहलता बहन की बिन्दोली निकलने लगी ।

दीक्षा दिवस दिनाक ८–११–७३, कार्तिक सुदी १३ का निश्चित किया गया । आखिर यह मंगलमय दिवस भी आ पहुँचा। वाहर से हजारो की संख्या मे श्रद्धालु श्रावक-श्राविका जन आने लगे । वैरागी एवं वैरागिनी बहिन की भव्य शोभायात्रा निकाली गयी । (दीक्षोत्सव के प्रमुख अतिथि थे श्री मूलचन्दजी कोठारी और अध्यक्ष थे अरविन्दकुमार चन्दुलाल शाह) । स्थानीय मोनिया इस्लामिया स्कूल के विशाल प्रागण मे लगभग १० हजार के विशाल जनसमूह की साक्षी मे अनेक वक्ताओ एवं पूज्य गुरुदेवो के प्रवचनोपरान्त पूज्य गुरुदेवश्री व प्रवर्तक हगामीलालजी म० के सान्निध्य मे दिनाक ८–११–७३ को प्रातः ९–२० के शुभ मुहूर्त मे दीक्षोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ । दीक्षार्थी वैरागी का नाम श्री दिनेशमुनिजी तथा दीक्षार्थिनी वैरागिनी बहन का नाम दिव्यप्रभाजी रक्खा गया । दीक्षोत्सव पर आचार्य सम्राट् आनन्द ऋषिजी म०, मरुधर केसरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमलजी म०, प्रवर्तक विनय ऋषिजी एव महासती उज्ज्वलकुमारीजी आदि अनेक महात्माओ के शुभ सन्देश प्राप्त हुए । सैकडो गाँवो-नगरो के श्रावक-श्राविकाएँ अपने स्थान पर पधारने की भावभीनी विनतियाँ गुरुदेवश्री से करने लगे ।

बम्बई, घोडनदी, पूना, सूरत, बेंगलोर, मद्रास, पालघर, उदयपुर, अहमदाबाद, जोधपुर, जयपुर, ब्यावर, सोजत, दिल्ली, आगरा, अलवर, मेडता आदि ऐसे उल्लेखनीय प्रमुख संघ थे । दिनाक ९–११–७३ को महास्थविर ताराचन्दजी म० की पुण्यतिथि मनाई गयी तथा श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय की जनरल मीटिंग भी हुई ।

आपश्री चातुर्मास पूर्ण कर लोढा धर्मशाला मे पधारे जहाँ दिनाक १४-११-७३ को बडी दीक्षा हुई । मदनगज (किशनगढ) का अत्यधिक आग्रह होने पर गुरुदेवश्री मदनगज पधारे । जाहिर व्याख्यान हुआ । पण्डित मिश्री मुनिजी, ईश्वर मुनिजी व रग मुनिजो से स्नेह-मिलन हुआ और उसके पश्चात् गुरुदेव पुन' अजमेर पधारे । दिनाक १९-१२-७३ बुधवार को मेरे द्वारा सम्पादित पुस्तक 'भगवान महावीर की सूक्तियाँ' का विमोचन समारोह अजमेर सघके आग्रह से निश्चत किया गया । पुस्तकका विमोचन समारोह सर सेठ भागचन्दजी सोनी के द्वारा सम्पन्न हुआ । समारोह की अध्यक्षता रामलालजी लूणिया ने की । इस अवसर पर महा-स्थविर हगामीलालजी म०, मुनिश्री मिश्रीलालजी, मेवाड सिंहिनी जशकुँवरजी, विदुषी पुष्पवतीजी आदि भी सम्मिलित हुए ।

अजमेर से गुरुदेवश्री व्यावर पधारे जहाँ लगभग डेढ माह तक श्री कन्हैयालालजी कमल के साथ सम्मिलित प्रवास रहा तथा महासती कैलासकुँवरजी ठा ४ विराजमान थी । व्यावर से भीम के लिए विहार किया गया । इस वर्ष के वर्षावास हेतु मद्रास, दिल्ली, बम्वई, इन्दौर, अहमदाबाद, मदनगंज आदि अनेक सघो का आग्रह था । चरितनायकजीने अपना चातुर्मास अहमदावाद शहर मे स्वीकृत किया । भीम से उग्र विहार कर भीलवाडा पधारे । तत्पश्चात् विदुषी महासती शीलकुँवरजी एव नानकुँवरजी को दर्शन देने हेतु चित्तौड पधारे । महावीर जयन्ती बडे उत्साह से मनाई गयी । वयोवृद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पद्मश्री मुनि जिनविजयजी आदि प्रवचन मे पधारे । चित्तौड से महासती श्री सौभाग्यकुँवरजी को दर्शन देने के हेतु तथा उदयपुर सघ के आग्रह से उदयपुर पधारे । मार्ग मे भोपालसागर मे प्रवर्तक श्री अम्बालालजी एव मधुरवक्ता श्री सौभाग्यमुनिजीका मिलाप हुआ । उदयपुरमे श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय मे दो दिन विराजे । तत्पश्चात् आकाशद्वीप मे ठहर कर महा-वीर मण्डल पधारे । कुछ दिन विराजे । व्याख्यान पञ्चायती नोहरे मे होते थे । हजारो की जनता ने लाभ लिया । उदयपुर से

विहार कर हिरणमगरी होते हुए केशरियाजी पधारे। सावलाजी, ईडर, हिम्मतनगर, प्रातीज होकर अहमदाबाद पधारे। दि. २७-६-७४को चातुर्मास प्रवेश हुआ। महासतीश्री उमरावकुँवरजी, श्री शुकुनकुँवरजी, श्री सत्यप्रभाजी ठा० ३ का भी चातुर्मास इस वर्ष अहमदाबाद ही है। दि. १५-९-'७४ को श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री लिखित 'भगवान महावीर: एक अनुशीलन' ग्रन्थका विमोचन देशके महान नेता श्री मोरारजीभाई देसाई के करकमलो द्वारा सम्पन्न हुआ। संघैक्य की दृष्टि से इस वर्ष द्वितीय भादवे मे पर्युषण मनाया गया।



हमारे चिन्तको के मतानुसार-ब्रह्मचर्यव्रत असि-धारवत् है और इस पर गुरुदेवश्री की यात्रा का क्रम अटूट साफल्य के साथ निरन्तरित है। 'तवेसुवा उत्तम बम्भचेरं' की घोपणा करते हुए भगवान महावीर प्रभु ने जिस ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठतम तप के रूप मे स्वीकृति प्रदान की है, आपश्री ने उसे जीवन मे सर्वोपरि महत्ता का रूप दिया है। गुरुदेवश्री की इस विशिष्टता के कारण यह उक्ति चरितार्थ हो उठी है कि चारो वेदो की अपेक्षा भी ब्रह्मचर्य का पलडा भारी होता है। 'मनसा-वाचा-कर्मणा' से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करनेवाला साधक अतीव लोकप्रियता अर्जित कर लेता है–यह सिद्धान्त आपश्री पर सर्वथा खरा उतरता है। वस्तुतः पूज्य गुरुदेवश्री ने सर्वज्ञ प्रभुवीर की अन्तिम देशना (उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय १६, गाथा-१६)—

देव दाणव गन्धव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा।
बंभयारी नमंसंति दुक्खरं जे करति तं ॥*

को सार्थक कर दिया है। गुरुदेवश्री को अपरा बुद्धि वैभव, हृदय-परिवर्तनकारी शक्ति एवं सन्मार्ग की प्रेरणा देनेवाली विशेषता ब्रह्मचर्याधारित साधना का ही सुपरिणाम है। आपश्री का जीवन ऐसे अनेक चमत्कारपूर्ण प्रसगो से सकुल है जिनसे आपश्री की साधना-शक्ति का स्पष्ट परिचय मिलता है और जिससे आपश्री के चरणो मे भक्तो का हृदय सहज ही समर्पित हो जाता है। ये प्रसंग आपश्री की गरिमा की असाधारण प्रखरता के समर्थ कारण बन जाते है। अपनी साधना के बल पर जो प्रभाव आपश्री ने प्राप्त किया है, उसी के आधार पर आपने अति दुष्कर कार्य सम्पन्न कर दिखाये है और इसी कारण यदि आपश्री का चमत्कार कहा जाय

* साधक दुष्कर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते है। उनके चरणो में देव, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी शक्तियाँ नमित होती है।

तो कदाचित् अतिशयोक्ति नही होगी । आपके सदुपदेश से अनेक व्यक्तियो के जीवन मे उत्कर्ष आया है, कइयो का हृदय-परिवर्तन हुआ है, अनेक कुमार्गाभ्यासी सुमार्गी हो गये है और कइयो की सुषुप्त आत्मा जाग उठी है । यहाँ कतिपय प्रसंग प्रस्तुत है ।



अगाध सहिष्णुता की मूर्ति

चर्चा उस काल की है जब पूज्य गुरुदेवश्री रायपुर मे वर्षावास समाप्त कर नागोर की ओर पधार रहे थे । इस मार्ग मे मुण्डवा नामक ग्राम आता है जो एक अजैन बस्ती है । इस लम्बी यात्रा मे इस ग्राम मे ऐसी स्थिति मे भी प्रायः रात्रि-विश्राम किया जाता है । गुरुदेवश्री ने भी मुण्डवा मे विराम किया । अजैन वातावरण बड़ा असामान्य-सा लगे यह स्वाभाविक ही था, तथापि आपश्री भिक्षाटन पर निकले । एक विशाल हवेली देखकर आपश्री उसके द्वार पर पहुँच गये । हवेली के स्वामी ने ज्यो ही आपश्री को उपस्थित पाया, उसका क्रोध भडक उठा, जैन विरोधी संस्कार उत्तेजित हो उठे । अपशब्दो की बौछार करता हुआ वह चीख उठा—क्यो आये मेरे द्वार पर? किसने पीले चावल भेजकर तुम्हे न्योता दिया है?

गुरुदेवश्री पर कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया नही हुई । शान्ति के अगाध समुद्र आपश्री को रंच मात्र भी रोष नही आया । गुरुगंभीर वाणी मे वड़ी स्निग्धता के साथ आपश्री ने कहा, 'सेठ, हम तो जैन भिक्षु है । द्वार पर खड़े होकर हम पुकार नही लगाया करते ।' वहाँ से प्रस्थान करते हुए आपश्री ने अन्त मे कहा, 'अच्छा, हम चलते है ।'

मात्र इतनी सी वार्ता का सेठ पर अद्भुत प्रभाव हुआ । मिथ्या गर्व का तव भी बाह्य निर्वाह करता हुआ वह वोला, 'अच्छा ठहरो, रोटी ला देता हूँ ।'

गुरुदेवश्री ने कहा कि यदि गर्म पानी हो तो वह भी चाहिये ।

सेठ की पाशव वृत्ति पुन जागृत हो गयी । अस्थायी परिवर्तन की झलक उतर गयी । अपने वास्तविक रूप को व्यक्त करते हुए क्रोध के साथ वह वोल पड़ा, 'तुम्हारी माँ ने रखा है यहाँ गर्म पानी!'

पूर्व की अपेक्षा कही अधिक गहन शान्ति के साथ गुरुदेवश्रीने उत्तर दिया, 'इस जन्म की तो नही, किन्तु किसी जन्म की माँ हो ही सकती है।' इस उत्तर का सेठ पर अत्यधिक प्रभाव हुआ। वह पाषाण-हृदय भी सोचने पर विवश हो गया। गुरुदेवश्री की सहिष्णुता और सदाशयता की उस पर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। उसकी अन्तश्चेतना जागृत हो गयी। वह गुरुदेवश्री के चरणाश्रय मे आ गया और स्वयं को कृतकृत्य अनुभव करने लगा। स्वयं साथ चलकर उसीने आहार-पानी आदिकी सारी व्यवस्था की और उस अजैन बस्ती मे गुरुदेवश्री का जाहिर व्याख्यान व्यवस्थित करवाया। ऐसी गंभीर और अविचलित शान्ति के स्वामी है पूज्य गुरुदेवश्री, जिसका प्रभाव दुर्जनो को सज्जनो में परिवर्तन करने की अपार क्षमता रखता है।



सत्यनिष्ठ निर्भीकता

'राजस्थान केसरी' पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी सस्कृत पद्य रचना 'अमर सूरि काव्य' के यशस्वी कर्त्ता हैं। आचार्यश्री अमरसिहजी महाराज साहव का जीवन इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। मारवाड मे किस प्रकार आचार्यश्री ने जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया इस विषय को भी इस काव्य मे प्रर्याप्त महत्ता प्राप्त हुई है। किस प्रकार आचार्यश्री ने तत्कालीन यतियो का आह्वान कर, शास्त्रार्थ मे उन्हे पराजित कर जैन धर्म की पताका फहरायी इसके प्रभावपूर्ण चित्रण इसमे उभरे है। इन भव्य उपलब्धियो के कारण सर्वत्र इस उक्ति का प्रचलन हो रहा था --

यति धर्म जाता रहा, पडा रह गया पाट ।
उपाश्रय ऊभा हुआ, थानक लागे ठाट ॥

इस लोकप्रियता और उत्तरोत्तर उत्कर्प के कारण भिन्न मताश्रितो के मन मे ईर्ष्या का जागरण भी अस्वाभाविक नही था। एक उदाहरण प्रस्तुत है

'अमरसूरि' काव्य का एक स्थल विशेष द्वन्द्व का कारण वन गया। स्थल निम्नानुसार है·

"अमरसिहजी महाराज सा० शास्त्रार्थ के मैदान में आये। यतियो ने पूज्य श्री के मन्तव्यो का खण्डन करने की जी-तोड़ कोशिश की, किन्तु उन्होने उनकी सारी कुयुक्तियों को शास्त्र के अकाट्य प्रमाणो से खण्डित कर दिया। मुख-वस्त्रिका मुख पर बाँधनी चाहिये—यह सिद्ध करने के लिए आचार्य प्रवरने कहा—आगम साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर सहज ही ज्ञात होता है कि अनेक स्थलो पर मुखवस्त्रिका का उल्लेख आया है।

व्याख्या प्रज्ञप्ति के सोलहवे शतक और द्वितीय उद्देशक मे आया है कि खुले मुँह से बोली गई भाषा सावद्य होती है।

महानिशीथ मे वर्णन है कि कान मे डाली गई मुँहपत्ती के बिना, या सर्वथा मुँहपत्ती के बिना इरिया वही क्रिया करने पर साधु को मिच्छामि दुक्कड़ं का या डेढ पौरसी का दण्ड आता है ।

ज्ञातृधर्म कथा के चौदहवे अध्ययन में लिखा है कि जब तेतली प्रधान को उसकी स्त्री अप्रिय हो गई तो वह दानादि देकर समय व्यतीत करने लगी । उस समय तेतलीपुर मे आया हुआ सुव्रताजी का सघाडा नगर मे परिभ्रमण करता हुआ तेतली प्रधान के घर पर आया, तब तेतली प्रधान की अप्रिय पत्नी पोट्टिला ने उन साध्वीजी को अशनादि बहराया और प्रश्न किया सतीप्रवर ! आप अनेको नगरो में विचरण करती है, कही पर ऐसी जड़ी-बूटी या मत्रादि उपाय देखा हो तो बताइए जिससे मेरा पति मेरे वश मे हो जाये । ऐसा सुनते ही साध्वियो ने अपनी दोनो अँगुलियाँ कान मे लगाकर कहा—देवानुप्रिया ! ऐसे शब्द सुनना भी हमे नही कल्पता, फिर ऐसा मार्ग बताने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

इससे यह स्वतः सिद्ध है कि उस समय साध्वीजी के मुँह पर मुखवस्त्रिका भी अवश्य होगी । दोनो हाथ उनके कानो पर लगे हुए थे, वे खुले मुँह तो बोल ही नही सकती थी ।

निरियावलिका मे वर्णन है कि जैन धर्म से निकले हुए सोमिल ब्राह्मण ने काष्ठ की मुँहपत्ती मुँह पर बाँधी, पर संन्यास धर्म मे कही पर भी काष्ठ-पट्टी बोधने का विधान नही है, इससे भी यह सिद्ध है कि उस समय जैन धर्म मे मुँहपत्ती मुँह पर बाँधी जाती थी जिसको नकल सोमिल ने काष्ठ पट्टी बाँध कर की ।

भगवती में जमाली के दीक्षाधिकार के प्रसंग मे. **सुद्धाएं अट्ठपडलाए पोत्तिए मूँह बंधइ** गृहस्थ नाई से सम्बन्धित प्रस्तुत

---

१. भगवती वध । २

२ कन्नेट्ठियाए वा मुहणतगेण वा विणा
इरियं पडिक्कये मिच्छुक्कड पुरियड्ढ
महानिशीथ अ ७

पाठ से भी यही सिद्ध होता है कि उस समय आठ पडतवाली मुखवस्त्रिका मुख पर वाँधी जाती थी। इससे यह स्पष्ट है कि व्यावहारिक कार्य मे भी जब आठ पडत की मुँहपत्ती चाहिए तो वायुकायिक जीवो की विराधना से बचने के लिए इसकी कितनी अनिवार्य आवश्यकता है।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता मे जैन मुनि का लक्षण बताते हुए भी कहा है:

हस्ते पात्र दधानाश्च, तुडे वस्त्रस्य धारका ।
मलिनान्येव वासासि भारयन्त्यल्पभाषिण. ॥

हाथ मे काष्ठ पात्रवाले, मुँह पर धारण की हुई मुखवस्त्रिका-वाले, मलीन वस्त्रवाले और अल्पभाषीको ही जैन मुनि कहा है।

श्री मालपुराण अध्याय ७–३३ मे भी मुँह पर मुँहपत्ती धारण करनेवाले को ही जैन मुनि कहा है।

श्री देवसूरि ने भी लिखा है 'मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे वद्ध्वा प्रति लेखति रजो हरणम्' इसमे भी मुखवस्त्रिका को मुँह पर वाँध कर रजोहरण के प्रतिलेखन का विधान है।

जिन कल्पिक मुनि के लिए भी कम से कम मुखवस्त्रिका और रजोहरण ये दो उपकरण रखनेका विधान है, फिर स्थविर कल्पिक के लिए तो है ही।

ग्रन्थ का उपर्युक्त अंश श्री जिन जयसागर सूरिजी को अखरा और उन्होने सन्देश भेजा कि या तो इस अंश को सुधारा जाय या इसे ग्रथ से निकाल दिया जाय। यह धमकी भी दी गयी कि ऐसा न किया गया तो शास्त्रार्थ के लिए तैयार होना पड़ेगा।

सत्य के सवल समर्थक पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त निर्भीकता का परिचय इस परिस्थिति मे दिया और उत्तर मे सदेश भिजवाया कि ग्रंथ मे वर्णित प्रस्तुत अंश प्रमाण–पुष्ट है और उसमे संशोधन असंभव है। उसके ग्रंथ से हटाये जाने का तो प्रश्न ही नही

उठता । चर्चित अंश मे कोई अनर्गलता नही है, तथापि सूरिजी जब भी चाहे अपनी जिह्वा की खुजली मिटा सकते है ।

इस सशक्त और स्पष्ट उत्तर का सूरिजी पर गहरा प्रभाव पड़ा । उन्होंने सर्वथा मौन धारण कर लिया । तदनन्तर अनेक अवसरो पर उनकी भेट पूज्य गुरुदेवश्री से हुई भी, किन्तु प्रस्तुत अंश तो क्या, इस काव्य के सबंध मे भी कभी कोई चर्चा नहीं हुई ।



अहिंसा-आधारित आत्मबल

पूज्य गुरुदेवश्री के आत्मवल और स्वधर्म-संरक्षण की क्षमता को उजागर करनेवाला एक प्रसंग उल्लेख्य है। वह समय विक्रमी संवत् २००६ का था। गुरुदेवश्री वम्वई से विहार कर पालघर पधार रहे थे। अधीर और व्याकुल काठियावाड-संघ ने अत्यन्त आग्रह के साथ आपश्री से अपने यहाँ विहारार्थ अनुरोध किया और वह परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी कि उसकी गंभीरता ने आपश्री को स्वीकृति प्रदान करने हेतु सोचने पर विवश कर दिया। तेरहपंथी सम्प्रदाय की मुनिमण्डली उन दिनो इस क्षेत्र मे स्वसम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार मे व्यस्त थी और भय था कि निरीह जैन सामाजिक दया-धर्म विरोधी सिद्धान्तो से प्रभावित न हो जायँ। यही कारण था कि इस क्षेत्र मे गुरुदेवश्री के प्रभाव की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और संघहित के दृष्टिकोण के साथ आपश्री ने इस संकट के निवारणार्थ सचेष्ट होने का संकल्प लिया। सूरत मे आपश्री ने सघ के काठियावाड़-विहार सम्वन्धी आग्रह को स्वीकार कर लिया।

गुरुदेवश्री के नेतृत्व मे मुनिमण्डली ने जव इस क्षेत्र मे प्रवेश किया तो तेरहपंथी प्रचारको मे तहलका मच गया। दया-धर्म विरोधी सिद्धान्तो के अधकार मे भटकती धर्मानुरागिनी जनता को मानो आलोक-पुज ही प्राप्त हो गया था। सर्वत्र आश्वस्तता का वातावरण छा गया और हर्ष की लहर दौड पडी थी। विशाल जनसमुदाय आगवानी हेतु लीवडी नगर के बाहर उपस्थित था। व्यापक उल्लास का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वहाँ पहले से विराजमान मुनिगण भी समुचित स्वागतार्थ स्वयं अगवानीकर्ताओ मे सम्मिलित हुए।

तेरहपन्थी प्रचारर्थी साधुजन इस समय लीवडी मे थे। गुरुदेवश्री लीवड़ी पधारे और इस समस्या पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ। गुरुदेवश्री का दृढ मत था कि यद्यपि जैनधर्म का प्रचार सदा अभिनन्दनीय ही माना जाना चाहिये, चाहे वह किसी

भी वर्ग अथवा सम्प्रदाय के माध्यम से क्यो न सम्पन्न हो रहा हो, किन्तु धर्म के नाम पर भ्रामक प्रचार का पूर्ण शक्ति के साथ प्रतिकार होना चाहिये। सुस्थापित और श्रेष्ठ धार्मिक सिद्धान्तो के प्रति आस्था को दुर्बल बनाकर अधर्म का प्रचार चाहे जैनधर्म के नाम पर ही क्यो न हो रहा हो—वह नीतिविरुद्ध होने के कारण असहनीय है। ऐसे कुमार्गप्रेरी अभियान का विरोध प्रत्येक धर्मानुरागी का प्रथम कर्तव्य होना चाहिये। सारी समस्या का गहन अध्ययन किया गया और निष्कर्षतः अनुभव किया गया कि तेरहपंथी सम्प्रदाय की अनेक मान्यताएँ जैनागमो द्वारा समर्थित नही है। यही नही, कुछ तो ऐसी भी है जो लौकिक दृष्टि से भी किसी प्रकार का औचित्य नही रखती। इस प्रकार के प्रचार से जैनधर्म के लिए कलंक के अतिरिक्त और किसी उपलब्धि की आशा ही कैसे की जा सकती है?

यहाँ संक्षेप मे ऐसी कतिपय मान्यताओ की चर्चा अप्रासंगिक नही होगी

—भगवान महावीर के उपासक होकर भी वे भगवान को 'चूका' बताते है।

—शास्त्र-विधान है–'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं' अर्थात् अभय-दान सर्वोत्तम दान है, परन्तु तेरहपंथी मरते हुए प्राणी की जीवन-रक्षा को पापकर्म मानते है। उनके अनुसार प्राण हरता तो एक ही पाप का भागी होता है, किन्तु रक्षक को १८ पापों का वहन करना पडता है।

—इसी प्रकार भूख के कारण मरणासन्न प्राणी के आहार आदि को व्यवस्था कर उसकी रक्षा करनेवाला एकान्त पाप का भागी होता है।

—तेरहपन्थी के अतिरिक्त किसी अन्य गृहस्थ अथवा त्यागी को दान देना भी एकान्त पाप माना गया है।

गुरुदेवश्री ने इन मान्यताओ, अधर्मपूर्ण एवं अनुचित सिद्धान्तों के प्रचार-अभियान को ध्वस्त करने का निश्चय किया। ऐसी

मान्यताओ के औचित्य को सिद्ध करने के लिए तेरहपन्थी प्रचारक मुनिजनो को चुनौती देते हुए आपश्री ने लिखित शास्त्रार्थ हेतु निमंत्रण दिया । लीबडी संघ के अध्यक्षजी ने शास्त्रार्थ-पत्र प्रचारित किया जिसमे महास्थविर श्री ताराचन्दजी म०, पूज्य गुरुदेव श्री राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी म०, कविवर्य नानचन्दजी म०, सदानन्दी छोटेलालजी का तथा शतावधानी श्री पूनमचन्दजी म० का नामोल्लेख भी किया गया था । कुछ ऐसा प्रभाव इस पत्र का हुआ कि सूर्योदय होते ही तेरहपंथी साधु श्री नेमीचन्दजी और श्री धनराजजी लीबडी त्याग कर चल दिये । धर्मप्रेमी जनता को गुरुदेवश्री शास्त्रार्थ के माध्यम से जो तथ्य हृदयंगम कराना चाहते थे, वह इस घटना के कारण सहज ही मे संभव हो गया । गुरुदेवश्री का यह शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक साधन कितना प्रभावकारी रहा ? इसके पीछे आपश्री की आत्मिक शक्ति ही सक्रिय रही । इस प्रकार यह अवांछित प्रचार स्थगित तो हो गया, किन्तु यत्किंचित् प्रभाव, जो इसके पूर्व ही हो चुका था, उसके निराकरण के लिए भी गुरुदेवश्री तत्परतापूर्वक सचेष्ट रहे । चूडा के कुछ परिवार इस प्रचार से प्रभावित हो चुके थे । अत कवि नानचन्दजी म० व सदानन्दी छोटेलालजी म० के आग्रह पर आपश्री ने चूडा का चातुर्मास स्वीकार कर लिया । काठियावाड संघ ने भी बडा निर्भीक कदम उठाया और निर्णय लिया कि जो स्थानकवासी तेरहपथी मत को स्वीकार करेगा उसका सामाजिक वहिष्कार कर दिया जायगा और उसके साथ 'रोटी-बेटी व्यवहार' स्थगित कर दिया जायगा । परिणामत अनेक परिवार पुन: स्थानकवासी बन गये । सारा समाज जागरूक हो गया और स्थानकवासी श्रावको द्वारा 'सौराष्ट्र धर्म रक्षक समिति' का गठन हुआ । गुरुदेवश्री का चूडा-चातुर्मास का प्रयोजन शतप्रतिशत रूप मे सफल रहा । इस समस्त प्रत्याख्यानक कार्यक्रम की महती विशेषता यह रही कि आपश्री की मृदुता एवं सन्तजनोचित गंभीरता, शान्तिप्रियता एव विशाल हृदयता के कारण किसी भी प्रकार की कटुता का समावेश नही हो पाया । सैद्धान्तिक मतवैभिन्न्य तो रहा, किन्तु वैयक्तिक

विरोध रंच मात्र भी स्थान नही पा सका । इसी का हृदयपरिवर्तन-कारी प्रभाव इस रूप मे उदित हुआ कि चूडा मे तेरापंथी मुनि श्री केसरीमलजी तथा बादरमलजी पूज्य गुरुदेवश्री के पास 'क्षमापणा' हेतु पहुँचे थे ।

कैसी विडम्बना है! सौराष्ट्र वह पावन भूमि है जिस पर मूक और निरीह पशुपक्षियो की बलि के नाम पर होनेवाली हत्या को रोकने के लिए भगवान अरिष्ट नेमि ने ससार-त्याग किया था और वही अन्य नेमि (साधु नेमीचन्दजी) ने दयाधर्म विरोधी प्रचार प्रारंभ किया था । सर्व सुखद प्रसंग तो यह है कि पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी म० ने इस प्रचार को परास्त कर पुनः दयाधर्म का रक्षण कर लिया ।



हृदयपरिवर्तन की अमोघ क्षमता

पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन की एक अविस्मरणीय घटना प्रस्तुत है जो इस तथ्य की द्योतक है कि अत्यन्त गभीर परिस्थितियो पर नियंत्रण की अद्भुत और अचूक शक्तिके आपश्री स्वामी है और मलिन वाताबरण को प्रभाव-शून्य करने की अमोघ क्षमता आपश्री में अति प्रारभ से विद्यमान थी । पूज्य गुरुदेव न्याय-प्रथमा की परीक्षा मे सम्मिलित होकर पेटलाद से लौट रहे थे कि बम्बई संघ के आग्रह पर आपश्री ने बम्बई-विहार की स्वीकृति प्रदान कर दी । मार्ग मे भड़ौच के निकट एक वस्ती मे रात्रि-विश्राम की व्यवस्था थी । यह बस्ती मुसलमान वन्धुओ की थी । स्थानीय निवासी इन मुसलिम बन्धुओं ने आपश्री को छकाने की एक घृण्य योजना वनाई ।

इस वस्ती मे एक भव्य भवन था, जिसके सम्बन्ध मे यह प्रचलित था कि उसमे उपद्रवकारी यक्षो (जिन्दो) का निवास है और इसी कारण कोई भी परिचित व्यक्ति इस भवन मे वास नही करता था । मलिन उद्देश्य के साथ गुरुदेवश्री के विश्राम की व्यवस्था इसी भवन मे कर दी गयी । आपश्री के साथ आपके शिक्षक एक पडितजी भी थे । रात्रि मे सो जाने के पश्चात् कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा कि अचानक ही पडितजी निद्रा मे चिल्ला पड़े और चीख-चीख कर रोने लगे । गुरुदेवश्री ने अनुमान लगाया कि कदाचित् सोते समय पडितजी का हाथ वक्षस्थल पर रह गया हो और परिणामस्वरूप भयानक स्वप्न देखकर वे भयभीत हो गये हो । जैसे-तैसे आपश्री ने पंडितजी को आश्वस्त करके पुनः सुला दिया । कुछ ही समय व्यतीत हुआ कि पडितजी पहले की अपेक्षा और जोर से चिल्ला पड़े । इस वार गुरुदेवश्री तुरन्त सारी स्थिति स्पष्टता के साथ समझ गये । पण्डितजी से ही भूल हो गयी थी । उन्होने इस भवन मे अनजाने मे ही किसी यक्ष-स्थल (कब्र) पर मूत्रत्याग कर दिया था । गुरुदेवश्री ने तुरन्त आत्मविश्वास के साथ निदान सोचकर कुछ गणनादि कर पडितजी को कष्ट-मुक्त कर दिया ।

बस्ती के मुसलमान भाई, जो इस कुचक्र मे रुचिशील थे, प्रातः होने पर सोच रहे थे कि जैन भिक्षु रात्रि मे बस समाप्त ही हो गये होगे और इधर आपश्री 'प्रतिलेखनादि' से निवृत्त होकर विहारार्थ तत्पर हो रहे थे। बस्ती के निवासी आश्चर्य-चकित तो हुए ही, आपश्री के चमत्कार से हतप्रभ भी हो गये। मत्रमुग्ध से वे गुरुदेव से क्षमायाचना करने लगे। अपार क्षमा-शील गुरुदेवश्री ने अत्यन्त सहजतापूर्वक उन्हे बोध दिया और उन्हे विश्वास करा दिया कि ये बाधाएँ आपश्री को तो प्रभावित नही कर सकी, किन्तु साधारण पथिको के साथ यदि ऐसा छल किया जाय तो वे निरीह, दुर्बल प्राणी भयंकर आपत्ति से ग्रस्त हो जायँ। गुरुदेवश्री के इस प्रबोधन एवं मृदुल वचनावली का उन पर अतिशय प्रभाव हुआ और उन्होने अपनी इस दुष्टता को त्यागने का 'नियम' लिया और सकल्प किया कि भविष्य मे वे किसी के साथ इस प्रकार का व्यवहार नही करेगे। दुष्कर्मियो को सन्मार्ग पर अग्रसर करने की सफल प्रवृत्ति आपश्री की उन महती विशेषताओ मे से है जिनके कारण आपका व्यक्तित्व गरिमा—विभूषित है, प्रभविष्णु है।



पतित-उद्धारक शक्ति के स्वामी

एक और ज्वलत घटना आपश्री के पावन जीवन से सम्बन्धित है, जो आपकी पतित-उद्धारक शक्ति की प्रचण्डता का प्रकाशित प्रमाण है । रायपुर के वर्षावास के समापन पर आपश्री बिलाडा की ओर पधार रहे थे । मार्ग मे वन था । सघन वानस्पातिक वैभव, कल-कल छल-छल करती निर्झरणियो का मद प्रवाह, कुसुमित धरा और सुरभित पवन—सर्वत्र प्राकृतिक शोभा का सरस साम्राज्य था । तृषा दूर करनेको समूह के समूह पशु-पक्षी झरनो पर एकत्रित होते थे और इस कोमल परिस्थिति का अनुचित लाभ उठानेके कुत्सित विचार के साथ शिकारी लोग आसपास छिपे रहते थे । प्रकृति की इस शोभाशाली, सुखद क्रोड मे गुरुदेवश्री विश्राम करने ही लगे थे कि गोली-चालन का कर्कश स्वर गूंज उठा । आपश्रीका हृदय करुणार्द्र हो उठा । कुछ क्षणो मे ही शिकारियो से आपश्री की भेट भी हो गई । अत्यन्त गंभीर वाणी मे आपश्रीने शिकारियो को ज्ञान-दान किया । उन्हे अपनी भावभीनी वाणी से यह अनुभव करा दिया कि उनमे और इन पशुपक्षियो मे कोई अन्तर नही है । दोनो में एकस्तरीय आत्मा का निवास है । उनकी ही भाँति इन पशु—पक्षियो को भी अपने प्राण प्यारे है । निरीह प्राणियो को त्रस्त करना किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नही कहा जा सकता । इन्हे सताना भयंकर पाप है । गुरुदेवके इन शब्दो

गरीब को मत सताओ, गरीब रो देगा,
गरीब का मालिक सुनेगा, तो जड-मूल से खो देगा ।

का उन शिकारियो पर अतिशय प्रभाव हुआ । उन्हे अपने इस कर्म में घोर अनौचित्य अनुभव होने लगा और आत्मग्लानि से उनके मस्तक झुक गये । उन्होने बन्दूके फेक दी और भविष्य मे कभी हिंसा न करने की प्रतिज्ञा की ।



"जब शेर मिला था"

घटना है सन् १९४८ की। पूज्य गुरुदेव घाटकोपर बम्बई का शानदार वर्षावास पूर्ण कर नासिक सघ के अत्याग्रह पर नासिक पधारे और वहाँ से सूरत की ओर विहार किया। सतपुडा की विकट पहाडियो के कंटकाकीर्ण मार्ग को पार कर आप वासदा पधारे। वासदा से नवसारी की ओर प्रस्थान किया। अपराह्न का समय था। पगडण्डियो के मार्ग से विहार यात्रा चल रही थी। सामने से आगन्तुक व्यक्ति से लक्ष्य स्थल के सम्बन्ध मे पूछा तो उसने कहा यहाँ से लगभग वह स्थल दो गाऊ है। चरितनायकजी ने सोचा ४ मील तो अभी अभी पहुँच जायँगे। पर ४ मील जाने पर पुन. अन्य व्यक्ति से जिज्ञासा की गयी तो उसने भी चार मील बताया। कदम तेजी से बढाए गए लक्ष्य स्थल पर पहुँचने के लिए। पर ४ मील और पहुँचने पर भी पूछा गया कि अब वह स्थान कितना दूर है तो वही पुराना उत्तर मिला ४ मील। इस प्रकार द्रौपदी के चीर की भाँति मार्ग लम्बा होता गया। १२ मील चलने पर भी जब रुकने का स्थान नही आया, तब चरितनायकजी ने कहा अब सूर्य अस्ताचल की ओर अपने कदम तेजी से बढा रहा है, अत· अब हमे आगे नही बढना है। किसी वृक्ष के नीचे ही आज रात्रि विश्राम लेना होगा। चारो ओर हराभरा वन था, पहाड़ियाँ थी और पास मे ही थी तापी नदी, जिसकी कल कल की मधुर ध्वनि आ रही थी।

गुरुदेवश्री ने आम के वृक्ष के नीचे साथवाले भाई की आज्ञा लेकर आसन जमा दिया। उस समय साथ मे थे गुरुदेवश्रीके प्रधान अन्तेवासी विद्वान शिष्य श्री देवेन्द्रमुनिजी। सन्ध्या की सुहावनी लालिमा अन्धकार मे परिणत हो रही थी। तभी दनादन पत्थर आने लगे। पर कोई भी पत्थर गुरुदेवश्री को एवं देवेन्द्रमुनिजी को नही लगा। ज्यो ज्यो अंधकार बढा त्यो त्यो पत्थर आने बन्द हो गए। चरितनायकजी ने देवेन्द्रमुनिजी से कहा कि

आज का यह एकान्त स्थान जप साधना के लिए विशेष उपयुक्त है। चरितनायकजी ध्यान-साधना में बैठ गए। रात्रि के करीब नौ बजे होगे। पुलिस को लेकर थानेदार वहाँ आया, जहाँ चरितनायकजी ध्यान मे विराजे हुए थे। आते ही उन्होंने कहा — यहाँ पर क्यो बैठे हो? चलो पास के गाँव के पुलिस थाने मे। चरितनायकजी ध्यान से निवृत्त होकर बोले—हम जैन श्रमण है। रात्रि मे परिभ्रमण नही करते। पर वह तो अधिकार के नशे मे मत्त था। उसने अधिकार की भाषा मे कहा। पर गुरुदेव शान्तवाणी मे बोले—चाहे आप कितनी भी धमकी दीजिए, मेरे पर कोई असर होनेवाला नही है। हमारी मर्यादा है कि हम रात्रि को नही चलते। थानेदार ने कहा – अच्छा, आपका परिचय क्या है? चरितनायकजी ने कहा, साधुओ का क्या परिचय? वे तो घुमक्कड होते है। हिमालय से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक निर्भय होकर घूमना उनका कार्य है। तथापि आप जानना चाहते है तो वासदा के नगरसेठ इन्द्रमलजीके हम गुरु है। नगरसेठका नाम सुनते ही थानेदार ने चरण-स्पर्श किए और बोला, मैंने महान अपराध किया, मैंने आपको नही पहचाना। आज प्रात ही नगरसेठ का फोन था कि मेरे गुरु आ रहे है, उनका ध्यान रखना। किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। हमने आपके लिए हमारे स्थान पर स्पेशल व्यवस्था कर रखी है। गरम पानी भी तैयार है। पर आप श्री भयकर जंगल मे ही विराज गए। पास की टेकरियो के निवासियोने आपको भगाने के लिए पत्थर फेके थे, पर जब आप यहाँसे रवाना नही हुए तब वे भयभीत होकर हमारे पास दौड़ के आये और कहा दो मुँह बन्दे आए है, जो रात को हमारी पत्नियो को या बच्चियो को ले जायँगे। इसी दृष्टि से हम आपको पकड़ने के लिए आये थे। पर आपके दर्शन कर हमारी शकाएँ निर्मूल हो गयी है। पर यह स्थान भयावह है। रात्रि को पानी पीने हेतु तापी नदी पर शेर आदि जानवर आते है, अत. पास मे ही एक गाँव है वहाँ पधार जाएँ। गुरुदेव ने अपना दृढ निश्चय दोहराते हुए कहा—कोई भी जानवर क्यो न आए, पर

रात्रि को हम यहाँ से अन्यत्र नही जायेगे। चरितनायकजी का दृढ़ निश्चय देखकर थानेदार ने कहा, हम यहाँ पर सो नही सकते, पर कुछ आदिवासियो को मैं यहाँ रख कर जाता हूँ। चरितनायकजी ने कहा–किसी को सोने की आवश्यकता नही है। वे लोग नमस्कार करके चल दिए। लगभग रात्रि का एक बजा होगा कि एक नव हत्था केसरी दहाडता हुआ गुरुदेवश्री के पास होकर निकला। एक दृष्टि से देखकर पानी पीने के लिए आगे चल पडा। पानी पीकर पुनः आया और दहाडता हुआ आगे बढ गया। किन्तु चरितनायकजी को किसी भी प्रकार का कष्ट नही पहुँचा। उस रात्रि मे अनेक जानवर भी निकले, पर किसी भी प्रकार का उपद्रव नही हुआ। प्रसंगवश हमे महापुरुष की यह सूक्ति याद आ जाती हैं—

अहिंसा प्रतिष्ठाया तन्सन्निधौ वैरत्याग।

'आध्यात्मिक चमत्कार'

भारतीय साधना पद्धत्ति मे जप का गहरा महत्त्व रहा है। जपकी अद्भुत शक्ति है। यही कारण है कि गीता मे अर्जुन को कृष्ण ने कहा कि अर्जुन! यज्ञो मे जप यज्ञ है, 'यज्ञाना जप यज्ञोस्मि।' जप मे दो अक्षर हैं। ज—जन्म का विच्छेद करनेवाला है, प—पाप का नाश करनेवाला है। अत जप से संसार का उच्छेद होता है। ध्यान से मनकी शुद्धि होती है, जप से वचन की और आसन से काया की शुद्धि होती है। सिद्धि के लिए जप की नितान्त आवश्यकता है। एतदर्थ ही भारत के एक मनीषि चिन्तक ने कहा–'जपात् सिद्धि, जपात् सिद्धि, जपात् सिद्धिर्न संशय।' जप की अत्यन्त शक्ति है। जो कार्य अन्य शक्ति से संभव नही वे कार्य जप से सहज सम्भव हैं। पूज्य गुरुदेव को जप अत्यन्त प्रिय है। जप का समय होने पर भोजन, व्याख्यान और अन्य आवश्यक कार्य छोड सकते है। किन्तु नियमित समय पर जप करना नही छोडते। यह जप की साधना, ध्यान की आराधना चरितनायकजी को अपने गुरुदेव महास्थविर ताराचन्दजी म० के शुभाशीर्वाद से प्राप्त हुई है। और उनको उनके ज्येष्ठ गुरु भ्राता ज्येष्ठमलजी महाराज से प्राप्त हुई थी। अतः यह जप और ध्यान की साधना

गुरु परम्परा से प्राप्त हुई है। जप की सिद्धि के लिए गुरुजनों की कृपा अत्यन्त आवश्यक है। यदि उनके द्वारा प्राप्त विधि से जप किया जाय तो उसमे अद्‌भुत शक्ति पैदा होती है। गुरुदेव प्रातः, मध्याह्न और रात्रि मे जप साधना घण्टो तक नियमित समय पर करते रहते है। आपकी साधना मे लौकिक कोई कामना नही, भावना नही, परंतु जप का अलौकिक प्रभाव मैंने स्वयने अपनी नजरो से अनेक वार देखा है। प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि जो लोग रोते-बिलखते आए, वे गुरुदेव का मागलिक सुनकर हँसते और मुस्कराते हुए विदा हुए। सैंकड़ो व्यक्ति- ऐसी उपाधियो से ग्रसित थे जिनका डाक्टर और वैद्य उपचार नही कर सकते थे उन्हे भी गुरुदेव की वाणी से स्वस्थ होते हुए देखा। मैं उन हजारो घटनाओ का चित्रण न कर एकाध प्रसंग पाठकों की जानकारी के लिए दे रहा हूँ। प्रसंग है सन् १९६९ का, जिस समय चरितनायकजी नासिक शहर विराज रहे थे। एक वहिन रोती हुई आई। महाराज गजव हो गया! एक ९ वर्ष के बच्चे की आँखो की रोशनी चली गई। नेत्र विशेषज्ञ भी हाथ धो वैठे। अब उसका क्या होगा ? कहते हुए बहिन का गला भर आया। आँखो से आँसू टपक पडे। गुरुदेव का दयालु हृदय द्रवित हो उठा। चरितनायकजी उसके घर पधारे। मागलिक सुनाने के वाद पूछा, बावू! तुम्हे कुछ दिखाई देता है? बाबू ने कहा, गुरुदेव कुछ धुँधलासा दिखाई देता है। ३ दिन तक उसने माग-लिक सुना। उसकी नेत्रज्योति पुन आ गई। बहिन नेत्रविशेषज्ञ के पास गई। चिकित्सक हैरान था। वह गुरुदेव के समीप आकर वोला, महाराजजी, आपके चमत्कार से चमत्कृत होकर मुझे भी आस्तिक होना पडा। इसी प्रकार जिनके जीने तक की आशा नही थी वे भी मागलिक श्रवण कर उठ वैठे। यह है जप की साधना का अद्‌भुत प्रभाव। गुरुदेव का मागलिक सुनने के लिए दूर दूर से लोग श्रद्धा और भक्ति से आते है और अपने जीवन को धन्य मानते है।



पूज्य गुरुदेवश्री राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी म० का व्यक्तित्व अति व्यापक है। आपश्री का व्यक्तित्व-महत्ता का गंभीर गौरव इस उक्ति से स्पष्ट किया जा सकता है कि वह बिन्दु मे सिन्धु और सिन्धु मे बिन्दु का रूप है। व्यक्तित्व-वैविध्य के लक्षणने आपश्रीके व्यक्तित्व को स्वत: 'समाज' का ही रूप दे दिया है। आपश्री का दृष्टिकोण व्यापक, विचार उदार, चिन्तन सघन, प्रवृत्ति समाज मंगलोन्मुख और प्रयत्न रचनात्मक है।

यह सत्य एवं तथ्य है कि आपश्री की स्थानकवासी सस्कृति के प्रति प्रबल आस्था है, तथापि मिथ्या धारणाओ एवं रूढिबद्धता से आप सर्वथा दूर है। यही प्रवृत्ति आपकी उदार-मनस्कता की जननी है। धर्म का समाजोन्मुख स्वरूप ही आपश्री सदा सार्थक मानते है और इस हेतु आपकी कर्मभूमि का प्रत्येक तन्तु सदा समाज के अंगोपांगो के शुभ मे सक्रिय रहा है।

आपश्री की उपादेयतापूर्ण, सहायक एवं सर्वक्षेत्रीय श्रेष्ठत्व को धारण करनेवाली व्यक्तित्व-गरिमा से प्रभावित होकर समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे सक्रिय प्रमुख जन, जिज्ञासुगण, सेवाधर्मी, विचारक एवं कार्यकर्ता आपश्री के प्रति आकर्षित रहते है और आपश्री भी सभी से अत्यन्त सहृदयता और सौजन्यतापूर्वक मिलते है, आत्मीयता के साथ मिलते है।

यहाँ कतिपय विशिष्ट जनो से आपश्री के भेट सम्बन्धी सस्मरण प्रस्तुत है।

प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू

संवत् २०११ – गुरुदेवश्री के दिल्ली-प्रवास काल का प्रसंग है। ४ दिसम्बर को आपश्री ने भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू से भेट की। इस अवसर पर आपश्री को श्री मदनलालजी म० आदि सन्तगणो का साहचर्य प्राप्त था।

पडितजी ने अपनी कोठी पर सन्तजनो का अत्यन्त सम्मानपूर्वक हार्दिक स्वागत किया और अगवानी हेतु स्वयं समक्ष उपस्थित हुए। गुरुदेवश्री के साथ पडितजी ने अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक, सहृदयता और सौजन्य के साथ अनेक नैतिक, सामाजिक आदि प्रश्नो पर विचार-विमर्श किया। आपश्री ने इस अवसर पर आचार्य जीतमलजी म० की वह कलाकृति अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जिसमे चने की दाल बराबर दायरे मे आचार्यश्री ने १०८ हाथियो के चित्र तैयार किये थे। आपश्री ने परिचय देते हुए व्यक्त किया कि जैनधर्म को आधारहीन और इसकी मान्यताओ को मात्र मिथ्या कल्पनाएँ बताते हुए जोधपुर नरेश मानसिह ने चुनौती दी थी कि इस सिद्धान्त को सत्य सिद्ध किया जाय कि एक बूँद जल मे असंख्य कीटाणु होते है। प्रत्युत्तर मे आचार्यश्री ने यह चित्र तैयार कर जोधपुर महाराजा को सन्तुष्ट किया था। पंडितजी कलाकृति से बडे चमत्कृत एवं मुग्ध हुए।

भगवान् महावीर के विराट् व्यक्तित्व के सार्वजनिक महत्त्व आदि विषयो पर लगभग ५५ मिनिट वार्तालाप होता रहा। श्रीमती इन्दिरा गाधी और उनके पुत्र श्री संजय गाधी इस अवसर पर उपस्थित थे।

सरसंघ संचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी)

जोधपुर-चातुर्मास काल की चर्चा है। वर्ष १९७२ (ई०) दिसम्वर की ६ तारीख – राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के सरसघ संचालक गुरुजीका चातुर्मास – स्थल सिहपोलमे आगमन हुआ पूज्य राजस्थान केसरी गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ। भारतीय सस्कृति, दर्शन, धर्म, साहित्य, समाज आदि अनेक विषयो पर गभीर एवं उपयोगी विचार-विमर्श हुआ। गुरुदेवश्री ने भारतीय संस्कृति के समग्र स्वरूप मे श्रमण-संस्कृति के स्थान एवं उसके योगदान के सबध मे अपने उद्गार प्रकट किये। हिन्दू समाज के ऐक्य के सम्बन्ध मे गुरुदेवश्री की महती धारणा से अवगत होने की अभिलाषा सहित श्री गुरुजी ने यह जानने की जिज्ञासा व्यक्त की कि विशाल हिन्दू समाज के

अंग होते हुए भी जनगणना के अन्तर्गत जैन-धर्मावलंबीगण स्वयं को जैन क्यो घोषित करते है?

गुरुदेवश्री ने अत्यन्त मृदुलतापूर्वक श्री गुरुजी की इस जिज्ञासा-तृप्ति हेतु विषय का गहन विवेचन किया। आपश्री ने व्यक्त किया कि जैनियो के आचार-विचार, रहन-सहन आदि की दृष्टि से वे सर्वथा हिन्दू संस्कृति के अंग नही। वे ईश्वर को सृष्टि-कर्ता तथा त्रिदेव एवं वेद आदिको नही मानते है। भारत मे रहने वाले सभी हिन्दू है, तो जैन भी हिन्दू ही है, किन्तु आज जो हिन्दू की परिभाषा वैदिक धर्म को माननेवाले की दृष्टि से करते है, तो जैन धर्म हिन्दू धर्म से पृथक् है। हमारी संस्कृति तो बड़ी विराट् है और लचीलापन उसकी विशेषता है। समय-समय पर उत्पन्न होनेवाली अपेक्षाओ और परिस्थितियों के कारण यह विराट् संस्कृति अपने कुछ उपविभागो की स्थापना हेतु अनुमति देती रही है। यह लचीलापन ही इसकी अजस्रता का रहस्य है। ये समस्त उप-विभाग परस्पर इतने समीप और सहिष्णु है कि सास्कृतिक ऐक्य को कभी कोई आघात नही पहुँचता। आपश्री ने यह भी कहा कि जैन भिन्न होकर भी भारतीय सस्कृति के ही अन्तर्गत है, किन्तु निहित राजनैतिक तत्त्व अपने स्वार्थ की सिद्धि के प्रयोजन से कभी-कभी जो जैनियो को शेप हिन्दुओ से सर्वथा पृथक् वर्णित करते है, उसे कदापि उचित नही कहा जा सकता। हाँ, धार्मिक दृष्टिकोण से जैनियो का एक पृथक् स्थान अवश्य है और इस आधार पर उनका जनगणनादि अवसरो पर स्वयं को जैन रूप मे अकित कराना अनुचित नही है।

श्री गुरुजी आपश्री के तर्कपूर्ण विवेचन से सन्तुष्ट हुए। आपने इस अवसर पर गुरुदेवश्री के वर्चस्व को गद्‌गद स्वर से स्वीकार करते हुए कहा:

"आज के युग मे वास्तव में ऐसे ही सन्तो-महर्षियो की आवश्यकता है। ऐसे सन्तजनो के सद्‌प्रयत्नो के फलस्वरूप ही हिन्दू समाज अखण्ड रह सकता है और सवल व सतेज वन सकता है।"

इस अवसर पर एडवोकेट श्री राधाकृष्ण रस्तोगी ने श्री गुरुजी को राजस्थान केसरीजी व देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री द्वारा रचित साहित्य भी भेट किया।

गृहमंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त

सोजत-सम्मेलन के अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री की भेट तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री प० गोविन्दवल्लभ पन्त के साथ व्यवस्थित की गयी थी। इस अवसर पर दोनो विशिष्टजनो के मध्य राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक आदि प्रसंगो पर उन्मुक्त विचार-विमर्श हुआ। गुरुदेवश्री का दृढ मत था कि मानवोचित गुणो से सम्पन्न व्यक्ति ही उचित रूप से 'मानव' कहलाने का अधिकारी है और साथ ही जिसे स्वदेश के गौरव पर स्वाभिमान का अनुभव न हो, वह किसी सीमा तक दानवता के क्षेत्र मे ही परिगणित किया जाना चाहिये। भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता की चर्चा करते हुए आपश्री ने कहा कि वह हमे हमारे व्यवहार मे अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि सदादर्शो को अपनाने के लिए प्रबल प्रेरणा देती है। ये आदर्श व्यक्ति की समुन्नति मे प्रचुर सहायता करते है। पं० पन्त गुरुदेवश्री के उन्नत अन्तरंग व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए।

सरदार गुरुमुख निहालसिंह

जुलाई सन् १९५४ ई० राजस्थान केसरीजी पूज्य गुरुदेवश्री उन दिनो दिल्ली के चाँदनी चौक जैन स्थानक मे विराज रहे थे। सरदार गुरुमुख निहालसिंह (राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल) गुरुदेवश्री के पावन दर्शनार्थ पधारे और प्रवचन-सभामे भी उपस्थित रहे।

गुरुदेवश्रीने अपने प्रवचन मे अहिसा के उत्तम आदर्श की महत्ता को आलोकित किया और कहा कि विश्व के सभी धर्मो और दर्शनो मे इसका महत्वपूर्ण स्थान सदा ही रहा है। तथापि जैन दर्शन मे जितनी गहनता एवं सूक्ष्मता के साथ अहिसा पर चिन्तन हुआ और हो रहा है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। जैन

संस्कृति और साधना पद्धतियो मे सर्वत्र अहिसा का पूत भाव परिव्याप्त है। अहिसा इसका प्रधान स्वर ही नही, प्रत्येक स्वर मे मुखरित होनेवाला आधारभूत तत्त्व है। आपश्री ने व्यक्त किया कि जैनागमो मे अहिसा को भगवती कहा गया है। वह दया का अक्षय कोष है और दया मानवता का मूलभूत तत्त्व है, जिसके अभाव मे मानव, मानव न रहकर दानव हो जाता है। एक प्रसिद्ध चिन्तक का सन्दर्भ देते हुए आपश्री ने कहा था कि यह वास्तविकता है कि दया का देवदूत जब दिल के दरवाजे से दुत्कार दिया जाता है, आँसुओ का सोता जब सूख जाता है, तो मनुष्य मरुस्थल मे रेगते हुए सॉप-सा होकर रह जाता है।

'नही मारना और मरते हुए की रक्षा करना'—अहिंसा के ये दो पक्ष जैन धर्मान्तर्गत अहिसा दृष्टि को समृद्ध स्वरूप देते है। वस्तुतः विधि-निषेध दोनो पक्ष परस्पर पूरक स्थिति मे रहकर ही समग्र अहिसा को आकार दे पाते है।

अहिसा की परमशक्ति की चर्चा करते हुए आपश्री ने कहा कि मात्र इसी शक्ति के प्रयोग द्वारा भारत को स्वाधीन करा लिया गया है, किन्तु आपने खेद व्यक्त किया कि वही स्वाधीन भारत अहिसा का सही मूल्याकन नही कर रहा है, इसकी उपेक्षा कर रहा है। सर्वत्र हिसा का ही भयंकर रूप है। प्रचण्ड उत्पात है। सरदार साहब की ओर विशेष रूप से उन्मुख होते हुए आपश्री ने इस अपेक्षा की चर्चा की। उच्चाधिकारियो को यह चुनौती स्वीकार करनी चाहिये कि अहिसा की पुनःप्रतिष्ठा को अपना दायित्व मानना चाहिये, तभी शुभ भविष्य की आशा की जा सकती है।

जगद्गुरु शंकराचार्य

पूज्य गुरुदेवश्री और जगद्गुरु शंकराचार्य की भेट का प्रसंग बडा दिलचस्प है। संवत् १९९४ मे आपश्री का वर्षावास नासिक मे था। संध्या समय आपश्री बहिर्भूमि को जा रहे थे कि सामने से कार मे जगद्गुरु आ रहे थे। उन्होने गाड़ी रोकी

और नीचे उतर पड़े। उन्होंने आपश्री से प्रश्न किया—"आप कौन है?"

उत्तर में आपश्री ने कहा—"वर्ण से ब्राह्मण और धर्म से जैन श्रमण।"

जगद्गुरु इस उत्तर पर आश्चर्यचकित रह गये। कोई ब्राह्मण-वंशी जैन श्रमण हो जाय यह प्रसंग उनके लिए कुतूहल का कारण बना और इसकी मूल परिस्थितियो के सम्बन्ध मे उन्होने जिज्ञासा प्रकट की।

आपश्री ने स्पष्ट किया कि ऐसा हो, उसमे कोई नवीनता या असामान्यता नही है। ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख करते हुए आपश्री ने कहा कि भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य जो 'गणधर' कहलाते है, सभी ब्राह्मण ही थे। इनके अतिरिक्त आचार्य हरिभद्र, सिद्धसेन दिवाकर आदि जैन धर्माकाश के अनेक दीप्तिमान नक्षत्र जन्म से ब्राह्मण थे।

तदनन्तर भारतीय दर्शन के उद्गम विकास पर चर्चा चलती रही। गुरुदेवश्री का मत था कि भारतीय दर्शन का जो वर्तमान स्वरूप है उसे प्राप्त करने के लिए उसे जो विकासयात्रा करनी पड़ी है, उसमे जैन-दर्शन का अति महत्वपूर्ण योग रहा है।

दर्शन शब्द के पर्याय रूप मे फिलोसोफी शब्द के प्रयोग पर चिन्तकद्वय मे चर्चा चली और अनुभव किया गया कि इस शब्द की अर्थ-गरिमा से स्पष्ट होता है कि किसी इन्द्रियातीत के परीक्षण मे युग के विचारको की स्वाभाविक रुचि, परिस्थिति अथवा अधिकारिता के जो तात्विक भेद है, उन्हे ही 'दर्शन' मे अभिव्यक्ति मिलती है। आपश्री ने जैनदर्शन की विशेषता प्रकट करते हुए कहा कि इसके अन्तर्गत तो किसी भी चिन्तन को एकान्त दृष्टि का आधार मिलता ही नही। अनेकान्त का ही सर्व-मान्य आधार रहता है। यही चिन्तन जगत का अनेकान्त दर्शन नैतिक जगत मे अहिंसा के व्यापक रूप को धारण कर लेता है।

आप दोनों इस सम्वन्ध में सहमत थे कि भारतीय दर्शन के उत्कर्ष को समझने के लिए जैन दर्शन को प्रथमतः स्पष्टता-पूर्वक समझा जाय यह आवश्यक है । विश्व के दार्शनिक क्षेत्र में अहिंसा और अनेकान्त जो भिन्न भिन्न तत्त्व है उनका समन्वय ही जैन दर्शन की अपनी विशिष्टता है । साथ ही इन दोनो तत्त्वो के समानान्तर इस दर्शन विशेप मे मनोवैज्ञानिक आधार पर कर्मवाद को भी प्रतिष्ठा मिली है । अहिंसा मानव मनको सरलता व स्वच्छता से विभूषित करती है, अनेकान्त उसे तर्क चेतना की उर्वरता देता है और जीवन मे आध्यात्मिकता की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है, कर्मवाद से ।

चारित्र-चक्र-चूड़ामणि—आचार्य शान्तिसागरजी

यह वह समय था जव गुरुदेवश्री नासिक से विहार कर गजपन्था तीर्थ पधारे थे । वहाँ दिगम्वर सम्प्रदाय के चारित्र-चक्र-चूडामणि आचार्य शान्तिसागरजी पहले ही से विद्यमान थे । मिलन के इस शुभ संयोग से दोनो अति हर्षित हुए और एक ही भवन मे आपने विश्राम किया । जैन मन्दिरो मे हरिजन—प्रवेश के प्रश्न पर आचार्यजी ने उन दिनो अन्न का त्याग कर रखा था । इस अवसर पर अपने प्रवचन मे गुरुदेवश्री ने जैन धर्मातर्गत विभिन्न सम्प्रदायो मे साम्य की प्रवलता एवं ऐक्य की आवश्यकता पर वल दिया । आपश्री ने जैन संस्कृति की समन्वय और संगमकी, मेल-मिलाप की सस्कृति के रूप मे व्याख्या की और व्यक्त किया कि दिगम्वर व श्वेताम्वर सप्रदायो मे आन्तरिक एकता है । इनमे जो भेद दृष्टिगत होता है वह वाह्य आचरण पर ही आधारित है, अन्यथा वैचारिक आधार की दोनो मे समानता है । जैन संस्कृति का मूलमंत्र—नवकार महामत्र दोनो ही क्षेत्रो मे समान महत्व के साथ प्रतिष्ठित है — यह इस बात का द्योतक है कि दिगम्वर व श्वेताम्वर समाजो मे आभ्यन्तरिक ऐक्य व साम्य की स्थिति है, अभेद की स्थिति है ।

आगम प्रभावक पुण्यविजयजी महाराज

सादडी सन्त-सम्मेलन के शुभावसर पर आगम प्रभावक पुण्य-विजयजी म० से गुरुदेवश्री की प्रथम भेट हुई थी। सम्मेलन के अति व्यस्त कार्यक्रम के कारण उस समय अधिक गभीर पारस्परिक वार्तालाप के लिये उपयुक्त स्थिति नही बन पायी।

इसके पश्चात् बम्बई मे पुन यह अवसर उपलब्ध हुआ और दोनो विचारको के मध्य 'आगम' के गभीर पक्षो पर विचारोत्तेजक, उपयोगी विचार-विनिमय हुआ।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

पूज्य गुरुदेवश्री के दिल्ली-प्रवास का समय था। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन आपश्री के दर्शनार्थ पधारे। आप प्रवचन-सभा मे भी सम्मिलित हुए और तत्पश्चात् आपश्री के साथ राजर्षिजी का पारस्परिक वार्तालाप भी हुआ।

वार्तालाप के क्रम मे गुरुदेवश्री ने अपनी धारणा व्यक्त की कि धर्म का सम्बन्ध आचार से तथा दर्शन का विचार से है। भारतीय सस्कृति ने आचार और विचार को एक माना है, उनका एकत्र अस्तित्व स्वीकारा है। अर्थात् दोनो एक-दूसरे के पूरक है। आचार-रहित विचार विकार है और विचार-हीन आचार अनाचार है। पाश्चात्य विचारको के मत मे रिलिजन और फिलोसोफी का पृथक्-पृथक् अस्तित्व है, किन्तु भारतीय विचारधारानुसार धर्म और दर्शन अन्योन्याश्रित है। ये दो तट है जिनके मध्य मानव-जीवन की सरिता प्रवाहित रहती है। हाँ, दोनो के आधार भिन्न है। धर्म श्रद्धा पर आधारित होता है तो दर्शन की आधारशिला तर्क है, किन्तु तर्क धर्म के मार्ग मे और श्रद्धा दर्शन के मार्ग मे कभी व्यवधान नही बनता।

गुरुदेवश्री ने स्पष्ट किया कि वेदान्त की पूर्व मीमासा धर्म और उत्तर मीमासा दर्शन है। योग आचार है तो साख्य विचार। इसी प्रकार बौद्ध धर्मान्तर्गत हीनयान धर्म है और महायान दर्शन। जैन धर्म भी संगति के इस सामान्य सिद्धान्त का अपवाद नही है।

जैन परम्परा मे अहिंसा धर्म है तो अनेकान्त दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। भारतभूमि पर धर्म और दर्शन कभी एकाकी नही रहते। आपश्री ने इस ओर भी इंगित किया कि पाश्चात्य प्रभाव स्वरूप आज हमारे यहाँ भी धर्म और दर्शन को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी का रूप दिया जा रहा है। यह हानिकारक प्रवृत्ति है और आज इनके समन्वय की महती आवश्यकता है।

मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया

वर्ष १९६५ ई० मे उदयपुर के समीप तिरपाल ग्राम मे गुरुदेवश्री विराजित थे और दर्शनाभिलाषा से राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया का वहाँ आगमन हुआ था। चर्चा भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान के प्रसंग पर चल पडी थी और दोनो महानुभावो मे परस्पर विचारो का आदान-प्रदान हुआ।

गुरुदेवश्री ने वैज्ञानिक विकास को लक्षित करते हुए कहा कि वर्तमान युग मे यंत्र विज्ञान के माध्यम से मानवजाति ने आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त की है। यह सत्य है, किन्तु यांत्रिक सहायता के अभाव मे भी अनेक दुष्कर कार्य सम्पन्न किये जा सकते है और इस दिशा मे आध्यात्मिक शक्ति हमारी सहायता कर सकती है। एक उदाहरण द्वारा आपश्री ने अपने कथन की पुष्टि की कि बिना यंत्रो के उपयोग के भी अणु और समस्त ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड के प्रत्येक उपादान के साथ परिचय स्थापित किया जा सकता है—अध्यात्म के द्वारा। इस आध्यात्मिक प्रक्रिया का विश्लेषण-विवेचन करते हुए आपश्री ने कहा कि इसका मूलमंत्र है—'बाहर से भीतर की ओर गतिमानता'। बाह्य दृश्यमान स्थितियो अथवा पदार्थो का परिचय प्राप्त करने की उत्सुकता को समेट कर अन्तर्मुखी होकर आत्मतत्वको पहचानने का यत्न ही इसकी मूल प्रक्रिया है। जिसने एक आत्मतत्व को जान लिया, वह विश्व के किसी भी तत्व से अज्ञ नही रहता।

बाह्य प्रकृति पर विजय-स्थापनाका मार्ग विज्ञान द्वारा प्रशस्त होता है और इससे भौतिक समृद्धि व उत्थान संभव होता चला

जा रहा है, किन्तु अन्त:प्रकृति का नियन्ता अध्यात्म ही है। वही मात्र एक साधन है जिसे आभ्यन्तरिक चेतना पर विजय के प्रयोजन से प्रयुक्त किया जा सकता है। वस्तुत यही यथार्थ है और यही वास्तविक उपलब्धि, समृद्धि अथवा उत्थान का स्वरूप है। यह ऐसी उपलब्धि है जिससे बाह्य उपलब्धियाँ भी सहज ही सभव हो जाती है। आत्मा पर विजय अनन्त-अनन्त सुखराशि की आधार बन जाती है। आत्मिक सुख ही तो वास्तविक सुख है।

यह समझना भ्रामक होगा कि भिन्न प्रक्रियाओ के अनुसरण का अन्तर होने के कारण अध्यात्म और विज्ञान परस्पर विरोधी है, अथवा एक की सक्रियता अन्य के लिए व्यवधान बनती है। सत्य यह है कि यदि इन दोनो का परस्पर पूरक रूप मे व्यवहार किया जाय, तो मानव-जीवन सुखमय, शान्तिमय और प्रगतिमय बन सकता है।

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

सुदीर्घ स्वातंत्र्य सघर्ष के पश्चात् भारत स्वाधीन हुआ ही था कि उन दिनो एक शुभ घडी ऐसी आई, जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और राजस्थान केसरीजी पूज्य गुरुदेवश्री के मध्य सम्पर्क स्थापित हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री ने भारतीय जनता की इस महान सफलता को अटूट लगन, साहस, धैर्य, त्याग, उत्सर्ग और कर्तव्यपरायणता का पुरस्कार बतलाते हुए कहा कि इस उच्चतम उपलब्धि का श्रेय काग्रेस को जाता है। आपश्री ने कहा कि अब, जब उसे शासन का गुरुत्तर दायित्व निभाना है, काग्रेस के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह अपनी आचार-सहिता से च्युत न होने का दृढ संकल्प धारण करे। राज्य-मद मे उसे अपने गरिमामय अतीत और भव्य परम्परा को विस्मृत नही करना है और नवीन दायित्व के नवीन गौरव से स्वयं को विभूषित करते हुए उसे निरन्तर सर्वजन हिताय स्वरूप का पूरी सतर्कता के साथ निर्वाह करना है।

गुरुदेवश्री के इस मूल्यवान सन्देश से राजेन्द्रबाबू प्रसन्न और अभिभूत हुए और आशीर्वाद प्राप्त कर उन्होंने प्रस्थान किया ।

पं० सुखलालजी संघवी

सन् १९७२ मे अहमदाबाद के अनेकान्तविहार मे गुरुदेवश्री का साक्षात्कार पं० सुखलालजी से हुआ । पंडितजी भारतीय दर्शन के प्रतिष्ठित एवं मर्मज्ञ विद्वान है । गुरुदेवश्री ने उस अवसर पर दर्शन विषयक अपनी जटिल समस्याओ और जिज्ञासाओ को प्रस्तुत किया था और पंडितजी ने दुरूह समस्याओं का सरलता और स्पष्टता के साथ विवेचन किया । श्री देवेन्द्र मुनिजी के भगवान महावीर के जीवन सम्बन्धी ऐतिहासिक तथ्यों के स्पष्टीकरण चाहनेवाले प्रश्नो का निदान भी पं० सुखलालजी ने किया । ज्ञान-चर्चा के रूप मे यह भेट पर्याप्त महत्वपूर्ण रही ।

पं० अगरचन्दजी नाहटा

पं० अगरचन्दजी नाहटा ने पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन अनेक अवसरो पर जयपुर, जोधपुर, बम्बई, अजमेर आदि नगरो मे किये । पं० नाहटाजी इतिहास और प्राचीन भाषा-साहित्य की शोध-खोज मे व्यस्त रहनेवाले विद्वान है । उन्होने अपने कार्यक्षेत्र सम्बन्धी अपनी अमुक गूढ और जटिल समस्याओ के निदान मे गुरुदेवश्री से विचार-विमर्श किया ।

भाऊसाहब वर्तक

विरार (महाराष्ट्र) प्रवास काल की चर्चा है । महाराष्ट्र के रसद मंत्री भाऊसाहब वर्तक पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ पधारे । आप गुरुदेवश्री की प्रवचन-सभा मे भी सम्मिलित हुए ।

गुरुदेवश्रीने अपरिग्रह व्रत एव समाजवाद के सन्दर्भ मे इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त किये । आपश्री ने व्यक्त किया कि अपरिग्रह जैन दर्शन का मूलभूत सिद्धान्त है । गृहस्थ के लिए अपरिग्रह-पालन अणु रूप मे रहता है, किन्तु संन्यस्त के लिए उसका समग्र रूप मे पालन अपेक्षित रहता है । अर्थात् गृहस्थो

के लिए अपरिग्रह सम्बन्धी मर्यादा है। मर्यादा-पूर्वक जो त्याग किया जाता है, वह समाज-हित ही है। 'समाजवाद' आधुनिक शब्दावली का भाग है, प्राचीन साहित्य और वैचारिक क्षेत्र मे इस शब्द का अस्तित्व दिखायी नही देता। समाजवाद व्यापकतम अर्थ मे समाज के प्रत्येक सदस्य के हित का ही प्रतिनिधि है। समाज की विषमताओं की उन्मुक्ति करने के महान उद्देश्य से आधुनिक विचारको ने समाजवाद का प्रयोग किया है। युगीन आवश्यकताओ की तीव्रता के आधार पर यह वाद सर्वाधिक महत्ता प्राप्त भी है, किन्तु यथार्थ यह है कि मानवजाति की हितचेतना हमारे देश के लिए नया तत्त्व नही है। वस्तुत यह इस युग मे ही प्रवर्तित प्रवृत्ति नही। इसका पूर्वरूप स्पष्टतापूर्वक जैन दर्शन के अपरिग्रह सिद्धान्त मे परिलक्षित होता है। बापू ने भी इस सिद्धान्त को स्निग्ध सामाजिक जीवन के लिए एक अनिवार्य तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया था और यह सर्वोदय-वाद अपरिग्रह के अपनाव के लिए प्रबल प्रेरणा का एक कार्यक्रम है।

श्री चन्दनमल वैद

अजमेर-चातुर्मास-वर्ष १९७३, सितम्बर की १३ तारीख—अवसर था विश्वमैत्री दिवस। पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य मे भारत जैन महामण्डल का यह विचार-गोष्ठी का आयोजन था जिसमे राजस्थान के शिक्षा एवं वित्तमंत्री (तत्कालीन) श्री चन्दनमलजी वैद की विशेष उपस्थिति थी। पूज्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री ने इस अवसर पर मैत्री विषयक अपने विद्वत्तापूर्ण उद्‌गारो से गोष्ठी के लिए आधारभूमि तैयार कर दी थी। वाणी-प्रवीण पूज्य गुरुदेवश्री ने एक सुन्दर दृष्टान्त द्वारा यह प्रतिस्थापना की कि मनुष्य मानवता और मानव-समाज के प्रति स्नेह, हित और अपनत्व की भावना को विकसित किये बिना वाह्य भौतिक समृद्धि और उत्थान चाहे कितना ही प्राप्त कर ले, सब कुछ व्यर्थ ही सिद्ध होगा, उसे कोई यथार्थ लाभ हो ही नही सकेगा। आपश्री ने कहा कि यह स्थिति ठीक वैसी है जैसे लिफ्ट की खराबी के कारण किसी उच्च भवन की ४२ वी मंजिल तक श्रमपूर्वक सीढियाँ चढकर कोई व्यक्ति पहुँचे और अपने कमरे की चाबी नीचे ही भूल आया हो।

उसे विश्राम नही मिल सकता। आज का मनुष्य भी घोरतम भौतिक विकासोपरान्त भी असहाय और निरुपाय-सा, निरीह-सा शान्ति की खोज मे व्यग्र है। उसे ज्ञात ही नही कि यह शान्ति कैसे और कहाँ से उपलब्ध हो सकती है। मानवमात्र के प्रति हितैषणा, मंगलका भाव और इस दिशा मे सक्रिय रहने की प्रवृत्ति ही वह चाबी है जो उसे शक्ति और इस रूप मे यथार्थ सुख की उपलब्धि करा सकती है।

गोष्ठी के उपरान्त मंत्री महोदय से पृथक् से भी उपयोगी वार्तालाप हुआ। कार्यक्रम मे भारतीय जैन महामण्डल के प्रदेश (राजस्थान) अध्यक्ष श्री सम्पतकुमार गदैया, अजमेर शाखा के अध्यक्ष श्री उमरावमल डड्ढा, मंत्री श्री मागीलाल जैन, गाधीवादी विचारक एवं समाजसेवी श्री जीतमल लूणिया, विधायक श्री माणकचन्द सौगानी और इनके अतिरिक्त भी श्री चिमनसिह लोढा, श्री जीतमल चोपड़ा, श्री श्रीलाल कावड़िया, श्री राहुल सुगन छाबडा (बौद्ध समाज-सम्बद्ध), श्री सैयद सोलत हुसेन खाँ साहब (दरगाह-दीवान) प्रभृति महानुभावो ने अपनी सक्रिय उपस्थिति द्वारा गोष्ठी को उपयोगी स्वरूप प्रदान किया।

श्री जैनेन्द्रकुमार

बालकेश्वर–चातुर्मास काल था। अखिल भारतीय महत्त्व प्राप्त साहित्यकार श्री जनेन्द्रकुमार गुरुदेवश्री के दर्शन और आपश्री के समृद्ध चिन्तन से लाभान्वित होने की मनोकामना के साथ आये। श्री जैनेन्द्रकुमार दर्शन और मनोविज्ञान को व्यावहारिक धरातल पर लानेवाले प्रसिद्ध चिन्तक है, जिनका चिन्तन साहित्य द्वारा अभिव्यक्ति पाता रहा है।

स्वाभाविक था कि चर्चा दार्शनिक पक्षो को लेकर ही होती। वार्तालाप चलते-चलते स्याद्वाद और सापेक्षवाद पर केन्द्रित हुआ। गुरुदेवश्री ने अपना मत व्यक्त किया कि स्याद्वाद भारतीय दर्शन की एक संयोजक कडी है और यही जैन दर्शन का हृदय है। इसके बीज आगमो मे उत्पाद व्यय धौव्य स्यादस्ति स्यादना-

स्ति, द्रव्यगुण पर्याय सप्तनय आदि विभिन्न रूपो मे बिखरे पड़े है । सिद्धसेन दिवाकर, समन्तभद्र, अकलंक आदि ने सप्तभंगी आदि के रूप मे तार्किक पद्धति से स्याद्वाद को व्यवस्थित रूप दिया है जो दर्शन–जगत् का एक सजीव पहलू रहा है ।

सापेक्षवाद बीसवी सदीकी महान देन है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० अल्बर्ट आईन्स्टाइन इसके उन्नायक है । गुरुदेवश्री ने इस प्रारंभिक भूमिका के साथ उपर्युक्त वादो के संघटन, विश्लेषण और विवेचन की टिप्पणी की । आपश्री ने कहा कि "स्याद्" व "वाद" इन दो शब्दो का योग स्याद्वाद है । "स्यात्" संस्कृत का अव्यय है जो कथञ्चितका पर्यायवाची है । इसका भाव है—किसी दृष्टि से, किसी अपेक्षा से । सापेक्षवाद मे भी अपेक्षा की प्रधानतता है, "अपेक्ष या सहितं सापेक्षम्" । तत्वत. सापेक्षवाद का भी वही भाव या आशय है ।

श्री डी. पी. यादव

सन् १९७१ का पर्यूषण पर्व, बम्बई मे कॉदावाड़ी–चातुर्मास चल रहा था । गुरुदेवश्री की प्रवचन सभा से लाभान्वित होने के प्रयोजन से केन्द्रीय मंत्री श्री डी. पी. यादव का आगमन हुआ था । यह वह काल था जब बिहार राज्य पर दुर्भिक्ष की भीषण दैविक विपत्ति थी । पीडित बिहारी बन्धुओ की सहायतार्थ आपश्री के सान्निध्य मे इसी सभा मे एक अभियान प्रारंभ हुआ और लगभग ५०–६० हजार रुपये की राशि तदर्थ एकत्रित हो गई थी। गुरुदेवश्री की प्रभविष्णुता से मंत्री महोदय मंत्रमुग्ध से रह गये थे ।

प्रवचन कार्यक्रमोपरान्त भारतीय सभ्यता और संस्कृति आदि विपयो पर मत्री महोदय के साथ निजी और आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप हुआ । इस वार्तालाप के दौरान आपश्री ने व्यक्त किया कि सभ्यता एवं सस्कृति का प्राय॰ पारस्परिक पर्याय रूप में प्रयोग कर लिया जाता है, किन्तु वस्तुत. दोनो भिन्न-भिन्न है । सभ्यता एव संस्कृति मे क्रमश शरीर और आत्मा जैसा सम्वन्ध है । सस्कृति मानव-

जीवन के आभ्यन्तरिक सौन्दर्य का मुखर रूप है । संस्कृति हमारे सदादर्शों का वह समुच्चय है जो मानवजीवन रूपी वृक्ष के लिए पोषक रस के रूप मे प्रयुक्त होता है। यह अपूर्णत्व से पूर्णत्व की दिशा मे अग्रसर करनेवाली प्रेरणा-शक्ति है ।

सभ्यता व्यक्ति के बाह्य प्रयोजनो को सहज लभ्य बनानेवाला विधान है । इस प्रकार संस्कृति अन्तर्मुखी है, तो सभ्यता बहिर्मुखी । सभ्यता का सद्य: अनुसरण संभव है, किन्तु संस्कृति को अपनाना समय-साध्य व्यापार है । संस्कृति आत्मा का अलंकरण है और सभ्यता शरीर अथवा भौतिक बाह्य जीवन को सजाती है । संस्कृति आत्मतत्व के गूढतम रहस्यो के प्रति ज्ञान को उत्प्रेरित करती है, जब कि सभ्यता भौतिक वैभव की प्राप्ति के पक्ष मे उद्‌बुद्ध करती है ।

मंत्री महोदय गुरुदेवश्री के गंभीर चिन्तन से अत्यधिक प्रभावित हुए थे।

एक बौद्ध भिक्षु

दादर चातुर्मास समापन पर माटुगा-प्रवास चल रहा था, तभी एक जिज्ञासु बौद्धभिक्षु ज्ञान-लालसा से गुरुदेवश्री की सेवा मे उपस्थित हुए थे । नाम उनका स्मरण नही रहा, किन्तु वे गुजरात-निवासी एक प्रबुद्ध नेता है । गुरुदेवश्री के समक्ष जिज्ञासा प्रकट करते हुए उन्होने जैन साधुजनोचित दिनचर्या, नियम-उपनियमो आदि के सम्बन्ध से अवगत होने का प्रयोजन प्रकट किया ।

बौद्ध भिक्षुजी गुरुदेवश्री के सान्निध्य मे लगभग २–३ सप्ताह तक रहे और इस अवधि मे आपश्री ने उन्हे पूर्णतः तुष्ट किया । उन्होने जैनदर्शन के गौरव ग्रंथो का अध्ययन भी किया ।

अत्यधिक प्रभावाभिभूत अवस्था मे उन्होने बताया कि वे अधिकांश समय विदेशो मे व्यतीत किया करते है । २–३ वर्षो मे कभी भारत आ जाते है । इस वर्षाकाल मे जैन धर्म व दर्शन का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करने की उनकी उत्कट आकाक्षा थी और आपश्री के सान्निध्य मे उनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी ।

श्री मोरारजीभाई देसाई

दिनाक १५-९-७४ को भूतपूर्व उपप्रधान श्री मोरारजी देसाई से अहमदाबाद मे चरितनायकजी की भेट हुई। वे समर्थ साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी द्वारा लिखित 'भगवान महावीर' एक अनुशीलन' ग्रन्थ का विमोचन समारोह करने के लिए उपस्थित हुए थे। गुरुदेवश्रीने अपने प्रवचन मे कहा — आज देश हिसा एवं क्लेश के वातावरण से पीडित है। भौतिक उन्नति तो वहुत हो चुकी है और दिन प्रतिदिन होती जा रही है, फिर भी मानव को मानसिक शाति नही। इसका मूल कारण है आज मानव अहिसा, अनेकान्त, अपरिग्रह आदि सिद्धान्तो को भूल चुका है। जिस प्रकार एक व्यक्ति ऊपर की मजिल मे पहुँचने पर कमरे की चावी पास मे न होने से निराश होकर उसे पुन नीचे आना पडता है, उसी प्रकार आज मानव प्रगति पर चढ गया, पर शान्ति की चावी भूल चुका है। अत वह हैरान व परेशान है।

इसके बाद पण्डित प्रवर श्री दलसुखभाई मालवणियाजीने ग्रन्थ का परिचय देते हुए कहा, 'बड़े ही परिश्रम से श्री देवेन्द्र-मुनिजी ने शोधप्रधान प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा है। आज तक मैंने महावीर के अनेक ग्रन्थ देखे, पर उनमे जो कमियाँ थी, वह इस ग्रन्थ मे पूर्ण हो चुकी है।' तत्पश्चात् देवजी मेहताने तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर का परिचय दिया। उसके बाद मोरारजी देसाई ने पुस्तक का विमोचन कर गुरुदेवश्री को अर्पित की। अपने वक्तव्य मे श्री मोरारजीभाईने कहा, 'आज आवश्यकता है भगवान महावीर के सिद्धान्तो के प्रचार करने की। परिश्रमपूर्ण शोधप्रधान लिखा हुआ मुनिश्री देवेन्द्रजी का 'भगवान महावीर: एक अनुशीलन ग्रन्थ' का उद्घाटन करने का मुझे अवसर दिया, तदर्थ मै आप लोगो का हृदय से आभार मानता हूँ।' उन्होंने अपने भाषण मे भगवान महावीर के सिद्धान्तो पर गहराई से प्रकाश डाला। तत्पश्चात् उन्हे स्थानीय सघ एव तारक गुरु जैन ग्रन्थालय की ओरसे माल्यार्पण तथा राजस्थान केसरीजी म० व देवेन्द्र मुनिजीका साहित्य भेट किया गया।

और भी

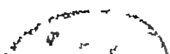
राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, आध्यात्मिक आदि विभिन्न क्षेत्रो से सम्बद्ध और भी प्रतिष्ठित विद्वान, चिन्तक व नेतृत्वधारी अनेक महानुभाव पूज्य गुरुदेवश्री के सम्पर्क मे आये और आ रहे है। किन्तु ग्रन्थ-विस्तार-भय से सम्बन्धित संस्मरणों का स्थगन अपेक्षित अनुभव किया जा रहा है। ऐसे महाशयो में से अधोलिखित के नामोल्लेख का लोभ संवरण कठिन है :

पण्डित बेचरदासजी, महन्त दर्शनरामजी, आचार्य तुलसीजी, आचार्य रामचन्द्र सूरिजी, पण्डित दलसुखभाई मालवणिया, डा० नथमल टाँटिया–इतिहासतत्वमहोदधि जैनाचार्य श्री विजयेन्द्रसूरिजी। पुरातत्त्ववेता पद्मश्री जिनविजयजी, इतिहासकार मुनिश्री कल्याण-विजयजी म०, डा० कान्तिसागरजी, राजस्थान विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष निरंजन नाथजी प्रभृति।

*

अन्तरंग-खण्ड

जी.वि.—१



वाणी-वैभव के अद्भुत अधिपति

पूज्य गुरुदेवश्री राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी म० के व्यक्तित्व की अप्रतिम एवं अनन्य विशेषता है-वाणी पर आपश्री की अद्भुत नियन्त्रण-क्षमता। आपश्री अत्यन्त लोकप्रिय, अतीव श्रद्धेय व्यक्तित्व से सम्पन्न है। इसके मूल मे अन्य अनेक आधारों के साथ एक प्रमुख आधार है आपश्री की प्रभावपूर्ण प्रवचन-क्षमता। समाज मे ऐसी ख्याति विरले ही वक्ताओ को प्राप्त हुई है।

आपकी वाणी मे अद्भुत ओज है जो सुषुप्त आत्मा के जागरण मे पर्याप्त क्षमतावान है। प्रेरक विचारो का ऐसा सतत प्रवाह आपश्री के प्रवचनो मे रहता है कि निविड अंधकारग्रस्त हृदय भी, लाख न चाहते हुए भी, क्रमिक रूप से उज्ज्वल होते-होते अन्ततः अपनी समग्र कालिमा से मुक्त हो जाने को व्यग्र हो उठता है। तर्कों का एक के बाद एक कुछ ऐसा प्रहार रहता है कि कैसा भी कठोर दुराग्रह क्यो न हो, उसे उन्मूलित होना ही पडता है। श्रोता प्रवचन से पूर्व और उसके पश्चात् की अपनी मन की स्थिति का अध्ययन करे तो उसे स्वयं ज्ञात होने लगता है कि उसके अन्तर मे कही कोई चेतना की रश्मि लहरा रही है, जो उसे सुकर्म, सुनीति, सन्मार्ग और सदादर्श की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित कर रही है। एक अद्भुत भारहीनता की अनुभूति उसे होने लगती है।

आपश्री की वाक्शक्ति का ही यह अद्भुत चमत्कार है कि आत्मविभोर होकर श्रद्धालु जन अपने बाह्य हठ को त्याग कर आत्मनिरीक्षण करने को विवश-से हो जाते है। (आत्मगत रूप से दोष स्वीकारते है और प्रायश्चित्त का मार्ग स्वतः ही अपना लेते है।) आपश्री की वाणी का चेटक अनेक हृदय-परिवर्तन प्रसंगों

मे सर्वथा सफल रहा है। स्पष्ट है कि वाग्विदग्धता का सुन्दरतम सदुपयोग कदाचित् अन्य कुछ नही हो सकता।

वचन-प्रवीण जन तो समाज मे अन्य भी दृष्टिगत होते है, किन्तु अधिकाश केवल इसलिए सवाक् रहते है कि उन्हे कुछ कहना है, कुछ कहना ही चाहिये। केवल बोलने मात्र के लिए बोलना व्यर्थ है। इससे तो न केवल हमारी शक्ति का अपव्यय होता है, श्रोताओकी शक्ति, क्षमता व समय का भी व्यर्थ ही मे ह्रास होता है। चित्तस्थ उपयोगी अनुभवो के प्रकटीकरण मे ही वाणी की सार्थकता है। और पूज्य गुरुदेवश्री का वाणी-वैभव इस दृष्टि से सर्वथा सार्थक है। विद्वत्ता अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए साधन रूपमे अपनी वाक्पटुता का प्रयोग आपश्री नही करते। गंभीर मनोमथन के परिणामस्वरूप जो नवनीत-लाभ आपश्री करते है, वाणी से सर्वजनहिताय दृष्टिकोण के साथ आपश्री उसे वितरित कर देते है, और यही वितरण आपश्री का प्रवचन है।

एक और अद्‌भुत कौशल आपश्री को प्राप्त है। वैचारिक गाभीर्य का आधिक्य कभी भी आपके प्रवचनो को बोझिल नही बनाता। गभीर से गभीर विषय को भी इतनी सहज, सुबोध और सुगम अभिव्यक्ति मिलती है कि उसका सर्वाश हृदयंगम हो जाता है। सामाजिको के लिए बिना किसी कठिनाई के समस्त विषय को भली प्रकार समझ सकने की पूरी सुविधा रहती है। यह किसी भी वक्ता का कौशल कहा जा सकता है और पूज्य गुरुदेवश्री इस कौशल के कोष है। यही कारण है कि आपश्री श्रोताओ के चित्त पर आद्योपान्त अधिकार स्थापित किये रहते है। उनका ध्यान अन्यत्र बँटता ही नही और आपश्री के उपदेशो का लाभ उन तक पूर्णत: और प्रभावकारी ढग से पहुँचता है। साथ ही श्रोताओ की रुचि विषय के प्रति स्वत: जाग्रत हो जाती है और तब आपश्री का कार्य और भी सुगम हो जाता है। प्रवचन-सभाओ मे व्याप्त रहनेवाली अटूट शान्ति का रहस्य भी यही है।

आपश्री श्रोताओं के मनोविज्ञान का निपुणता के साथ तुरन्त अध्ययन कर तदनुसार विपय-निरूपण शैली मे सिद्धहस्त है। किसी भी सभा मे विभिन्न मानसिक स्तरो के श्रोताओं की उपस्थिति स्वाभाविक ही रहती है। आपश्री अपनी शैली एव सामग्री को सदा ही ऐसा रूप प्रदान करते हैं कि सभी स्तर के श्रोताओ के लिए वह तुष्टिका कारण रहे।

वाणी और लेखनी दोनो साधनो का उपयोग करते हुए आपश्री सतत रूप से जनमानस को आलोकित करने की दिशा मे व्यस्त रहे हैं। इस रूप मे हुई आपश्री की अन्तर की अभिव्यक्ति आपके प्रबुद्धचेता होने एव मननशीलता का परिचय देती है। यह वैचारिक वैभव अन्तरंग व्यक्तित्व का परिचायक है। आभ्यन्तरिक प्रतिभा की झलक प्रस्तुत करने के प्रयास मे ही गुरुदेवश्री के विचारो की व्याख्या प्रस्तुत अध्याय मे हमारा प्रतिपाद्य है और हमने आश्रय ग्रहण किया है—आपश्री के लेखन एव प्रवचनो का।

*

समय का अधिकतम लाभ उठानेवाला व्यक्ति ही सफलता का मुकुट धारण कर पाता है ।

राजस्थान केसरी पूज्य गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी म० की चिन्तनधारा जीवन और युग की संक्षिप्ततम इकाई 'क्षण' की ओर उन्मुख हुई और आपश्री ने इसके अधिकतम महत्त्व का प्रतिपादन किया है । आपश्री के मतानुसार वर्तमान मे 'समय' ही समस्त जगत् और जीवन की गति-प्रगति के केन्द्रीय बिन्दु का स्वरूप है । एक-एक क्षण परस्पर गुंथ कर जीवन का निर्माण नही हो पाता । क्षण-प्रवाह ही जीवन-यात्रा है । समय की उपेक्षा को गुरुदेवश्री स्वयं जीवन के प्रति व्यवहृत उपेक्षा के रूप मे स्वीकार करते है । आपश्री महामानव परम मनीषी तीर्थंकर भगवानश्री महावीर के उपदेश मे 'समयं गोयम । माप्पमायए'[१] के सबल प्रचारक है और क्षण-प्रतिक्षण के श्रेष्ठतम सदुपयोग के लिए सब को प्रेरित करते रहते है । समय के मूल्याकन की क्षमता जिसमे नही, वह अपने जीवन को उच्च उपलब्धियो से नही सँवार सकता । समय का औचित्यपूर्ण उपयोग ही तो निर्धन को सम्पन्न, पातकी को पुण्यात्मा और प्रमादी को श्रमशील बना देता है । और इस अभ्यास का अभाव व्यक्ति के लिए उत्कर्ष के सभी मार्गों को अवरुद्ध कर देता है । समय तो सतत रूप से प्रवहमान रहता है । घाटके जिस पत्थर को स्पर्श कर सरिता का जल अपनी यात्रा पर आगे बढ गया, वह जिस प्रकार घाट के लाख चाहने पर भी लौट नही पाता, बीता हुआ क्षण भी उसी प्रकार लौट नही सकता । समय रहते ही उसका अधिकतम लाभ उठा लेने को तत्पर रहनेवाला व्यक्ति ही सफलता का

---

१. हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत करो ।

मुकुट धारण कर पाता है। उन्नति के अवसर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे आते है, किन्तु उसे स्वागत के लिए तत्पर न पाकर वेचारे लौट जाते है। अवनति और असफलता का यही रहस्य है। खोया हुआ धन उद्यम से, स्वास्थ्य चिकित्सा से, विस्मृत ज्ञान पुनर्भ्यास से पुनः प्राप्त कर लिया जाता है, किन्तु खोया हुआ समय फिरसे लौटा लानेवाला कोई सांधन हो ही नही सकता। गुरुदेवश्री मानव के इस आत्मघाती स्वभाव से चिन्तित होकर जागरण का शंख निनादित करने मे सदा अपार क्षमतावान रहे है। आपश्री अपने प्रभावी सदुपदेशो से सुषुप्तजनो को जागृत कर आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते रहे है। समर्थ रामदास की इस उक्ति मे आपश्री की अमिट आस्था है—

"एक सदैव पणाचे लक्षण, रिकामा जाऊं ने दी एक क्षण।"[१]

गुरुदेवश्री को यह देख कर पीडा होती है कि हमारा देश कैसा अभागा है, जहाँ समय का मूल्य नही समझा जा रहा है। अकर्तव्यो मे ही भारतीय वर्षो-वर्षों के समय का अपव्यय कर देते है और निरीहता ऐसी कि इसके कारण उन्हे कोई अनुताप भी नही होता। अज्ञानता के प्रभाव से अकर्त्तव्यों को ही कर्त्तव्य मानकर वे छद्म सफलता के दंभ मे मदमस्त रहते है। समय का यह दुरुपयोग मनुष्य मे अनेक दुर्गुण, व्यसन और दुश्चरित्रता को विकसित करता है, जो लौकिक-पारलौकिक हानि के कारण बनते है। हमारी इस युगीन दुरावस्था से पूज्य गुरुदेवश्री देश के भविष्य को सभी दिशाओ मे अंधकारपूर्ण अनुभव करते है।

भारतीय दर्शन के साथ अपने स्वर को समवेत करते हुए आप समय को जीवन की अमूल्य निधि की संज्ञा देते है और स्वीकारते है कि इसका उपेक्षाकारी समस्त विधि-वरदानो से हीन रह जाता है। आपश्री के प्रेरक शब्द रहते है—

---

१ एक क्षण भी बेकार न जाने देना और उसका सदुपयोग करना सौभाग्य का लक्षण है।

"अतीत के क्षण कब्र मे है, भविष्य के क्षण गर्भ मे है, एतदर्थ वर्तमान क्षण को ही सर्वस्व मानकर साधना के महामार्ग पर निरन्तर शेर की तरह बढना चाहिये ।"

आपश्री द्वारा 'समय' की की गयी विश्लेषणात्मक व्याख्या भी उल्लेखनीय है — 'समय' शब्द मे 'सम' के माने सम भावना से व 'अय्' के माने गमन करना है—अर्थात् आत्मा की समभाव परिणति का नाम समय है । समय एक ऐसी सम्पत्ति है कि जो स्वामी भी बनना जानती है । समय पर जब तक हमारा नियंत्रण रहता है वह हमारे लिए हमारे परिश्रम, लगन, साहस आदि सद्‌गुणो का आश्रय पाकर सफलता और उपलब्धियो की भेट लेकर आता रहता है । समय का सदुपयोग हमारे लिए यश का आधार और शक्ति का आगार बना रहता है । यही समय जब नियंत्रित नही रहता तो नियंत्रक बन बैठता है और हम उसके वशीभूत बनकर रह जाते है । फिर तो समय के हाथो की कठपुतली से अधिक हमारा कोई महत्त्व नही रह जाता है। हमे वह सब कुछ करना पडता है, जो समय हमसे अपेक्षा करता है । हम दास हो जाते है समय के । भला इससे बढकर दुर्दशा आत्मचेता प्राणी, मानव की और क्या हो सकती है ?

पूज्य गुरुदेवश्रीने समय सम्बन्धी एक और अति महत्त्वपूर्ण समस्या पर अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये है । सामान्यत. आज व्यक्ति अकर्मण्य, प्रमादी, उद्यमहीन, पुरुषार्थहीन है । समय के सदुपयोग की दिशा मे ये तत्त्व स्वभावत व्यवधान बने रहते है । परिणामत व्यक्ति को निराशा, निस्तेजता, असफलता ही हाथ लगती है, किन्तु व्यक्ति अपनी इस उपलब्धिहीनता का सारा दोष 'समय' पर डाल देता है और कहने लगता है —

'समय एव करोति बलाबलम्'

काल सर्वशक्तिमान है । समय ही व्यक्ति के माध्यम से सब कुछ करता है—अन्यथा व्यक्ति अपनी क्षमता से कुछ भी कर सकने के योग्य नही । समय ही ठीक नही तो व्यक्ति बेचारा

क्या करे ? मनुष्य न तो बलवान है, न दुर्बल। यह समय ही है जो उसे महान भी बना देता है और क्षुद्र भी।

पूज्य राजस्थान केसरी गुरुदेवश्री का मत इस सिद्धान्त का विरोधी है। आपके कथनानुसार समय स्वयं मे न अच्छा होता है, न ही बुरा। समय तो उसके उपभोगकर्ता की मनोवृत्ति के अनुसार ही स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इसका सदुपयोग करनेवाले को यह महान बना देता है, तो इसके विपरीत इसको नष्ट करने की इच्छा रखनेवाले को यह नष्ट भी कर देता है। 'अग्नि' भला कभी बुरी हो सकती है? व्यक्ति आत्मदाह करे या आगजनी करे, तो दोष व्यक्ति का है या अग्नि का? 'कलिकाल' कहकर हम हमारी सारी अवनति का कारण समय को बताने के अभ्यस्त हो गये हैं। यह हमारी असफलता की लज्जा ढँकने का आजकल एक समर्थ साधन बन गया है, किन्तु वही समय जो अवनतिग्रस्त हीन जनो के लिए कलिकाल है, तो क्या समय सदुपयोगी उन्नतिशील व्यक्तियो के लिए सतयुग नही है? गुरुदेवश्रीका सबल तर्क रहता है कि यदि राम द्वारा काल सुकर्म करा सका, तो वही काल रावण को दुष्कर्मी क्यो बना गया? समय तो वही एक था। क्या कृष्ण और कस, गाधी और गोडसे समकालीन नही थे? फिर इनकी प्रवृत्तियो और कर्मभूमियो मे इतना अन्तर क्यो? एक देवतुल्य और दूसरा असुर क्यो? वस्तुत मनुष्य का उत्थानकाल सतयुग और पतनकाल ही कलियुग है। यदि बाह्य रूप से लोक मे सतयुग हो, किन्तु व्यक्ति के मन मे कलियुग डेरा डाले रहे, तो सतयुग उसके लिए प्रभावशून्य रहेगा। मानव-मन सतयुगीन सत प्रवृत्तियोसे घिरा रहे तो बाह्य कलियुग उसके मार्ग मे कभी बाधक नही हो सकता।

गुरुदेवश्री ने इस प्रकार समय के मूल्य को समझने और तदनुकूल कर्त्तव्यरत रहने के लिए सर्वसाधारण के लिए प्रबल प्रेरक की अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

"कलि. शयानोभवति, सजि हानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठस्त्रोता भवति कृत सम्पश्चते चरन् ॥"

भारतीय चिन्तन की इस दिशा को तथ्यपूर्ण स्वीकारते हुए आपश्री ने इसे जन-मन तक प्रभावपूर्ण ढंग से पहुँचाने और सोयी हुई आत्माओ को जागरणशील बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। "जब मनुष्य अज्ञान की काली चादर ओढ कर मोह की गहरी नीद मे सोया रहता है तो वह कलियुग है, जब वह जागरण की अँगडाई लेकर सत्यज्ञान के प्रकाश मे आँखे खोलता है तो वह द्वापर है, जब वह सत्य-मार्ग पर चलने के लिए तनकर खडा हो जाता है और दृढता के साथ सत्य-मार्ग पर चल पडता है तब जीवन का सतयुग है।" गुरुदेवश्री की चमत्कारी वाणी पाकर उपर्युक्त संदेश सजीव हो उठता है और सहस्र सहस्र श्रद्धालुओ के सन्मार्गी हो जाने का कारण बनता रहा है । काल के सम्बन्ध मे भ्रान्त धारणाओ से मुक्त होकर जन-जन का मानस आपश्री का स्नेहपूर्ण उद्बोधन पाकर इस तथ्य को अपना स्थायी भाग बना चुका है कि काल अपने आप मे कुछ भी नही है। वह तो व्यक्ति के मन, वाणी और कर्म के अनुसार उस व्यक्ति के लिए भला अथवा बुरा होता है । और यह भी कि समय मनुष्य के हाथ मे आया एक अनमोल रत्न है । इसके उपयोग से जीवन अलंकृत हो जाता है, आभायुक्त हो जाता है । जो इसके मूल्याकन और तदनुरूप व्यवहार मे सफल हो जाता है, उसका जीवन धन्य हो उठता है ।

*

'मन को मुट्ठी मे कर सारे जगत् को मुट्ठी में किया जा सकता है।'

मनुष्य और पशु मे प्राकृतिक रूप से कोई विशेष अन्तर नही है। पशु-जगत से भिन्न ही नही, उसे श्रेष्ठ अस्तित्व का स्वामी बनानेवाला मनुष्य का अपना मन है। मन ही मानव की नाना भाँति प्रवृत्तियो का प्रतीक है और ये प्रवृत्तियाँ मानव-मन की सफल प्रतिनिधि है, मन की सम्पदा है। मनुष्य-जाति को 'अगरफुल मखलुकात' का गौरव प्रदान करती हैं। अन्यान्य मनीषियो की भाँति गुरुदेवश्री की दृढ धारणा है कि मन अति चंचल स्वभाव का होता है और यही व्यक्तिके उत्थान-पतन का मूल कारण होता है। समान अवयवों को धारण करते हुए भी कोई व्यक्ति महापुरुषो की कोटि मे परिगणित होता है, जब कि किसीको औसत स्तर की पक्ति मे भी स्थान नही मिल पाता। उपलब्धि-विषयक इस न्यूनाधिकता के मूल मे मन की भूमिका रहती है। आपश्री की अनुभूत धारणा है कि व्यक्ति अपने मन को जिस सीमा तक नियत्रित कर पाता है, वह उतनी ही उच्च गरिमा का पात्र सिद्ध होता है, श्रद्धेय बन पाता है और लोक-मंगलकारी प्रवृत्तियो मे वह व्यस्त रह सकता है।

जब मे मनुष्य मनुष्य बना है, समूह-जीवन मे प्रवेश कर पशु-जगत् से श्रेष्ठत्व धारण करते हुए उसने सभ्यता के प्रथम सोपान पर चरण रखा, उसी अवस्था से लेकर विकसित मानव का मन सदा ही मानसशास्त्रियो के अध्ययन-चिन्तन का विपय बना रहा है। भारतीय मनस्वियो ने मानव-मन को दर्शन की कसौटी पर रखा है, उसका विश्लेषण-विवेचन किया है। पाश्चात्य विद्वानो ने अपने अध्ययन का आधार मनोविज्ञान को स्वीकारा और मन का सूक्ष्म विश्लेषण कर विषय की तहतक पहुँचने का

सफल प्रयास किया है। फिर भी भारतीय चिन्तको, ऋषि-मुनियो ने इस क्षेत्र मे जितना विकास किया है, पाश्चात्य शास्त्रीगण स्वय उसे आदर्श मानते है। पूज्य गुरुदेवश्री इसे गर्वोक्ति नही, यथार्थ मानते हुए यदाकदा व्यक्त करते रहे है कि भारतीय दार्शनिक, योगी व मुनिगण मन की स्थूल वृत्तियो पर नियत्रण के मार्ग ही नही खोजते रहे है, उन्होने इस सबंध मे प्रत्यक्ष और सार्थक प्रयोग भी किये है। इस कला का अभ्यास करने के लिए ये साधक निर्जन और दुर्गम वनो-पर्वतो मे खोये रहे है। आज के घोर भौतिकतावादी युग मे भी साधक इस दिशा मे सक्रिय है, जिनका प्रयोजन मन की प्रवृत्तियो पर नियत्रण करना ही है। मन तो स्वभावत "शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध" की ओर आकर्षित होता ही है। इस प्रकार मन-मातंग जब विषय-वन मे स्वच्छंद होकर विचरण करना चाहता है, तब ही साधक की परीक्षा का क्षण आता है। यदि वह उस पर (ज्ञान का अंकुश लगा कर) पुन अपना नियन्त्रण करने मे समर्थ होता है तो उसकी सफलता लक्षित होने लगती है। ऐसा करने मे उसे सफलता मिलने के लिए जो एक और अनिवार्य तत्व है, वह है.

"मनोविजेता, जगतोविजेता" (मन का विजेता सारे संसार पर विजय पानेवाला होता है) इस सिद्धान्त मे उसकी गहन आस्था हो और इस लक्ष्य की प्राप्ति उसके जीवन की परम आकाक्षा हो। वह इस कथन के मर्म को वस्तुत' हृदयंगम करे कि मन को मुट्ठी मे करके सारे ससार को मुट्ठा मे किया जा सकता है—यह अनिवार्य है। फिर तन्मय प्रयासो की सफलता असंदिग्ध है।

प्रश्न यह भी है कि मन पर नियत्रण स्थापित कर लेने से लाभ क्या है? वास्तविकता यह है कि जिसने अपने मन को वश मे कर लिया जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सफलताएँ उसकी प्रतीक्षा करती है। उसे कही राजा का मुँह नही देखना पडता। गुरुदेव-श्री की मान्यता है कि जीवन एक सघर्ष है। यह संघर्ष विकारो और वासनाओ के विरुद्ध है, जिनसे इन्द्रियो को आमना-सामना

करना होता है। इन्द्रियाँ हमारे पक्ष मे युद्ध करनेवाली सेना के शूरवीर है, किन्तु मन इस सेना का नायक है। यदि सेनापति ही शस्त्र डाल दे तो परिणामत सेना का निस्तेज हो जाना भी स्वाभाविक ही है। यह सेना और सेनापति की ही नही, राजा (आत्मा) की भी पराजय होगी। मनोबल की कितनी महती भूमिका है ? ऐसी अवस्था मे मनकी सबलता कितनी महत्वपूर्ण है ? यह सबलता मन मे तभी आ सकती है जब उसे स्वकेन्द्रित रखा जाय, उसे मिथ्या विषय कामनाओ की ओर अग्रसर न होने दिया जाय–यही मन पर नियत्रण है।

यदि मन एकाग्रता के साथ षड्रिपुओ से युद्ध करता रहे तो इन्द्रियो के लिए वह प्रेरक बना रहता है। यह रणोल्लास शत्रुओ के लिए पराजय का पर्याप्त कारण बन जाता है। मन की यह विजय आत्मा की भी विजय होगी। लोक–परलोक मे उसे कीर्तिकिरीट से विभूषित किया जायगा। और मोक्ष, जो प्राय दुर्लभ माना जाता है, ऐसी स्थिति मे सर्वथा सुलभ हो जाता है।

मन के इस मोल को पूज्य गुरुदेवश्री ने न केवल पूरी गहराई तक स्वयं समझा, अपितु प्रत्यक्षतः इसके सफल परीक्षण द्वारा श्रद्धालु श्रावक समाज को प्रभावपूर्ण ढंग से समझाया भी है। और इस प्रकार असंख्य भटके हुए जीवन–यात्रियो को आपश्री का दिशासकेत मिला है और उनमे सन्मार्ग पर अग्रसर होने की क्षमता उत्पन्न हुई है।

आपश्री ने जनमानस मे यह भलीभाँति स्पष्ट किया है कि आत्मा को बंधनो मे डालनेवाला भी मन ही है और वही उसे मुक्त भी कर सकता है। भारतीय दार्शनिको के स्वर मे स्वर मिलाकर गुरुदेवश्री द्वारा दिया गया वह संदेश इस तथ्य को भली-भाँति प्रतिपादित कर देता है:

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।"

आपश्री की मान्यतानुसार मन ही मानवका शत्रु भी है, मित्र भी। मन ही मानवजीवन को मलिन क्षेत्रो मे डालकर उसके

पतन का कारण बन जाता है। ऐसी स्थिति मे वह उसका शत्रु है। और स्पष्ट है कि मन ही जीवन को उत्कर्ष के मार्ग पर चढ़ाकर उसका श्रेष्ठ मित्र और हितैषी भी सिद्ध हो सकता है। एक ऐतिहासिक प्रसंग इस सम्बन्ध मे प्रमाण प्रस्तुत करता है। एक बार यूनान के महान दार्शनिक सुकरात से प्रश्न किया गया कि आपका सबसे बड़ा मित्र कौन है? मुस्करा कर उन्होने उत्तर दिया—'मन'। पुन प्रश्न किया गया कि आपका सबसे बड़ा शत्रु कौन है? इस बार भी उनका उत्तर वही था—'मन'।

सुकरात से पूर्व भगवान् महावीरने भी इसी सिद्धान्त को प्रस्थापित किया था। "अप्पा मित्त म मित्तं च दुपट्टिओ सुपट्टियो।"

आत्मा ही जब त्याग-वैराग्य की पगडंडियो पर मन के माध्यम से चल पडता है, तो वह आत्मा का मित्र है और जब मन आत्मा को बहका कर वासना के पंक मे फँसा देता है तो यही मन उसका शत्रु हो जाता है।

*

मनोनिग्रह की कला

"वही मनुष्य श्रेष्ठत्व धारण कर पाता है जो मन को अचंचल बनाकर उसकी विशृंखलित शक्तियो को संगठित करने की कला में प्रवीण हो ।"

कदाचित् कल्पना की उड़ान संसार की द्रुततम गति है । यह कल्पना मन की सहज प्रवृत्ति अथच दुर्बलता है—यही इसकी चचलता है । मानसिक चाचल्य सदा असन्तोप का जनक रहता है और अपनी विचरणशीलता का सहयोगी बनाकर वह मनुष्य की प्रवृत्तियो को नाना विषयो मे भटकाता रहता है । 'मन को काहै मूड़िये' जैसी सूक्तियाँ मन की इस चंचलता के मर्दन का ही सन्देश देती है । प्रतिक्षण परिवर्तित लक्ष्यो, कामनाओ और आकाक्षाओ की खान बन कर यही मन स्वयं तो अस्थिर रहता ही है, अपने स्वामी को भी अस्थिर, अन्यमनस्क, अव्यवस्थित और दुर्बल बना देता है । वस्तुत ऐसे मन का निग्रह अत्यावश्यक, अपितु अनिवार्य है ।

वस्तुत. मन तो दर्पणवत् है । इसे किसी भी दशा मे क्यो न रखा जाय, कोई न कोई प्रतिच्छाया इसमे अकित रहती ही है । दर्पण कभी ·छबिरहित नही होता । उसे बिम्बरहित करने के प्रयास मे उलट कर भी रख दिया जाय, तब भी तल की प्रतिच्छाया को वह ग्रहण कर लेगा । मन को भी विषय-कामनाओं से सामान्यतः रिक्त नही रखा जा सकता । फिर ये विषय भी तो शतधा रूप मे प्रकट होकर राशि-राशि आकर्षण का कारण बढाते है । फिर भला दुर्बल मन का चाचल्य स्वाभाविक क्यो न हो ? गुरुदेवश्री प्रायः मन की इस अति चंचलता की व्याख्या करते हुए निम्न उद्धरण देते रहते है :

मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनोमरुत ।
मा'मदो मर्कटोमत्स्यो, मकाराः दश चंचला ॥

अर्थात्—मन, मधुकर, मेघ, मानिनी, मदन, मारुत, मा—लक्ष्मी, मद, मर्कट और मत्स्य—ये १० मकार चंचल माने गये है । स्पष्ट है कि इस विशेषता मे 'मन' शिरोमणि है । मन की गति वायुयान, रॉकेट सभी से तीव्र है । कल्पना के पंख फैलाकर, नेत्र निमीलित कर, मन सारे ब्रह्माण्ड का विचरण कर लौट आता है—क्षण भर मे ही । प्रकाश प्रतिक्षण १ लाख ८६ हजार मील की यात्रा कर लेता है । विद्युत का वेग २ लाख ८८ हजार मील प्रतिक्षण है, किन्तु मन की गतिशीलता की दर ४०००० से ७० नील मील तक होती है । गणना थक जाती है । यही कथन उपयुक्त लगता है कि कल्पना की गति तो कल्पनातीत है । मानसिक चाचल्य मनुष्य की वर्षो की साधना के सुपरिणाम को क्षणार्ध मे ही ध्वस्त कर देता है और पतन के असमाप्य क्रम को प्रारंभ करने को अपार क्षमता का व्यावहारिक प्रदर्शन करने को वह सदा तत्पर रहता है । गुरुदेवश्री ने अपनी इस मान्यता की छाया एक गुजराती काव्याश मे भी देखी है—

अजब छे वेग आ मननो, गजब छे शक्ति पण भारी ।
घणा ज्ञानी अने ध्यानी, गया मन शत्रु थी हारी ॥

आक्रमणकारी बाह्य शत्रु से मनुष्य सावधान रहने, उसके आक्रमण को पराजित करने मे तो प्रयत्नशील रह सकता है, किन्तु उस शत्रु का क्या करे, जो स्वयं उसमे ही छिपा बैठा है ? और वह भी मैत्री का मुखौटा लगा कर । ऐसी स्थिति मे गुरुदेवश्री इस अनिवार्यता के समर्थक है कि इस बहुरुपिये मन को सशक्त होने ही नही दिया जाय । इसके स्वभाव मे है कि मित्र बनकर वह स्वामी बन बैठता है । अत कल्याण इसी में है कि इसके वशीभूत होने के स्थान पर मनुष्य इसे स्वयं अपने ही वश मे रखे, इसकी वल्गा को दृढता के साथ खीचकर रखे । भला कोई

अश्वारोही अपने अश्व को अनियंत्रित रखना श्रेयस्कर समझ सकता है ?

वही मनुष्य श्रेष्ठाचरण कर सकता है जो मन को अचंचल वनाकर उसकी निहित, विशृंखलित शक्तियो को संगठित करने की कला सीख जाय। यही संगठन मन के हितैषी रूप को अभिव्यक्ति दे पाता है। आपश्री इसकी अनिवार्यता का सघन अनुभव करते हुए मन के कार्यक्षेत्र संवंधी दोनो अतियो को अपनाने के विरोधी हैं। मन को विषय-कामनाओ के क्षेत्र से लौटा लाना जहाँ अनिवार्य है, वहाँ यह भी अनिवार्य है कि उस पर नियंत्रणाधिक्य इतना भी न हो कि मन सर्वथा वन्दी वनकर निष्क्रिय ही हो जाय। संकल्प-विकल्प करना, चिन्तन-मनन करना, मन का सहज धर्म है। यदि इस क्षेत्र मे उसे सक्रिय नही होने दिया गया तो विवश होकर त्याज्य क्षेत्र (जो अधिक सुगम भी है) की ओर उन्मुख हो जायगा। मन को शून्य रूप मे तो रखा ही नही जा सकता। मन अपनी शक्ति के उपयोगार्थ मार्ग अवश्य ही खोजेगा। आवश्यकता इस बात की है कि मन की श्रेष्ठ शक्तियो को पहचान कर उनका संगठन किया जाय और उन्हें सन्मार्ग पर लगा दिया जाय।

पूज्य गुरुदेवश्री के मतानुसार मानसिक शक्तियो को एक-जुट करना मन को साधने की दिशा मे प्रथम और प्रमुख चरण है। रविरश्मियाँ जिस प्रकार लैंस के केन्द्र विशेष पर संकलित होकर ऊर्जा उत्पन्न करने मे समर्थ हो जाती है—विखराव के कारण अर्थहीन मनोवृत्तियाँ भी उसी प्रकार सिमटाव को पाकर विशेष क्षमतायुक्त हो जाती है और इसी दशा मे मन ईश्वरोन्मुख हो पाता है। आपश्री योगियो द्वारा प्रतिपादित योग के इस अर्थ से सर्वथा सहमत हैं कि चित्त-वृत्तियो को अन्य सभी दिशाओ से लौटा कर उन्हे परमात्मा अथवा शुद्ध आत्मा से सम्वद्ध करने की प्रक्रिया ही योग है। ऐसी अवस्था मे जव मन परमात्मा मे लीन हो जाता है तब वृत्तियाँ स्वतः ही बिखराव से रक्षित हो जाती हैं। यही मन की साधना का वास्तविक रूप है।

मानसिक वृत्तियो के केन्द्रीकरण का ही पर्याय एकाग्रता है। एकाग्रता ही सत्य मे सर्वसाफल्यकी जननी है। महान उपलब्धियो के मूल मे यही एकाग्रता सदा विद्यमान पायी गयी है। बिखराव की स्थिति मे मन का सशक्त होना असभव हो जाता है और यह दौर्बल्य चाचल्य को उत्पन्न करता है जिसके परिणाम प्रकट होते है — पराभव, निष्फलता, अपयश, अनुपलब्धि एवं अकर्मण्यता के रूप मे। मन किसी भी लक्ष्य को केन्द्र न मान सकेगा, एक अजीबसी भटकन मे ग्रस्त होकर अनवरत रूप से त्रस्त और अव्यवस्थित रहेगा। सर्वत्र अतृप्ति ही उसे हाथ लगेगी। फिर भला ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा किसी श्रेयस्कर कार्य के सम्पन्न होने की आशा ही कैसे की जा सकती है? पूज्य गुरुदेवश्री इस प्रसग मे प्रायः डा० एस० डी० कॉलरिज का दृष्टान्त प्रस्तुत किया करते है, जो अद्भुत प्रतिभा का स्वामी था, किन्तु एकाग्रता का भयंकर अभाव उसके लिए व्यवधान बना रहा। उसने ४० हजार निबध लिखे थे जो श्रेष्ठ कोटि की सामग्रीयुक्त थे। किन्तु यह जानकर आश्चर्य होता है कि उनमे से एक भी पूर्ण नही था। मानसिक अस्थिरता के कारण ही तो वह किसी विषय पर स्वयं को केन्द्रित नही कर सका। वह महान प्रतिभा उचित कीर्ति से सर्वथा वंचित रह गयी।

उपर्युक्त विवेचन इस तथ्य का सबल साक्षी है कि मानसिक स्थैर्य अथवा एकाग्रता हमारे लिए एक अत्यावश्यक तत्त्व है। इस योग्यता की प्राप्ति भी कदापि असभव नही कही जा सकती, न ही इसकी प्रक्रिया दुर्गम है। मन को साधने के लिए आसक्ति पर प्रहार किया जाना आवश्यक है और इस निमित्त हमे वैराग्य एवं अभ्यास के अस्त्रो का प्रयोग करना चाहिये। आपश्री ने इस सन्दर्भ मे सदा इस अनिवार्यता पर बल दिया है कि मन पर राग-द्वेष, माया, लोभ, मोह आदि की जो पर्ते जम जाया करती है, इस आच्छादन को दूर किया जाय, जो मन को शुद्ध दिशा का दर्शन ही नही होने देती। इस प्रकार निर्मलता का अनवरत

निर्वाह भी उतना ही आवश्यक है। आपश्री यह मानते है कि मन को मात्र निर्मल कर लेना ही पर्याप्त नही है, इस निर्मलता का अनवरत निर्वाह भी उतना ही आवश्यक है । प्रकरण की समाप्ति पर आपश्री की प्रभावपूर्ण एव काव्यात्मक उक्ति के प्रस्तुतीकरण द्वारा विषय की पुनर्स्पष्टता अभीष्ट मानता हूँ – "आप निश्चिन्तता से मन के दीपक मे श्रद्धा की बाती और सद्-विचारो का तेल डालकर उसे जलाइये और प्रतिक्षण यह देखते रहिये कि कही वासना की वायु का झोका उसे बुझा न दे।"



जन्म के पश्चात् मरण और मरण के पश्चात् पुनर्जन्म – आत्मा की ये अभिनय-भूमिकाएँ क्रमिक रूप से संस्कृति की रंगशाला मे सनातन रूप से प्रस्तुत होती रही है । यह आत्मा का मात्र अभिनय है । न जन्म यथार्थ है और न ही मृत्यु । जन्म आत्माधारक शरीर के रूप मे पंचतत्त्वो का संगठन और मरण तनका विघटन मात्र है – वस, इसके अतिरिक्त कुछ भी नही । इनमे से न कोई श्रेय है, न हेय। एक ही सिक्के के दो पहलू है—जन्म और मरण ।

गुरुदेवश्री का इस विषय मे स्पष्ट अभिमत रहा है कि यह हमारा मिथ्या भ्रम है कि हम जीवन को प्रिय माने और उसके प्रति मोह के भाव को प्रेरित करे और मृत्यु से भयभीत रहे, उसे अप्रिय माने । इस व्यामोह के कारण हम जीवनाभिलाषी रहते है और सामान्यतः मरण के वरण हेतु कोई तत्पर नही दिखायी देता । यह वस्तुतः सासारिक सुखोपभोग के प्रति हमारे मन की आसक्ति की ही अभिव्यक्ति है । अन्यथा किसी खोटे सिक्के का क्या एक पहलू ही खोटा होता है और दूसरा नही ?

यह हमारा अज्ञान ही है जो मृत्यु से हमे भयभीत रखता है और जीवन के प्रति आकर्षण को परिपोपित करता है । रोग, शोक, दैन्य, उपेक्षा, दौर्बल्य आदि की आपद् यातनाओ के व्यूह मे घिर कर भी जीवन की लालसा से मुक्त न हो पाना मानव का सहज स्वभाव हो गया है । भीड़ भरी सडक के किनारे एक अत्यन्त दुर्वल मरणासन्न वृद्ध पडा हुआ था, उसमे रंच मात्र हिल-डुल सकने की शक्ति नही थी । एक भारी ट्रक घरघराता हुआ ज्यो ही समीप आया, वह विद्युत् वेग से उछलकर पटरी पर आ गया । जीवन की ऐसी तीव्र अभिलापा और मरण से हर संभव वचाव की इतनी तत्परता हममे बनी रहती है । जैसा कि स्पष्ट किया ही जा चुका है, पूज्य गुरुदेवश्री की मान्यता है कि यह मृत्यु के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञता का परिणाम है ।

सामान्यतः यह अनुभव किया जाता है कि मृत्यु अन्त है, जब कि वास्तविकता यह है कि यह तो मात्र परिवर्तन का साधन है। मनुष्य मे जो कुछ मूल्यवान है, वह तो आत्मा है, इस आत्मा का धारक यह भौतिक शरीर नही। फिर मृत्यु के कारण इस देहका ही जब अवसान होता है, तो उसमे भय अथवा चिन्ता का क्या प्रसंग है? मृत्यु से आत्मा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही होता है। आत्मा तो अमर है, अनश्वर है। जैसे अनेक कक्ष लगातार पंक्ति मे वने हुए हों और एक कक्ष से आगामी कक्ष मे जाने के लिए द्वार हो—कुछ इस प्रकार इस आत्मा की यात्रा है। एक कक्ष त्याग कर द्वार मे प्रवेश करना जीवन की समाप्ति और मृत्यु को प्राप्त करना है। किन्तु जिस प्रकार द्वार-देहरी मे कोई बना नही रह सकता, उसे पार कर आगामी कक्ष मे प्रवेश किया जायगा, उसी प्रकार मृत्योपरान्त नव जीवनका समारंभ होगा। तो मृत्यु समापन कहाँ है? यह तो आत्मा के लिए एक नये क्षेत्र का सृजन है। मृत्यु एक जीवन की समाप्ति और अन्य जीवन के आरंभ के मध्य की एक कड़ी है, संधि-स्थल है। अस्तु, मरण भय का विषय नही है।

मरण तो जराजीर्ण जीवन के नवजीवन मे, रूपान्तरण मे आत्मा का सच्चा सहयोग है। और इस प्रकार गुरुदेवश्री मरण को आत्मा के लिए हितैषी मानकर चलते है। आपश्री इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया करते है कि हमारे मलिन और जीर्ण वस्त्रो को उतार कर नये आकर्षक वस्त्र पहनानेवाला व्यक्ति हमे प्रिय होगा; वह हमारा शत्रु नही, मित्र होगा—इस प्रकार मरण का आत्माके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार रहता है। आपश्री द्वारा किये गये विवेचन के आधार पर यह प्रकट होता है कि मनुष्य को अपने वर्तमान शरीर और इस माध्यम से अपने परिवेश के प्रति घना मोह हो जाता है और इस कारण मृत्यु उसके लिए शोक-जनक घटना होती है, किन्तु यदि श्रेष्ठतर की प्राप्ति के लिए निम्नतर का उत्सर्ग करना पडता हो तो विवेक अवश्य ही उसकी अनुमति देगा। फिर मरण अवश्यंभावी भी है, इसे टाला नही जा सकता —

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर् ध्रुव जन्म मृतस्य च ।

पूज्य गुरुदेवश्री भारतीय संस्कृति के निष्कर्ष रूप मे भी यही अनुभव करते है कि मरण जीवनरूपी वृक्ष का फल है, जो वीज प्रदान कर पुन: नये जीवन-वृक्ष का जनक वनता है । यह तो महानिद्रा है जो जीवन-यात्रा की थकान और शिथिलता का हरण कर नवीन शक्ति, स्फूर्ति और ताजगी देती है ।

इतर महत्व

मनुष्य अजर नही है । आयु-विकास के क्रम मे वह अवश्य ही वार्धक्य को प्राप्त करता है और रोग, दौर्वल्य आदि का केन्द्र वनना भी स्वाभाविक ही है । ऐसी स्थिति मे यदि मरण का अस्तित्व न होता तो क्या यह जगत् कुरूप नही हो गया होता? नवीन सौन्दर्य के निमत्रक इस मरण के अभाव मे क्या संसार एकरस होकर ऊव का विषय नही हो गया होता?

इसके अतिरिक्त मरण इस जीवन मे किये गये कर्मो की फलप्राप्ति का प्रकरण मनुष्य पर नियंत्रण रखने मे सफल रहता है । भावी अनिष्ट की आशंका से भीत मनुष्य सतकर्मो की ओर प्रेरित रहता है। मरण मनुष्य को पाप से वचानेवाला एक प्रभावकारी एवं सशक्त साधन है । पूज्य गुरुदेवश्री इस प्रसंग मे प्राय: कहा करते है

मौत जव तक नजर नही आती,
जिन्दगी राह पर नही आती ॥

पूज्य गुरुदेवश्रीने गहन मथन के उपरान्त जिस नवनीत की प्राप्ति की है और सर्वजनहिताय स्वभाववश जिसका सदा वितरण किया है, वह यही है कि मरण आत्माको नवीन क्रांति प्रदान करनेवाला अलकरण है, सत्कर्मो हेतु मनुष्यके लिए प्रेरक है । अत: इससे भयभीत होना व्यर्थ है । आवश्यकता इसी वात की है कि हम इसके वास्तविक स्वरूप को पहचाने, फिर मृत्यु को हम भी हमारे मित्र के रूप मे स्वीकार कर लेगे ।



अपरिग्रह-वृत्ति निर्भयता व निःशंकता का प्रवेश-द्वार है

पूज्य गुरुदेवश्री अपरिग्रह को व्यष्टि एवं समष्टि के हित सर्वमगलविध समर्थ मंत्र मानते हैं। आपश्री के मतानुसार अपरिग्रह वृत्ति समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और जाति, नगर और गाँव, प्रान्त और प्रदेश — सभी के लिए आनन्ददायिनी है। वर्तमान अभिवर्धित सुख-सुविधाओ के युग मे अपरिग्रह का अकुश ही समाज के अभावो के हाहाकार से रक्षा कर सकता है। यह विषमता के मार्ग मे दृढ अर्गला है, दुख-दैन्य और हीनता के लिए यह एक खुली ललकार है।

आपश्री अपरिग्रह वृत्ति को हृदय के गहन तल मे स्थित नि:स्वार्थ भाव की सुरुचिपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकारते हैं। आपश्री इस परम पवित्र प्रवृत्ति के महत्व को इस प्रकार प्रतिपादित किया करते हैं कि यह चिन्ता के लिए प्रेरित करता है, किन्तु चिन्ता स्वयं के लिए नही, अन्य सभी के सुखी जीवन के लिए। वस्तुतः यह लोभहीन वृत्ति व्यक्ति को देवतुल्य सद्‌गुणो का सद्म बनाने मे सक्षम होती है। संसार के प्रति बन्धुत्व का भाव तो अपरिग्रह का अनुगामी होता ही है, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, वैमनस्य आदि भी क्रमशः निस्तेज होते होते समाप्त हो जाते हैं। सारी मनुष्य जाति यदि इस मंगलकारी आचरण को अपना ले तब तो कहना ही क्या? यदि अधिकाश भी ऐसा करने मे समर्थ हो जायँ तो पृथ्वीतल स्वर्ग के लिए भी कदाचित् डाह का विषय बन जाय। अन्योन्याश्रय, पारस्परिक सहयोग की भावनाएँ ऐसे जगत् में परम बलवती हो जाती है और किसी एक का कष्ट केवल उसी का नही रह पाता – वह सवका हो जाता है। "सव मे मैं और मुझमें सव" की सर्वजनहिताय शुभ नीति का तेजोमय सूर्योदय

है। यह अपरिग्रह जो द्वैतभावना अथवा परायेपन के तिमिर को छिन्न-भिन्न कर देता है, आत्मीयता के उज्ज्वल आलोक मे समग्र मानवजाति के लिए मानवोचित व्यवहार के सुमार्गो को स्पष्ट द्रष्टव्य कर देता है ।

अपरिग्रह जटिल नही – दुर्गम नहीं

अपरिग्रह व्यक्ति-व्यक्ति के आचरण का एक ऐसा अमृत-सूत्र है जो जगत्-कल्याण-चक्र की धुरी वनता है । जितनी महान और विराट् इस सूत्र की भूमिका है उतना ही सुगम और सुव्यवहार्य भी है । लेश मात्र भी जटिलता अथवा दुर्गमता इस विशिष्ट आचरण-मार्ग मे नही, यही इसकी विशेपता है। राजस्थान केसरी पूज्य गुरुदेवश्री ने अपरिग्रह का गहनता के साथ तात्विक चिन्तन किया है और इस परिणाम पर पहुँचे है कि परिग्रहवृत्ति का अर्थ मात्र अमुक वस्तुओ को ग्रहण कर लेना ही नही है । यदि यह 'ग्रहण' ही परिग्रह है तो जीवमात्र को आजीवन न्यूनतम आवश्यकता-पूर्ति के लिए कुछ तो ग्रहण करना ही पड़ता है, चाहे वह वीतरागी पुरुप ही क्यो न हो । निष्परिग्रह-शिरोमणि भगवान् महावीर ने इस परिग्रह-सीमान्तर्गत नही स्वीकारा है । भगवान के निर्णय को शास्त्रकारो ने निम्नानुसार ध्वनि दी है

जं पि वत्थं व पायं वा, कंवलं पाय पुच्छण ।
तं पि सज मलज्जट्ठा, धारति परिहरति य ॥
न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्त महेसिणा ॥

वस्त्र, पात्र, पादपोछन, कंवल, रजोहरण आदि उपकरण जिनका मुनिजनो द्वारा सयम-यात्रा व लज्जावरण के प्रयोजन से प्रयोग एवं धारण किया जाता है—भगवान् ने उसे परिग्रह नही बताया ।

वस्तुत ग्रहण की प्रक्रिया मे पदार्थ अथवा उसके प्रकार नही, अपितु इस ग्रहण के आधार रूप मे जो मनोवृत्ति है उसी से

उसके परिग्रह होने अथवा न होने का निर्णय किया जाता है। ऐसी अवस्था मे निम्न उक्ति हमारी सहायता करती है :

'परिसमन्तात् मोहबुद्धया गृह्यते संपरिग्रह'

किसी का ग्रहण यदि मोह-बुद्धि-वश, आसक्तिपूर्वक हो तो यही परिग्रह है। यही कसौटी भगवानने भी निर्धारित की थी "मूर्च्छा ही परिग्रह है।" अर्थात् परिग्रह सबंधी निर्णय करते समय यह महत्त्वपूर्ण नही कि ग्रहण किस वस्तु का किया गया है, अपितु यह है कि वह "किस" भावना के साथ किया गया है। शब्दान्तर के साथ यह कहा जा सकता है कि परिग्रह का सीधा संबध किसी पदार्थ से नही, आत्मा से है। गुरुदेवश्री की मान्यता है "किसी भी निर्जीव या सजीव पर, यहाँ तक कि अपने शरीर, अपने विचारो, मान्यताओ, सम्प्रदाय, परम्पराओ आदि मे से किसी पर भी आत्मा मे आसक्ति उत्पन्न हुई, तो माना जायगा कि परिग्रह वृत्ति आ गयी।" परिग्रह सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन अपरिग्रह वृत्ति के स्वरूप के स्पष्टीकरण मे हमारा सहायक है। पदार्थो का अनावश्यक संग्रह अर्थ-प्राप्ति अथवा अन्य स्वार्थसिद्धि मे जब किया जाय और इसके इस परिणाम की उपेक्षा की जाय कि इस कर्म से अन्य जन अभावग्रस्त होकर पीड़ित और कष्टित होगे—यह परिग्रह है और इसके विपरीत आचरण अपरिग्रह है। अपने किसी ग्रहण-कार्य से किसी अन्य को कष्ट न हो, इस दृष्टि के साथ जब न्यूनतम, अनिवार्य आवश्यकता-पूर्ति योग्य पदार्थो को ही अपनाया जाय तो यह अपरिग्रह है। यह अपरिग्रह-भाव व्यक्ति में सन्तोप का भाव जागृत करता है जो मानसिक शान्ति का जनक होता है और यह शान्ति मन को अविचलित और निर्मल बनाये रखती है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने अपरिग्रह को इस प्रकार की व्याख्या दी है कि यह एक ऐसा पवित्राचरण है जो व्यक्ति को स्वकेन्द्रित होने से बचाता है। उसे परचिन्ता के लिए सचेत करता है और 'जीने' के साथ साथ 'जीने दो' के महत्त्व को भी समझाता

है । उसके मनमे यह अभिवृत्ति दूसरों के सुखो मे नही दुःखो मे हिस्सेदार बनने की प्रेरणा जगाती है । यह एक ऐसा मार्ग है जिस पर चल कर सुगमता के साथ मानवमात्र की समानता के सिद्धान्तको साकार किया जा सकता है । 'सम्पन्न' और 'विपन्न' (Haves and haves not) जैसे वर्ग, जो अमानुषिक व्यवस्था के प्रतीक है, इस अपरिग्रहसे क्रमसे अन्तर्धान हो जाते है । इस प्रकार समस्त मानवजाति के लिए सुख और शान्ति का सन्देश है यह अपरिग्रह वृत्ति ।

अपना देश : अपरिग्रह के सन्दर्भ मे

इतिहास साक्षी है कि अपना देश भारतवर्ष सदा से ही त्याग और उत्सर्ग की उदार भावनाओ से विभूषित रहा है । यह वह भूमि है जिसने उच्च कोटि के त्यागी, निष्परिग्रही, निर्लोभी सन्त, महात्माओ और ऋषि-मुनियो को जन्म दिया है, जिन्होने जनमानस को अपरिग्रह के महान सन्देश से सिक्त किया है । भगवान् महावीरसे महात्मा गाधी तक ऐसे महापुरुषो की यशस्वी एव सुदीर्घ परम्परा रही है ।

आज भी राष्ट्रीय सन्त विनोबा भावेका अत्यन्त प्रेरणादायी आचरण हमारे समक्ष है जिन्होने सर्वस्व त्याग कर 'दरिद्रनारायण' की सेवा को अपना अछूट लक्ष्य मान रखा है और विविध प्रकारके दानो द्वारा अपरिग्रह की ओर उन्मुख होने के लिए सहस्रो को प्रेरित कर रहे है। अपरिग्रहव्रत के साकार स्वरूप से हजारो जैन सन्त देश के प्रत्येक भाग मे इस मगल मंत्र का प्रभावकारी ढंगसे और स्वय का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रचार मे व्यस्त है । यह सब तो है, किन्तु पूज्य गुरुदेवश्री का अनुभव रहा है कि आज अपरिग्रह की व्याधि जितनी भयंकर रूप मे व्याप्त है उतनी कदाचित् किसी काल मे नही रही । अत इस ओर अधिकाधिक जन को प्रेरित करने की तीव्रतम आवश्यकता है । अब तक की यह समृद्ध परम्परा उन्मूलित होती चली जा रही है । सर्वत्र संचय, लोभ, अनुचित लाभ की कामना, छीना-झपटी और आर्थिक अराजकता

का बोलबोला है। परिणामत: आक्रोश और असन्तोष, अशान्ति और विग्रह की अपूर्व स्थिति बनी हुई है। कोटि-कोटि प्रकार की अनैतिकताएँ इसी परिग्रह-वृत्ति की सन्तति रूप मे विकसित होती चली जा रही है और पतन की ओर असमाप्य यात्रा में सारा राष्ट्र व्यस्त है। नैतिक मूल्यो का विघटन अपने चरम पर पहुँच रहा है। किसी को किसी अन्य के हितों की चिन्ता नही है। दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी स्वयं के उत्तरोत्तर समृद्ध होते चले जाने की लालसा अति प्रबल होती चली जा रही है। इस घोर अनैतिकता के युग मे मानवीय मूल्यो की समस्या का निदान और सुख का सोपान यदि मिल सकता है, तो वह केवल अपरिग्रह व्रत की सच्ची धारणा के माध्यम से। यह एक ऐसा आत्मानुशासन है जो सारे देश के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

अभिलाषा : अपरिग्रह हेतु बाधक तत्त्व

पूज्य गुरुदेवश्री की मान्यतानुसार मानवमन अभिलापाओ की खान है। अभिलाषाएँ कभी तुष्ट नही होती, पूर्ण नही होती। एक अभिलाषा समाप्त होते-होते अनेक अन्य अभिलाषाओ को जन्म दे जाती है। आज के भौतिकतावादी युग मे यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। सर्वसामान्य की जीवन संबंधी आवश्यकताएँ द्रौपदी के चीर की भाँति बढती ही चली जा रही है, कही छोर नही, कही इति नही। अभिलाषाएँ आकाश के समान है—अपार है—

"इच्छाहु आगाससमा अणंतिया"

अभिलाषाओ की इस अपारता के मूल मे मानव की लोभवृत्ति रहती है। और यह लोभ अपरिग्रह व्रत के मार्ग मे बलवान व्यवधान बनकर 'सच्चे सुख' और शान्तिका लाभ होने हो नही दे रहा है। क्या मनुष्य स्वयं अपने हित मे भी इस शत्रु से सचेत नही हो सकता?

व्यक्ति : आस का दास

सचेत हो क्यो नही सकता, किन्तु वह मिथ्या आशाओ और अभिलापाओ के जाल से स्वयं को मुक्त करने का इरादा

भी बनावे तब न? आज तो व्यक्ति अपनी ही इच्छाओ का दास बना हुआ है। मिथ्या मृगमरीचिका के अनुगामी आज के व्यक्ति पर ऐसी मत्तता सवार है कि इसकी असारता को वह हृदयंगम नही कर पा रहा। गुरुदेवश्री इसी को आज की सबसे बडी बाधा मानते है, जिसे दूर करने के कोटि-कोटि सद्प्रयत्न विफल होते जा रहे है। इस विफलता को आपश्री स्थायी तत्त्व नही मानते हं। शुभ की विजय अमुक दुर्दमनीय परिस्थितियो मे अस्थायी रूप से स्थगित भले ही रह जाय, किन्तु वह कभी भी असभव नही होती। मूलत आवश्यकता है अगाध आस्था के साथ निरन्तर प्रबोधन की। बाधाएँ एक दिन अवश्य ही परास्त होगी।

गुरुदेवश्री की मान्यता है कि इस भयंकर व्याधि का उपचार तभी संभव है जब जन-जन मे जागृति व्याप्त हो जाय। सभी अपरिग्रह के मोल को समझने लगे और परिग्रह के घातक रूप को पहचाने, तभी यह संभव है। परिग्रह न केवल असार, अपितु जघन्य पाप भी है जो नरक-प्राप्ति का कारण बनता है। गुरुदेवश्री अपनी इस धारणा के समर्थन मे तत्वार्थ सूत्र के निम्नाश का उल्लेख करते है:

'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुष'

अल्पारम्भ एवं अल्प परिग्रह को मानवजन्म-प्राप्ति का आधार मानते है। आपश्री का सन्देश है कि मानवदेहधारी का सर्व प्रथम कर्तव्य है अपरिग्रह को अपनाना। माया तो छाया के समान है। जब तक व्यक्ति इसे प्राप्त करने को ललकता रहता है यह दूर से दूर भागती चली जाती है, किन्तु जब वह इससे मुख मोडता है तो वह अनुगामिनी हो जाती है। तब उसे सतर्क और विवेकशील हो जाना चाहिये कि माया के जाल मे न फँसे। यही परिग्रह है जो सर्व सुखो का मूल मंत्र है। केवल धन-प्राप्ति या तदर्थ कामना ही परिग्रह नही है। गुरुदेवश्री परिग्रह की बडी विस्तृत सीमा मानते है। प्रतिष्ठा-प्राप्ति की कामना, स्वयं अपने ही शरीर के प्रति आसक्ति, परजनो मे रुचि, असत्य मान्यताओ

के प्रति लगाव आदि भी परिग्रह की परिधि मे ही आते है । प्रत्येक त्याज्य की कामना परिग्रह है और इससे छुटकारा अपरिग्रह । आपश्री अपरिग्रह को ही साधना का सच्चा सौन्दर्य मानते है और दृढ विश्वास रखते है कि जीवन का सच्चा आनंद, 'साधना की मुस्कान' मन पर अपरिग्रह के अंकुश-प्रयोग से सहज ही सुलभ हो जाती है । यह एक ऐसा मार्ग है जिसे अपनाने से प्रत्येक साध्य सध जाता है और जीवन आलोकपूर्ण हो जाता है ।

*

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

पूज्य गुरुदेव 'राजस्थान केसरी' श्री पुष्कर मुनिजी म० भारतभूमिके प्रति भक्तिभाव से सदा नमित, भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित, भारतीय दर्शन के तत्वद्रष्टा, भारतीय आदर्श की महिमा के मर्मज्ञ मनीषि है । स्वाध्याय की शक्ति से आपश्री ने संस्कृति के समस्त शुभ से साक्षात्कार किया है और श्रद्धा समर्थन करते हुए उसका सशक्त प्रचार किया है । हमारी संस्कृति मे कर्तव्य-निष्ठा का जो गरिमामय स्थान रहा है अपनी प्रभावपूर्ण वाणी के माध्यम से आप सदा उसका बखान करते रहे है । गंभीर अध्ययन और चिन्तन-मनन द्वारा इस प्रसंग मे आपश्री द्वारा निर्मित धारणा एक स्थल पर यो व्यक्त हुई है·

"हमारी सस्कृति सदा व्यक्ति को कर्त्तव्य-निष्ठ बनने की प्रेरणा देती रही है । कर्त्तव्य जीवन का स्वर्णिम प्रकाश है । जीवनरूपी सस्था का शिलान्यास, जीवन का सार-रूप नवनीत और अमरत्वदायी श्रेष्ठ रसायन निष्ठापूर्ण कर्त्तव्य ही है ।"

आगम–त्रिपिटक, वेद, उपनिपद् भारतीय साहित्य–कोष की सर्व अनुपम उपलब्धियो मे कर्त्तव्य के श्रेष्ठत्व का गान स्व-रित है । कर्त्तव्यनिष्ठा की प्रेरणा रामायण और महाभारत आदि महाकाव्यो के प्रधान स्वर है । सर्वत्र प्रतियुग मे इस महत्वपूर्ण तत्त्व की व्याख्या में वाणी और लेखनी व्यस्त रही है और सर्व सम्बोधित सज्जन सदा इसकी सरसता से सिक्त होते रहे है । यह सव तो है, पर द्रष्टव्य यह है कि आज व्यक्ति कितना कर्तव्यनिष्ठ है ?

गुरुदेवश्री का अध्ययन रहा है कि आज सर्वांश मे नही तो अधिकाश मे समाज की ओर से कर्त्तव्यनिष्ठा को मात्र मौखिक

महत्व मिल रहा है। यदि इस महती भावना को आचरण का आधार अंगिकार किया जाय तो न केवल आत्मकल्याण, अपितु जन-कल्याण के लिए भी यह महौषधि सिद्ध हो सकतो है। आपश्री का विवेचन प्रकट करता है कि अकर्त्तव्यग्रस्तता आज मानव द्वारा मानव की हानि का मूल कारण है। व्यक्तिकी उन्नति ही समाज का उत्कर्ष है और समाज की देन से लाभान्वित होने की कामना रखनेवाला व्यक्ति प्रत्युत्तर में यदि अपनी क्षमताओ द्वारा समाजहित के कर्तव्यो मे कार्पण्य बरतने लगे तो सामाजिक या राष्ट्रीय उत्कर्ष की संभावनाओ का धूमिल हो जाना स्वाभाविक ही है। अस्तु, अकर्तव्य-लिप्त मानव आत्महन्ता ही नही रहता, वह समष्टिगत अहित का कारण भी बनता है।

कर्त्तव्य-क्षेत्र

कर्त्तव्य-क्षेत्र मे कतिपय परिगणित विषय ही आते हो सो बात नही है। जीवन और जगत् का समस्त विराट् विस्तार कर्त्तव्य की क्रीड़ा-भूमि है। अति व्यापक है कर्तव्य का क्षेत्र। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि सभी मानवीय गतिविधियो के क्षेत्र कर्त्तव्य की पुकार से प्रतिध्वनित है। सभी दिशाओ से व्यक्ति के लिए कर्त्तव्यनिर्वाह का मौन निमंत्रण रहता है। यह व्यक्तिके नैतिक चैतन्य पर ही निर्भर करता है कि वह इसे अनसुना न करे। वस्तुत· कर्त्तव्य-गति का आधार स्व प्रेरणा ही बन सकती है। बाह्य शक्तियाँ इस दिशा मे प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह नही कर पाती। इतना अवश्य है कि जो अपने कर्त्तव्य-पूर्ति को सर्वोपरि प्राथमिकता देते चले जाते है वे परिणामत· महती उपलब्धियो के अधिकारी हो जाते है, उनका जीवन महान हो जाता है, साथ ही जगत्-कल्याण मे भी वे अविस्मरणीय योगदान करने मे समर्थ रहते है। किन्तु यह सभी अनायास अथवा आकस्मिक रूप से नही हो जाता। व्यक्ति निष्ठा के साथ, सायास कर्त्तव्य-पूर्ति की ओर उन्मुख हो, समस्त श्रद्धा भाव के साथ वह सतत संलग्न रहे तभी यह स्थिति उपस्थित हो सकती है। गुरुदेवश्री सखेद व्यक्त करते है कि मगल के इस महान

मार्ग से हम ममता त्यागते जा रहे है और अकर्त्तव्यो के बीहड मे भटक रहे है।

कर्त्तव्यो को निष्ठा के साथ पूरा करना अपने आप मे बड़ा ही सरस कार्य होता है । इसके अभ्यस्त बडे से बडा त्याग करके भी इस आनन्द से वचित नही रहना चाहते। ऐसे व्यक्ति चाहे अकेले हो, चाहे विशाल समाज के मध्य, भरे-पूरे परिवार से सम्बद्ध हो, चाहे एकाकी, सम्पन्न हो चाहे रक, युग और परिस्थिति के अनुसार जिसे अपना उपयुक्त कर्म समझेंगे उसे अनिवार्यत· और साथ ही सानन्द करते रहेगे। इस सम्बन्ध मे उनका दृढ व्रत होता है जो प्रायः अव्यक्त ही रहता है । इस मार्ग मे आनेवाला कोई भी व्यवधान इन्हे विचलित करने की क्षमता नही रखता । प्राय· ये बाधाएँ कर्त्तव्यपरायणो के लिए कसौटी होती है जो इन्हे सफल और सवल घोपित करती है।

कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ने एक स्थल पर व्यक्त किया है कि अपनी कर्तव्य भावना को वह किसी स्वार्थ या प्रलोभन के मूल्य मे कभी बेचता नही और न ही किसी दण्ड या अहित की आशंका से उसे त्यागता है । पुरस्कार की लालसा या भावी अनिष्ट की सभावनाएँ उनके लिए कर्त्तव्यपूर्ति के समक्ष तुच्छ होती है । उनके लिए तो कर्त्तव्य-पूर्तिका सन्तोप स्वत· ही पुरस्कार है जिसकी समता किसी के साथ स्थिर नही हो सकती । गुरुदेवश्री इस सिद्धान्त के समर्थन मे दृष्टान्त प्रस्तुत किया करते है पन्ना धाय का, राजा हरिश्चन्द्र का, जिन्होने निर्लोभ भाव से अपना दायित्व निभाया और उनका मन हर्पातिरेक से अभिभूत रहा । आपश्री के मन्तव्यानुसार कर्तव्यनिष्ठा अपार सच्चे सुख, सन्तोप और आनन्द की आधार होती है। वैद्य उपचार और परिश्रमपूर्वक सेवा करके रोगी को स्वस्थ कर देता है । उसका मन उस रोगमुक्त व्यक्ति को देख कर क्या आनन्दित नही होता? शिक्षक अपने शिष्य के साथ किये गये शिक्षण-श्रम को सफल देखकर, शिष्य को यश और सन्मानजनक स्थान पर आसीन देख कर क्या हर्षित नही होता?

सत्य तो यह है कि इस प्रसन्नता का स्थान कोई अन्य प्रसन्नता कभी ले ही नही सकती । इसके मूल मे परोपकार का गौरव, श्रम और अपनी भूमिका का भली प्रकार निर्वाह कर लेने का सन्तोष अधिक सक्रिय रहता है । साथ ही यह सुख उसी के लिए है, जो प्रत्युत्तर मे किसी प्राप्ति की कामना के बिना ही उपर्युक्त कर्म करता चला जाय । यही कर्तव्यनिष्ठा का यथार्थ रूप है । यही वह कसौटी है जिस पर कस कर सैकड़ों-हजारो कार्यो के झमेले में से निकाल कर व्यक्ति के कर्त्तव्य को अलग से पहचाना जा सकता है ।

गुरुदेवश्री ने कर्त्तव्य के विवेचन-क्रम मे एक और अति महत्वपूर्ण तत्त्व की ओर संकेत किया है । कर्त्तव्य केवल वे कर्म है जिनको अनिच्छा और विवशता के साथ नही किया जाता । स्वेच्छा कर्तव्य भावना के मूल मे रहे — यह एक अनिवार्य तत्त्व है । प्रत्येक कर्त्तव्यनिष्ठ के सम्मुख सफलताएँ दासियो की भाँति उपस्थित रहती है । कर्तव्य कभी छोटा या बड़ा नही होता । इसके साथ जुड़ी हुई निष्ठा की भावना स्वयं इतनी गरिमापूर्ण होती है कि राशि-राशि यश की प्राप्ति कर्तव्यपरायण व्यक्ति के लिए सहज संभव हो जाती है । गुरुदेवश्री भारतीय चिंतन का दृढता के साथ समर्थन करते हुए उसे दुहराते है—

"प्रत्येक मनुष्य को प्राण कण्ठ तक आ जाने पर भी कर्तव्य ही कर्तव्य करना चाहिये, अकर्तव्य नही — अर्थप्रेरित, भयप्रेरित या स्वार्थप्रेरित कार्य नही ।"

*

निश्चिन्तता के विधायक : सद्‌गुरु

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म, तस्मै श्री सद् गुरवे नमः ।।

गुरु का गौरव हमारे यहाँ सदा अत्युच्च रहा है । सद्‌गुरु ज्ञान-नौका पर चढाकर हमे भवसागर से पार करते है और कोई 'उतराई' नही चाहते । बेचारे क्षुद्रजन प्रतिदान का सामर्थ्य रखते भी कहाँ है ? इस महान उपकार का मूल्याकन ही सामर्थ्यातीत है । तथापि दीन भाव से कृतज्ञतापूर्वक हम सद्‌गुरु के चरणो मे श्रद्धा का समर्पण तो कर ही सकते है । यदि हम 'गोविन्द' के साथ परिचय करा देनेवाले गुरु के प्रति, जिन्हे गोविन्द की अपेक्षा भी प्राथमिकतापूर्वक नमस्य माना गया है, स्वयं को उपकृत अनुभव करे तो किसी सीमा तक हमारी भूमिका का निर्वाह हो सकता है ।

सद्‌गुरु के महत्व को प्रतिपादित करते हुए पूज्य पुष्कर मुनिजी म० ने एक स्थल पर निम्नानुसार विवेचन किया है.

"रात्रि का समय है । अधकार से भूमण्डल व्याप्त है । नेत्र सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी देख नही पा रहे है । सुनसान जगल है । एक यात्री उस घने अधकार मे चल रहा है और उसे मार्ग दिखाई नही दे रहा है । वह दो कदम आगे बढता है और दस कदम पीछे खिसकता है; पैर लडखडा रहे है । कभी नुकीले कॉटो से बिध जाता है, तो कभी कोमल कुसुमो के स्पर्श मे भी नागराज की कल्पना कर भयभीत हो जाता है, कभी उसे विचित्र पशुपक्षियो की भयकारी ध्वनियाँ सुनाई देती है । भीषण परिस्थितियो से उसका मन भयभीत है । बुद्धि चकरा रही है और मन विकल है । वह सोच नही पा रहा है कि मुझे किधर चलना चाहिये और मेरा गन्तव्य क्या है ? ऐसी स्थिति मे एक व्यक्ति हाथो मे सर्चलाइट लिए आए और उस पथिक से कहे—

घबराओ नही, भयसे कॉपो नही, मै तुम्हे तुम्हारे अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देता हूँ । चलो, इस चमचमाते हुए दिव्य प्रकाश मे । तो बताइये उस पथिक के अन्तर्मानस मे प्रसन्नता की कितनी लहरे तरगित होंगी ?"

वस्तुत: सद्गुरु की शरण पाकर प्रत्येक व्यक्ति इसी भाँति हर्षित और निश्चिन्त हो जाता है । उसकी सभी कठिनाइयाँ कट जाती है, बाधाएँ बह जाती है, भय भाग जाता है, अँधेरा अस्त हो जाता है, साहस सशक्त हो जाता है, स्फूर्ति संचरित हो जाती है, आशाओ का अम्बार लग जाता है, गन्तव्य गम्य हो जाता है और ज्ञेय का ज्ञान होने लगता है । क्या इस उत्कर्ष और हर्ष के कर्त्ता सद्गुरु की महिमा अभिव्यक्ति के दायरे मे घेरी जा सकती है ? गुरुदेवश्री के अनुसार आप और हम सभी यात्री ही है और आज के नही, अनादिकाल से है । भव के भयानक जगल मे अज्ञानान्धकार मे घिरे हम मार्ग नही पा रहे है । कभी हम स्वर्ग की चट्टान से टकरा कर लौटे और कभी नरक के गर्त मे गिरे । कभी हम नुकीले कण्टको से बिंधे, तो कभी हमने मानव-जीवन रूपी पुष्पों का स्पर्श पाया, कभी हमे काम-क्रोधादि शत्रुओ ने भयभीत किया । उसी समय प्रचण्ड आलोक सहित महामहिमामय सद्गुरु अवतीर्ण हुए । बस—अब यात्रा सुगम हो गयी । यह ध्रुव सत्य है कि—

"सद्गुरु शरण बिन,
अज्ञान तिमिर टलशे नही रे ।"

'गुरु' शब्द का विश्लेषण है भी इसी प्रकार से—गु=अधकार और रु=नाश करनेवाला, अर्थात् जो अज्ञान तिमिर को नष्ट करे, वह गुरु । गुरु तो ज्ञान और चैतन्यानल के अपार पुंज होते है । हमे उनसे एक चिनगारी भी मिल जाय तो उसे विकसित कर हमे आत्मकल्याण करना चाहिए । जैसे अग्नि के अभाव मे गृहिणी पडोसनके यहाँ से एक अँगारा ले आती है, उससे अपना चूल्हा जलाकर भोजन तैयार कर लेती है—कुछ वैसे ही सद्गुरु के आशीर्वाद में भी परम शक्ति निहित होती है ।

गुरुदेवश्री पुष्कर मुनिजी म० सदा एक और भी महत्वपूर्ण बिन्दुकी ओर सकेत किया करते है । सद्गुरु की कृपा-प्राप्ति मात्र से हमारा कोई मंगल संभव नही है । इसके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि इस उपलब्ध अवसर से लाभान्वित होने की योग्यता हम सब मे विकसित करे । इस संबंध मे आपश्री एक दृष्टान्त भी दिया करते है, जिसका आशय इस प्रकार है कि सद्गुरु तो पावर हाउस की भाँति है। ज्ञान—विद्युत् के अपार कोष है । सौभाग्य से बिजली की लाइन भी हमारे स्थान तक है, किन्तु यदि हमारा बल्ब ही फ्यूज है, तो उस ज्ञान-बिजली का लाभ हमे कैसे मिल सकेगा? या लाइन ही वीचमें टूटी हुई हो तव भी यही स्थिति होगी । जीवन मे मिथ्यात्त्व की विकृति वल्व के फ्यूज होने और विनय और विवेक का शिथिल होना लाइन के टूटे होने के समान है । सद्गुरु के आश्रय से मंगल-प्राप्ति की दिशा मे हमारे लिए इन सावधानियो का रखना परमावश्यक है, तभी कल्याणकारी ज्ञानालोक हमे मिल सकेगा । सद्गुरु की महिमा इस परमोज्ज्वल परोपकारी कृत्य के कारण सर्वत्र भव्यता के साथ वर्णित की गयी है । भगवान से भी अधिक महत्व सद्गुरु का आँका गया है :

हरो रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टै न च शिव. ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन, गुरुमेव प्रसादयेत् ॥

अर्थात—भगवान यदि रुष्ट हो जाय तो सद्गुरु बचा सकता है, पर सद्गुरु रुष्ट हो जाय तो भगवान की शक्ति नही जो उसे उबार सके ।

सद्गुरु का स्वरूप

सद्गुरु का जब इतना महत्त्व, इतना यश, इतनी शक्ति और इतना गौरव है, तो यह स्वाभाविक ही है कि इस सबका आधार भी अत्यधिक असाधारण हो । सद्गुरु के चरित्र, आचरण, व्यवहार, आत्मा शासन आदि सभी के सम्बन्ध मे कुछ ऐसी

असाधारणताएँ होती है जो उन्हे इस अपरिमेय शक्ति के स्वामीत्व का अधिकारी बनाती है । सद्गुरु के लिए अपेक्षित है कि :

"वह पॉच इन्द्रियों को वश मे करनेवाला हो — नवविधि ब्रह्मचर्य गुप्तियों को धारण करनेवाला हो — क्रोध, मान, माया, मोह, लोभ से मुक्त हो — अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह से युक्त हो — ज्ञान, दर्शन, चरित्र व वीर्य से सम्पन्न हो — ईर्ष्या, भाषा, ऐषणा, आदानभण्डमत्त और उच्चार प्रस्रबण खेल जल संस्थापनिका समिति तथा मन, वचन व काया का गोपन करनेवाला हो ।"

जैसे तेल दीपक को प्रकाशवान करता है, चाबी घडी को संचालित करती है, भोजन शरीर को पुष्ट करता है — वैसे ही सद्गुरु द्वारा जीवन मे प्रगतिशीलता संभव होती है । सद्गुरु व्यक्ति के जीवन का निर्माता होता है । वह जीवन को जैसा रंगरूप चाहे वैसा दे सकने का सामर्थ्य रखता है । वस्तुतः सद्गुरु जीवन का कलाकार होता है और इस नाते सबके लिए सदा प्रणम्य एवं श्रद्धेय रहा है ।

*

धर्म प्रधान है अतः भारतवर्ष महत्वमय है। हमारी संस्कृति व सभ्यता के कण-कण में धर्म समाया हुआ है।

भारतवर्ष विश्वजन के लिए सदा आदर और आकर्षण का कारण बना हुआ है। कभी कभी भारत के इस महत्व की पृष्ठ-भूमिके सम्बन्ध मे भ्रान्त धारणा विकसित होती दिखलायी देती है। पूज्य गुरुदेवश्री इससे तो सहमत है कि हमारा प्यारा देश कमनीय कलाओ का केन्द्र, प्राकृतिक सुषमाओ का समृद्ध सदन, शक्तियो का स्रोत, वैभव का विराट पुंज रहा है। वानस्पतिक वैभव, कल-कल करती नदियाँ, उर्मिल सिधु, गगनस्पर्शी हिमाच्छादित शिखर, सुरभित शीतल-मंद पवन ये सभी मिलकर हमारे देश का एक अद्भुत शृंगार करते है और यह सजीला रूप भारत को एक भिन्न ही गौरव प्रदान करता है। किन्तु यह स्वरूप वैशिष्ट्य ही भारत के अमर महत्त्व का आधार नही है। आपश्री का अभिमत है कि भारतकी जो सास्कृतिक श्रेष्ठता रही है, जो धार्मिक चेतना रही है और जो आध्यात्मिक गौरव रहा है, उसी के कारण इसे संसार में गरिमा की उपलब्धि हुई है।

भारत धर्म-प्रधान देश है। हमारी संस्कृति और सभ्यता का कण-कण धर्म के सारस्य से सना हुआ है। यहाँ तक कि विश्व के लिए भारत और धर्म परस्पर पर्यायवाची शब्द बन गये है। आपश्री ने धर्म के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए भारत और इतर देशो का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है और पाया कि हमारे यहाँ जन-जीवन का प्रधान और अन्तिम लक्ष्य ही धर्म बना हुआ है। अन्यत्र इसका स्थान भौतिक सुख या समृद्धि ने ले रखा है। उदाहरणार्थ कोई योजना किसी विदेशी के सम्मुख रखी जाय तो उसको स्वीकार करने के पूर्व उस पर जो सोच-विचार होगा वह इस दिशा मे होगा कि क्या इस योजना से मेरे या हमारे

आर्थिक विकास मे किसी प्रकार का योगदान संभव होगा? उनका जीवन भौतिकता के रंग मे रंगा हुआ जो है! उसी योजना पर भारतीय सोचेगा कि क्या यह योजना धर्मानुकूल या धर्मसम्मत है और इसके बाद ही वह अन्य पक्षो का अध्ययन करेगा। अपने इसी दृष्टिकोण को मुख्यत्व देते हुए वह अन्तत: योजना के लिए स्वीकृति अथवा अस्वीकृति सबधी निर्णय लेगा। धर्मच्युत अथवा धर्म-विरोधी गतिविधियाँ हमारे यहाँ कभी श्रेयस्कर समझी ही नही गयी।

धर्म के क्षेत्र मे एक और अनूठापन हमारे देश मे रहा है। धर्मप्रधानता के कारण स्वधर्म के विवेचक, प्रचारक, समीक्षक, संरक्षक और प्रेरक सहस्रो नर श्रेष्ठ और तीर्थंकर अवतरित हुए है। युगबोध के धारक, धर्मसुधारक और धर्म को युगानुरूप अपेक्षाओ के अनुकूल नवीन रूप प्रदान करनेवाले प्रवर्तक भी समय समय पर श्रद्धापात्र बने रहे है। पूज्य गुरुदेवश्री के मत मे हमारी जो समन्वय विषयक विशेषता रही है वह भी इससे कम मूल्यवान नही है। आपश्री का कथन है, "इतर धर्मो के संदेश लेकर असंख्य धर्मप्रचारक इस देश मे आये और सभी सदेशो को, धर्म-वचनो को भारत की मिट्टी ने पचाया, अपनाया और उन्हे फलने-फूलने का अवकाश दिया।" यही कारण है कि हमारे यहाँ अनेक धर्मो का समानान्तर रूप से प्रचलन है।

धर्म के नाम पर कही कोई वैमनस्य या विरोध नही-यह हमारी समन्वय-साधना का ही सुफल है। हम सदा श्रेष्ठता के ग्राहक रहे है—कहाँ से वह उपलब्ध हो रही है—उस आधार पर कभी किसी शुभ का हमने अवमूल्यन नही होने दिया। अतः विभिन्न धर्मो मे सहिष्णुता, समता और साहचर्य का निर्वाह संभव हो पाया है। फिर धर्म विषयक कोई प्रतिबन्ध किसी पर नही। सभी धर्मो के द्वार सभी के लिए खुले है। जन्म से धर्म का निर्धारण तो हो जाता है, किन्तु वह अपरिवर्तनीय नही। धर्मानुसरण व्यक्ति के विवेक एवं विकल्प का विषय है। इस कारण सर्वधर्म-समादर का भाव हमारे यहाँ सशक्त पाया जाता है। धर्म विशेष के

लिए कोई आग्रह नही, कोई दुर्भाव नही । यहाँ तक कि एक ही परिवार मे विभिन्न मतावलम्बी पाये जाते हैं। धर्माचरण सम्बन्धी हमारा यह मृदुल दृष्टिकोण ही घोर भौतिकता के इस युग मे भी धर्म को जीवित बनाये हुए है । इसकी परम्परा हमारी सस्कृति की भाँति ही अजस्र है, अटूट है ।

भारतीय धर्म-क्षेत्र मे जहाँ स्वाधीनतापूर्ण विकल्प व्यवस्था है, वहाँ यह भी पाया जाता है कि कोई धर्मविहीन नही है । किसी न किसी धर्म से प्रत्येक सम्बद्ध है । धर्म को यदि 'नीति' का रूप माना जाय, तो प्रत्येक के समक्ष अनुकरणार्थ नैतिकता का कोई न कोई स्वरूप अवश्य है । अपने व्यापकतम अर्थ मे नैतिकताओ मे परस्पर कोई विरोध या विषमता नही होती । अत॰ सभी अन्तत समान हैं—भले ही उनके व्यावहारिक स्वरूप मे उन्नीस-बीस की असमानता दृष्टिगत हो ।

धर्म अपने अर्थ के सन्दर्भ में

कतिपय चिंतक धर्म को 'कर्तव्य' के समानार्थक रूप मे स्वीकारते है, 'फर्ज', 'ड्यूटी' आदि जिसके अन्य भाषान्तर है । गुरुदेवश्री की धारणानुसार यह धर्म को संकुचित रूप मे देखने का प्रयास है । इस प्रकार धर्म 'दायित्व' मात्र बनकर रह जाता है, जब कि धर्म का अर्थ और क्षेत्र अति व्यापक है । समाज व्यक्तियो का समुदाय है और कोई भी व्यक्ति जीवन की सभी आवश्यकताओ को स्वयं पूर्ण नही कर सकता । एक को अनेक अन्य पर निर्भर रहना पडता है। एक सब के लिए और सब एक के लिए हो जाते है । इसी पारस्परिक सहयोग का व्यवस्थित रूप समाज है । सामाजिक व्यवस्था की पूर्णत वैज्ञानिक पद्धति के अधीन सेवाकार्योंका वर्गीकरण है । व्यक्ति अपनी रुचि, योग्यतादि के अनुरूप कार्य चुन लेता है । इस रूप मे वह समाज के लिए और अन्य रूपो मे समाज उसके लिए पूरक होता है । पारस्परिक सहयोग का यह कर्म कर्तव्य है । उसी प्रकार व्यक्ति का व्यक्ति, अन्य सगठनो, राष्ट्रादि के लिए भी अन्य अनेक कर्तव्य है । यदि

हम केवल इसी अर्थ मे धर्म को स्वीकारे तो यह अतीव मर्यादित व्याख्या होगी ।

स्पष्ट है कि सामान्यत· कर्तव्य भी यद्यपि पवित्रता का वाहक तो है, किन्तु उसके प्रत्युत्तर मे अपेक्षाएँ अस्तित्व रखती है । इस रूप मे वह एक सौदा 'भी' बल्कि 'ही' है । धर्म नि·स्वार्थ होता है, किसी प्रत्युतर की अपेक्षा उसमे नही रहती । इसके अतिरिक्त व्यवसाय-परिवर्तन के साथ व्यक्ति का कर्तव्य भी बदल सकता है, किन्तु धर्म अपने शुद्धतम रूप मे एक है, अविभाज्य है, फेर-बदल की संभावना से रहित है । वह तो हर क्षेत्र मे त्याग चाहता है, उत्सर्ग चाहता है ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — इन चार पदार्थों को पुरुषार्थ के अन्तर्गत माना जाता है । पूज्य गुरुदेवश्री का विश्लेषण है कि इस क्रम में 'मोक्ष' का तो अन्तिम स्थान है । पुरुपार्थ मे अर्थ और काम मे भी धर्म को साथ रखने की व्यवस्था हमारे पूर्व पुरुषो द्वारा निर्धारित की गयी है । धर्म का सर्वोच्च स्थान है । किन्तु आज स्थिति विपरीत बनी हुई है । अर्थ और काम ही जीवन के समस्त क्षेत्रो को नियंत्रित किये हुए है । धर्म बेचारा दासत्व ग्रहण किये हुए है । इस दुर्दशा के पीछे मूलतः धर्म की अवमानना का भाव है जो आज की पीढी में तीव्रतर होता चला जा रहा है । आवश्यकता है धर्म की पुन प्रतिष्ठा की, उसे उसके समुचित स्थान दिये जाने की, उसके शुभ स्वरूप को पहचानने की ।

आज धर्म को जो उसका महत्व नही मिल पा रहा है, इसके प्रतिफल में ही हिंसा, लोभ, परपीडन, अनैतिकता, चरित्र-हीनता आदि कुत्सित वृत्तियाँ पनप रही है । अराजकता और अव्यवस्था, अशान्ति और आक्रोश, विषाद और वैमनस्य के रूप मे घोर अमानवीयता इसी धर्माभाव की प्रतिक्रिया है । जब तक हम धर्म को उसके वास्तविक रूप मे ग्रहण नही करेगे, उसके व्यापक सुफल को समझने का प्रयास नही करेगे, उसके अनुरूप आचरण के लिए संकल्पबद्ध नही होगे तब तक व्यक्ति, समाज, जाति और

देश के उत्कर्ष का प्रसंग स्वप्नो का ही विपय वना रहेगा। धर्मानुसरण ही उस निर्मलता व उज्ज्वलता का विधायक है जो हमारे जीवन को भव्य और दिव्य वना सकती है। साथ ही हमें पुन: स्मरण रखना चाहिये कि धर्म को मतमतान्तरो और सम्प्रदायों की धारा से मुक्त कर उसे उसका व्यापक रूप दिया जाना चाहिये। किसी मत विशेप का अवलम्बन व्यक्ति के मध्य न विशेष स्नेह का और न ही वैमनस्य का कारण वनना चाहिये, अर्थात् समधर्मावलंवी परस्पर उचित-अनुचित रूप से समर्थन, सहयोग करे और परमतावलम्वी के प्रति अनावश्यक रूप से और केवल इसी आधार पर शत्रुता, घृणा का भाव रखे—दोनो ही को समान रूप से अनौचित्यपूर्ण माना जाना चाहिये। व्यक्ति के धर्मचयन सम्बन्धी विवेक व विकल्प का सर्वत्र समादर होना चाहिये। गुरुदेवश्री की धारणा है कि यदि हम इस लीक पर चले तो मानवता को पुन. प्रतिष्ठित कर सकेगे और हमारी संस्कृति की अजस्रता मे मूल्यवान योगदान कर सकेगे। कितना अच्छा हो, इस सबको यदि भारतीय जन अपने कार्यक्षेत्र का अनिवार्य अग बना ले। धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा सारे देश व समाज ही नही, विश्व-कल्याण मे भी समर्थ रहेगी—व्यक्ति का शुभ तो इसके बाहर फिर भला कैसे रहेगा?

*

मुस्कान : जिन्दगी की

जीवन की मुस्कान जीवन को अमरता प्रदान करती है। यह मानव को नरक की पगडंडियों से बचाकर स्वर्ग की ओर अग्रसर कर देती है।

यह सत्य है कि विश्व पल-पल परिवर्तनशील है। जो कल था, आज उससे भिन्न है और यह आज भी 'कल' कुछ न्यारा ही होगा, नवीन होगा। धर्म, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान सब कुछ मे विकास–अति तीव्र विकास—दीख पड़ता है। इन सभी का प्रयोजन कल भी था, आज भी है और कल भी यही रहेगा— मानव-जीवन को श्रेष्ठ बनाना, न केवल सुख–सुविधापूर्ण बनाना, अपितु उसे शुद्ध-सात्विक मानवतायुक्त बनाकर देवत्व के समीप पहुँचाना। यह सारा प्रयास सफल रहे, इसके पक्ष मे स्वय व्यक्ति की सक्रियता अनिवार्य तत्व है। प्रश्न यह है कि वह सही अर्थो मे सक्रिय कैसे रह सकता है? पूज्य गुरुदेवश्री की धारणा इस सम्बन्धमे यह है कि इस दिशा में मानव तभी सक्रिय रह पायगा, जब वह जीवन की विराटता, व्यापकता, उसकी गरिमा और मोल को भलीभाँति पहचान ले। इसके अभाव मे पुराने वस्त्र पर नया रंग चढाने जैसा ही प्रयास होगा–जिसके द्वारा विशेष दीप्ति का लाया जाना लगभग असंभव ही रह जाता है। हम हमारी जिन्दगी पर पॉलिश चढाने, रोगन चढाने के काम मे तभी तो कामयाब रहेगे, जब हम जिन्दगी को नायाब मान ले। अन्यथा आवश्यकता की तीव्रता के अभाव मे प्रयत्न स्वयं शिथिल रह जायेगे। इस प्रसंग मे गुरुदेवश्री के वचन उल्लेखनीय है— "जीवन पर हजारो वर्षों के सस्कारो के बहुत गाढे रग चढे हुए है। हम उस पर नया रंग–ऐसा रंग जो बेहद चमकदार हो–चढाना चाहते है, तो पहले पुराने रंगों को शुद्ध करना अति आवश्यक है, अन्यथा नया चमकदार रंग चढ़ाने के प्रयास मे हम उसे और भी बदरग कर बैठेगे।

यह ससार एक बहुत बड़ा 'जतु-आलय' है जिसमें भाँति-भाँति के प्राणी विद्यमान है। इस वैविध्य-बहुल प्राणी समुदाय मे मानव एक अद्भुत प्राणी है जो अपनी अनेक विशेषताओ के कारण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। शारीरिक सौष्ठव भी इसका कुछ ऐसा है जो अन्य प्राणियो की अपेक्षा उसे उत्तम घोषित करता है। अन्य जंतुओ के विपरीत मानव का मस्तक ऊँचा है, मुख नीचे की ओर झुका नही रहता। उसकी देह खडी और सीधी है। क्या यह इस बात को प्रकट नही करता कि मानव उन्नत और सीधा बने रहने के लिए है? उन्नत मानसिक स्थिति और चैतन्य भी इसका प्रतीक है कि यह जीवन आत्मा के मोक्ष का मार्ग है। अन्य किसी जीवन मे मुक्ति का साधन जुटा सकना सभव ही नही। यही देवत्व के समीप पहुँचने का प्रयास है।

क्या पूर्व के और क्या पश्चिम के, संसार के सभी दार्शनिको, तत्त्वचिन्तको ने मानव-जीवन को 'देवानुप्रिय' कहा है—अर्थात् मानव-जीवन के लिए स्वयं देवता भी लालायित रहते है। पूज्य गुरुदेवश्री देवताओ के इस आकर्षण का आधार अस्थिचर्ममय इस देह के प्रति नही मानते। आपश्री की भावना है कि इस माध्यम से तो मानव की आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियो पर उसके नियत्रणादि की महिमा का ही प्रतिपादन किया गया है।

ऐसे श्रेष्ठ मानव-जीवन को उसके वास्तविक रूप मे बनाये रखना मानव का ही दायित्व है। इस यथार्थ रूप के निर्वाह के लिए आवश्यक है कि जीवन को जीवन की मुस्कान से परिपूर्ण रखा जाय। पूज्य गुरुदेवश्री की मान्यता है कि जीवन की मुस्कान नैतिकता मे निहित रहती है और—"जहाँ जीवन के दैनिक व्यवहार मे ईमानदारी, सच्चाई, शिष्टता, सभ्यता, नियम व मर्यादाओ का पालन किया जाता है, वह यहाँ मुस्कान बिखरी रहती है। अत नैतिक मुस्कान-प्राप्ति के पक्ष मे आवश्यक है कि कोई ऐसी प्रवृत्ति नही हो जो अनीतिमूलक हो। हाँ, ऐसी गतिविधि हमारे लिए बाधक सिद्ध होगी जो समाज, राज्य, राष्ट्र, धर्म आदि के

संदर्भ मे व्यक्ति को पतन की ओर ले जाय।" आपश्री की मान्यता यह भी है कि द्यूतकर्म, मासाहार, चौर्यकर्म, मद्यपान, वैश्यागमन, परस्त्रीगमन, जीवहिंसा आदि दुष्कर्म मानव-जीवन को अनीतिमय बना देते है। जीवन की मुस्कान को ये मलिन कर देते है। अतः इनसे बचे रहने में ही लाभ है।

आत्मिक दृष्टि से मुस्कान का विशेष बचाव करते हुए गुरुदेवश्री ने स्पष्टतः अपनी मान्यता प्रकट की है कि आत्मा के मूलभूत गुणो–सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, अनासक्ति, क्षमा, दया, संयम आदि के पालन द्वारा ही आत्मा की श्री वृद्धि की जा सकती है। इन श्रेष्ठताओ के अभाव मे मात्र शिष्टता, सभ्यता आदि का आचरण बाह्याचार ही होगा जिससे आत्मा की मुस्कान को उद्दीप्त करने मे सहायता नही मिल पाती है। वस्तुतः आत्मा की मुस्कान ही शेष सर्व मुस्कानो की जननी है। अतः आत्मा की मुस्कान के संबंध मे अधिक सजग रहना परमावश्यक है। पूज्य गुरुदेवश्री का सन्देश है:

"आप अपने जीवन को मुस्कान के गुणो से भरिये जो शुभ मार्गो पर आपको गतिशील रखेगे, आपको ऊपर उठायेगे। आप चलेगे तभी आपका भाग्य भी चलेगा। आप बैठ जायेंगे तो भाग्य भी शिथिल हो जायगा। सर्वांगपूर्ण जीवन की सच्ची मुस्कान जीवन को अमरता प्रदान करेगी। यही नरक की मलिन पगडंडियो से आपको बचा सकेगी और स्वर्ग की ओर अग्रसर होने की क्षमता से युक्त कर सकेगी।"

*

जीना – एक कला

"किं जीवनं ? दोष विर्वजितं यत्"

भारत-भूमि सदा से ही दर्शन की, चिन्तन-मनन की भूमि रही है। दर्शन के औचित्य पर जो विचार खरा उतरता है वही श्रेयस्कर, वही वरेण्य माना जाता है। शेष त्याज्य माने जाते हैं। यही कसौटी आज भी मान्य है। कोई भी क्षेत्र इस सिद्धान्त का अपवाद नही रहा है। समग्र जीवन और जगत दर्शन के प्रभाव मे है और पर्याप्त मन्थनोपरान्त नीतियो को स्वरूप देने का महान कार्य हमारे मनीपियो द्वारा सम्पन्न हुआ है। नीतियो का कोष ही आदर्श मानव-जीवन की कल्पना के रूप मे साकार हो गया है।

सच्चा मानव-जीवन क्या है? मानव के दैनन्दिन व्यवहार-व्यापार मात्र ही सच्चे मानव-जीवन के रूप का निर्माण नही करते। ऐसे रूप को ही समग्र मान लेना, हमारी मात्र भौतिक दृष्टि की ही सूचना देगा। दार्शनिको का मत रहा है कि दोषो और विकारो से रहित होकर जीना ही सच्चा मानव-जीवन है। विकृत्तियो से संघर्ष करते हुए जो जीता है, सिहकी भाँति जो निर्भीक है और अनीति, अन्याय, अत्याचार और अनाचार को ध्वस्त करने के लिए तत्परतापूर्वक जो अपनी समग्र शक्ति को प्रयुक्त करता रहता है, उसका जीवन ही सच्चा जीवन है। दु ख, दैन्य, कलह, असन्तोष आदिको ध्वस्त करते हुए जो निश्चितता के साथ जीता है–कहा जायगा कि वही जीने की कला जानता है।

कला मानव-जीवन की अनन्य सगीनी रही है। कला ने ही जीवन को आनन्दमय, सरल और मधुर बनाया है। जब मानव संस्कृति ने पहली–पहली अँगडाई ली तभी से कला भी चुपचाप जीवन के साथ हो ली है और निरंतर अभिन्न बनी रही है। संस्कृति के विकास के साथ कला प्रखर, प्राजल, परिष्कृत और पुष्ट होती

चली है। आदिम काल मे मानव जीवन के विशिष्ट स्वरूप से अनभिज्ञ था। कला और संस्कृति अपने नेत्र पूरी तरह से खोल भी नही पायी थी कि तभी जीवन के महान कलाकार युगादि तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव का आविर्भाव हुआ था। भगवान ने जीवन मे कलाओं का समावेश कराया और प्रारंभिक रूपमे पुरुषो के लिए ७२ और स्त्रियो के लिए ६४ कलाएँ विकास पाने लगी थी। यथार्थ यह है कि अब तो जीवन स्वयं एक बृहद कला-रूप बन गया है। अन्य प्राणियो के जीवन और मानव-जीवन मे कला-मयता का एक प्रमुख अन्तर है।

जीवनयापन तो हीन कीट–पतग, पशु–पक्षी भी करते है। आहार-विहार प्राणिमात्र के लिए अनिवार्य है–फिर क्या मानव-जीवन अन्य की अपेक्षा श्रेष्ठ, उनसे भिन्न और उच्चतर नही है? जीवन-निर्वाह की चिन्ता और चेष्टा मे सभी प्राणी रहते है। पशु-पक्षी खाद्य-अखाद्य का भेद कहाँ कर पाते है? अपने जीवन का आधार अन्य के शरीर, प्राण, जीवन को मानने मे उन्हे तनिक भी हिचक का अनुभव नही होता। यही पाशविक वृत्ति है। यदि मनुष्य भी इसे ही अपनावे तो फिर उसे मनुष्य कहने के पीछे कोई औचित्य नही रह जाता। यह तो एक उदाहरण है। समग्र जीवन ही श्रेष्ठ, उच्चतर और नित्योन्मुख हो–मानव जीवन कहलाने के लिए यह अपेक्षित है। इसी मे जीवन की कलामयता है।

मनुष्य कहलानेवाले सभी प्राणी भी तो एकसा जीवन कहाँ बिताते है? इसका मूल कारण यह है कि किसी मे जीने की कला सुविकसित होती है, तो किसी मे इस कला का पूर्ण विकास नही हो पाता है। कोई जीने के लिए खाता है, तो कोई केवल खाने के लिए ही जीवित रहता है। कोई ऋतु प्रभावो से रक्षित रहने के लिए वस्त्र धारण करता है, तो कोई मात्र विलासवृत्ति की तृप्ति के प्रयोजन से। मृदुल व्यवहार व मधुर भाषण के पीछे किसी का लक्ष्य प्रतिष्ठा प्राप्त करना अथवा धनार्जन रहता

है, तो कोई आत्महित, समाज–हित आदि को इसका व्यापक आधार मानता है।

इसी प्रकार कोई अपनी शक्ति से त्रास उत्पन्न करता है, तो कोई त्राता हो जाता है, रक्षक हो जाता है। इन दोनो कोटियो के व्यक्तियो की रुचि, क्रियाओ, मनोवृत्तियो मे वहुत अन्तर रहता है। जीने की कला जाननेवाले व्यक्ति का प्रत्येक कार्य विवेकपूर्ण होगा, उसका उद्देश्य सदा शुभ होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री का कथन है कि 'जीवन की कला से अनभिज्ञ' अज्ञानी मनुष्य को जीवन की गाडी जब मिल जाती है तो वह दूसरो की जिन्दगियो को कुचलता हुआ, गाड़ी को भी हानि पहुँचाता हुआ लक्ष्य की ओर वढने लगता है। गाड़ी का संचालक स्वयं मोहमाया की मदिरा मे चूर रहता है और उसे उसके अपराधो के कारण पाप रूपी सन्तरी पकड़ लेते है। उसके पास से जीवन (गाडी) चलाने का लायसेस छीन लिया जाता है। अर्थात् उसे आगामी कई अवसरों मे मानव-जन्म नही मिल पाता। उसे उसका गन्तव्य नही मिल पाता है।

उपर्युक्त रूपक द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री ने मर्मज्ञतापूर्वक सारी स्थिति को इतनी स्पष्टता के साथ चित्रित कर दिया है कि विवेचन की तनिक भी आवश्यकता शेष नही रह जाती।

जैसी कि पूर्व ही मे चर्चा की जा चुकी है, जीने की कला मे बाह्य सौन्दर्य महत्वहीन होता है, गौण होता है। आन्तरिक सौन्दर्य ही उसका सर्वस्व है। 'सत्य' और 'शिव' को आपश्री इस कला के दो फेफड़े मानते है, जो श्वास प्रक्रिया द्वारा कला को जीवित रखते है। इन दो तत्वों के अभाव मे जीने की कला शववत् रह जाती है। गुरुदेवश्री सदा सचेत करते रहते है कि मनुष्य को अपने व्यवहार और कर्मक्षेत्र मे अत्यन्त सावधानी से संचरण करना चाहिये। कभी-कभी अनेक शुभ कर्म करते हुए भी व्यक्ति द्वारा कुछ ही सही, किन्तु घोर दुष्कर्म ऐसे हो जाते है जो उसके सभी शुभ कर्मो के यश को आवृत्त कर देते है। अनुचित

कार्यो से स्वयं को बचाने की सावधानी नही रखनेवालो को इस भूल के दुष्परिणामो से सुरक्षित होने का कोई आश्रय मिल ही नही पाता । इस रूप मे एक प्रकार से वह आत्मघातक हो जाता है । जीवन की कला का मर्मज्ञ अभ्यासी कभी इस प्रकार की भूल नही करता । इससे न केवल उसका ही, उसके जीवन से सम्बद्ध सभी व्यक्तियो व वर्गो का भी मंगल होता है, हित होता है और जीने की कला सार्थक हो उठती है ।

*

सर्वोच्च आराधना: संयम-साधना

आत्म-निग्रह करना; मन, वचन व तन का नियंत्रण करना, इन्द्रियों को अधिकारमें रखना-यही संयम है।

मनुष्य स्वभावतः दूसरो पर नियंत्रण करने का अभ्यस्त होता है। किसी सीमा तक यह सुगम भी होता है, पर वह स्वयं पर शासन नहीं कर पाता — यह कठिन कार्य है। पाश्चात्य दर्शन के एक तत्त्ववेत्ता का कथन है — "आत्मानुशासनवद्ध व्यक्ति ही शक्तिशाली होता है।" वस्तुतः जो स्वयं को अनुशासन मे न रख पाये उसके लिए सुख के सभी द्वार वन्द हो जाते है। स्वादेश का पालन स्वयं न कर सके–इससे वड़ी दुर्वलता अन्य हो ही क्या सकती है? भगवान महावीर ने भी अपने अन्तिम प्रवचन मे निर्देश दिया था :

"अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुदम्मो।
अप्पा दंतो सुहि होई, अस्सिं लोए परत्थ य॥"

अर्थात्–अपनी आत्मा, अपने मन, इन्द्रियो और वाणी का दमन करना चाहिये। अपने आप का दमन करना दु.साध्य है। जो ऐसा कर लेता है, वह इस लोक और परलोक दोनो मे सुखी रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने वर्तमान परिस्थितियो के सन्दर्भ में 'संयम' का मूल्याकन करते हुए एक अत्यन्त ज्वलन्त तत्व की ओर सकेत किया है·

"आज सयममात्र श्रद्धा और सम्मान का विषय रह गया है। अत्यन्त महत्व के साथ उसकी चर्चा तो होती है, किन्तु उसे अपनाव नही मिलता। उसके स्मरण मात्र से श्रद्धाधिक्यवश मन झुक जाता है, किन्तु बस इतना ही। आचरण का विषय यह नही वन पाता।"

आपश्री की मान्यता है कि भारत न केवल कृषि प्रधान अपितु ऋषि प्रधान देश भी रहा है। समय-समय पर अवतरित महा-पुरुषो ने अपने आचरण के उदाहरण द्वारा सामान्य जन के लिए, कोटि-कोटि जन के कल्याण के लिए आदर्श उपस्थित किये इस दिशा मे। उनकी सफलता का रहस्य था उनका 'संयम' जिसने उन्हे यह शक्ति प्रदान की थी। संयमशीलता के संदर्भ में हमारा देश वस्तुतः अग्रगामी रहा है और इस हेतु प्रतियुग मे भारत का भूरि भूरि गौरवगान होता रहा है। गुरुदेवश्री सखेद व्यक्त करते है कि आज का भारत इस रूप में रंक हो गया है। संयमहीनता न होती तो आज का भारतीय सुखी होता, समृद्ध होता, साफल्य के सन्तोष की आभा से मण्डित होता और हमारा प्यारा देश प्रसन्नता और यश से पल्लवित, कुसुमित और सुरभित उद्यान होता। संयम-समृद्धि को आज हम खो बैठे है। इसका मूल कारण है—पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय जन-जीवन पर गाढा लेपन जो हमे न तो नवीन–आधुनिक जीवन ही दे सका है और न ही हमे हमारी संस्कृति-वैभव की चेतना से मुक्त ही होने दे रहा हैं। इस नवीन प्रभाव में हम ऐन्द्रिक विकास को प्रमुखता देते हुए निरे भोगवादी बन बैठे है, विषयानुरागी बनकर हम हमारे मौलिक स्वरूप को खो चुके है। संयमहीन अवस्था मे हम परिग्रहवाद के चक्र मे ऐसे ग्रस्त है कि उचित-अनुचित का विवेक जाने कहाँ लुप्त हो गया है और एक अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा हमे सदा ग्रस्त किये रहती है। भौतिक सुख-प्राप्ति हमारी कामनाओ का सर्वस्व हो गयी है और अब्रह्मचर्य प्रेरित होकर विनाशोन्मुख मार्ग पर हम तीव्रता के साथ गतिशील है। ऐसे बीभत्स परिवेश मे संयम बेचारा असहाय अवस्था मे न रहे, तो और कर ही क्या सकता है? जहाँ कही संयम के दर्शन हो भी रहे है वह उसका मात्र बाह्य रूप है। उसके वास्तविक आत्मिक रूप मे अपनाने वाले आज बिरले ही है। आज हमारे राष्ट्र और समाज की जो पतित अवस्था है, वह स्वयं संयमविहीनता की साक्षी है। संयमशील व्यक्ति, जाति, समाज या देश का पतन तो कभी संभव

ही नही है । गुरुदेवश्री ने अपनी मान्यता के समर्थन में गिव्वन के इस अंश का उल्लेख किया है जिसको रोम के इतिहास मे उसने वर्णित किया–" रोम का उत्थान संयम, सादगी और मितव्ययिता से और उसका पतन विलासिता, असंयम और फिजूल-खर्ची के कारण हुआ ।"

गुरुदेवश्री सदा इस मत के रहे है कि संयमशील व्यक्ति कही भी और किसी भी परिस्थिति में कष्टित नही रहता और न ही वह किसी पर असह्य भार अनुभव कर सकता है। उसका जीवन तो सहज, सरल और सुरभित होता है, जो सर्वथा आनन्दमय भी होता है । जिसमे संयम की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, वह व्यक्ति मानवीय गुणो से उतना ही अधिक विभूषित होता है।

संयम के प्रसंग मे एक और वात भी विचारणीय हे, और वह यह कि केवल रहन-सहन या खान-पान में ही संयम का बर्ताव उसका सही रूप नही है । आन्तरिक आवेगो और आवेशो पर नियंत्रण करना, कषायो पर कावू करना यद्यपि अपेक्षाकृत कठिन कार्य है, किन्तु सच्चा संयम का स्वरूप तो यही है । और यही संयम मनुष्य को मनुष्य का पद दिलाता है। इन्द्रियो का विजेता ही सच्चा पराक्रमी है, शूरवीर है । एक विचारक के अनुसार "जो ५ इन्द्रियो और ४ कषायो पर विजय प्राप्त कर लेता है–वही मानव है ।"

स्पष्ट है कि संयम का साम्राज्य मनुष्य का अन्त जगत् है। संयम स्थापना मे जो आज सब से बड़ी कठिनाई आ रही है, वह मूलत इस कारण है कि व्यक्ति का सारा ध्यान बहिर्मुखी है। मन मे झाँकना हमारा स्वभाव नही रह गया । वाह्य सुख-सुविधाओ के उपभोग पर ही लालायित दृष्टि केन्द्रित रहती है और उपलब्धि-अनुपलब्धि व्यक्ति के सुख-दु ख का आधार है। सुखाभिलाषी व्यक्ति इन्ही आकर्षणो के पीछे मत्तसा भागता रहता है । परिणामतः न केवल व्यक्ति को ही दु ख होता है, वह इसके जटिल प्रवाह मे सम्बद्धजनो, समाज और राष्ट्र को भी बहा ले जाता है । लालसाएँ तो अछोर होती है और उनकी समग्रत· तुष्टि

संभव ही नही है। संयम ही ऐसे आड़े वक्त पर हमारे सुखका समर्थ साधन बन सकता है जिसके लिए अन्तर्मुखी दृष्टि नितान्त अपेक्षित रहती है। विषयाधीन रहने से वही दृष्टि सक्रिय रहती है जो राग-द्वेष की जननी बनती है। यही असंयम होता है। असंयमी की आत्मा का वास्तविक रूप मे सक्रिय रहना असंभव हो जाता है और वह पुद्गुलानन्दी बनकर वासनाओ में रमण करना ही सुगम और सभव मानने लग जाता है। भगवान महावीर ने सूत्र कृतांग सूत्र मे व्यक्त किया है—

जहा कुम्मेस्स अँगाई सए देहे-समाहरे।
एवं पावाई मे हावी अज्झप्पेण समाहरे॥

अर्थात् जैसे भय की परिस्थिति मे कछुआ अपने अंगोपागों को सिकोड़ लेता है, वैसे ही साधक भी विषयाभिमुख इन्द्रियोको आत्मज्ञान से सिकोड़ ले।

गुरुदेवश्री भगवान शंकर के मन्दिर के बाहर कच्छप की मूर्ति स्थापित रहने के पीछे तार्किक पृष्ठभूमि का प्रायः विवेचन किया करते हैं। आपका विचार है कि इसका प्रयोजन यह तथ्य प्रतिपादित करना है कि जब तक कच्छपवृत्ति को धारण नही किया जाता तो शिव-दर्शन नही हो सकता, कल्याण की प्राप्ति नही हो सकती।

संयम ही पाप कर्मो के प्रवाह (आस्रव) को रुद्ध करने की अपार क्षमता रखता है। गुरुदेवश्री ने एक रूपक के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्टतः प्रतिपादित किया है:

"जैसे छत टपकती है तो सारी छत को हटा कर नयी छत का निर्माण नही किया जाता है, पुरानी छत की मरम्मत करा ली जाती है। आत्मारूपी छत में विषय-कामनाओ की दरारें है और उनमे से पराभव का पानी रिस-रिस कर आ रहा है। इसे संयम के लेपन द्वारा रोका जा सकता है। इस मरम्मत के बिना जीवन-रूपी भवन को सुरक्षित नही रखा जा सकता।"

पूज्य गुरुदेवश्री संयम को जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य मानते है जो प्रस्फुटित होकर वाह्य सौन्दर्य के रूप में झलमलाता है। यही वास्तविक सौन्दर्य है। इस आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के अभाव में मात्र वाह्य शोभा तो कागज के फूलो के समान है। आपश्री अपनी इस मान्यता का समर्थन कवि रवीन्द्र की इस उक्ति मे पाते है: "सौन्दर्य का पूर्ण मात्रा मे भोग करने के लिए संयम की आवश्यकता है।" वस्तुत' सौन्दर्योपासक संयमशील होता है। उसके जीवन का क्षण-प्रतिक्षण संयम से ज्योतिर्मय रहता है। भारतीय दर्शन और संस्कृति सदा सत्यं और सुन्दरं के माध्यम से ही शिव की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। इस अवस्था मे मनुष्य सभी द्वन्द्वो से दूर होकर शान्ति के अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगता है।

गुरुदेव का सन्देश है:

"संयम के माधुर्य का रसास्वादन करना हो तो आप भी आज ही से तैयार हो जाइये। आवश्यकता इस वात की है कि संयम को अपने आचरण के प्रत्येक क्षेत्र में अपनाया जाय। माधुर्य का साक्षात्कार होता चला जायगा—जीवन सार्थक हो जायगा और मानव-जीवन का मोल प्राप्त हो जायगा।"

विवेक : मानव-मनका शृंगार

विवेक साधना-यात्रा को निर्बाध करनेवाला, साधक का सच्चा मित्र व संरक्षक होता है ।

मानव-जाति चैतन्य के अद्‌भुत आलोक से विभूषित है । विवेक का एक अनूठा वरदान इसे प्राप्त है जो शेष जगत मे इसके समर्थ श्रेष्ठत्व का विधायक है । सचेतन मानव-मन ने जब से विवेक की विभूति को प्राप्त किया है तव ही से समझ जाना चाहिये कि भले व बुरे, नीति और अनीति, कर्तव्य और अकर्तव्य जैसी वस्तुएँ अस्तित्व मे आयी है । मानव का स्वभाव रहा है कि इन पारस्परिक विपरीत परिस्थितियों को एक-मेक करने मे स्वयं ही अपने लिए नवनवीन उलझनें उत्पन्न कर दे। मनुष्य इस स्वनिर्मित जाल में अनादि काल से ग्रस्त है । इन्हें सुलझाने की महती साधना द्वारा महापुरुषो ने सन्मार्ग का सन्देश दिया और कभी ये उलझने निर्बल होती गयी, कभी समय के प्रभाव से और जटिल होती गयी और यो मानव संस्कृति का इतिहास वनता चला गया है। आर्यावर्त के महामानव भगवान महावीर ने इस दिशा मे जनहितार्थ एक महती दृष्टि प्रदान की है । उन्होने सन्देश दिया :

"साधक, तेरा मार्ग विवेक के चमचमाते हुए प्रकाश से प्रकाशित हो। संस्कृति की तमाच्छादित नीतियो से तू भटक न जाय । इस हेतु विवेक की उल्का तू सदा प्रज्वलित रख । इसके मगलमय आलोक मे तू मार्ग के भयकर अवरोधो को भलीभाँति देख कर उनसे वच सकता है ।"

वस्तुतः विवेक साधक का सच्चा संरक्षक बना रहता है । साधना की यात्रा को विवेक की सहायता से ही निरापद किया जा सकता है । गुरुदेवश्री की धारणा है कि साधक-यात्री विवेक

की ज्योति पाकर न विषय-वासना के गर्त मे गिरता है, न क्रोध-लोभादि की कठोर चट्टानो से टकराता है। न वह माया–मोह के पंक से फिसलता है और न अनवधान स्थिति मे मान के विषैले नाग का शिकार बनता है। आपश्री का यही सद्रुपदेश रहा है कि अन्तर्मन को विवेकयुक्त रख कर व्यक्ति को अपनी दिनचर्या के प्रत्येक बिन्दु को नैतिकता की परिधि मे आबद्ध रखना चाहिये। विवेकदीप के बढ जाने पर व्यक्ति की सक्रियता पाप श्रेणी की उन्नायिका बनकर रह जायगी। आचार्य कुन्दकुन्द का सन्दर्भ देते हुए आपश्री ने व्यक्त किया है कि द्रव्यत्याग, द्रव्यपूजा, द्रव्य माला, द्रव्य जप-तप आदि साधनाएँ विवेक के अभाव मे अर्थहीन रह जाती है। साधक की आत्माके भव की अनेकानेक योनियो मे भटकन का कारण बनती है। इस अकाट्य बाधा के कारण साधक की आध्यात्मिक उन्नति नही हो पाती।

गुरुदेवश्री सदा जैन धर्म की इस विशेषता पर बल देते रहे है कि यह विवेक-प्रधान धर्म है। जैन धर्म के व्याख्याकारों ने प्रत्येक साधना को विवेकाधारित ही माना व घोषित किया है। विवेक-संयुक्त साधना ही सम्यक् साधना है, शुभ योगवाली साधना है। आपश्री स्पष्ट करते है कि शुभ योगवाली प्रत्येक साधना पापो को निस्तेज करती है, उनका विनाश करती है। आत्मा को आवागमन के चक्रसे मुक्त करती है।

जैन दर्शन मे ही कदाचित् विवेक पर सर्वाधिक चिन्तन-मनन हुआ है, इसका सर्वाधिक विवेचन-विश्लेषण हुआ है। विभिन्न विवेचको ने विवेक को अन्य नामो से भी पुकारा है। उदाहरण के लिए शास्त्रकारो ने इसका उल्लेख 'यतना' अथवा 'यतना चार' के रूप मे किया है और इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है :

"जयणा धम्मस्स जणणी"

अर्थात्—'यतना' धर्म की जननो है। आचाराग सूत्रकार ने विवेक मे ही धर्म को निहित माना है—'विवेगे धम्ममाहिए'। यह स्वीकृत रहा है कि जहाँ विवेक है, वहाँ धर्म है और जहाँ विवेक

नही है, वहाँ पाप है। विवेक के समानार्थक रूप मे कही प्रतिलेखना तो कही 'जागरण' अथवा 'अप्रमाद' शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। उल्लेखनीय है कि इन सबका मूल और केन्द्रीय तत्त्व विवेक सम्बन्धी ही हैं।

विवेक सार और असार के भेद को स्पष्टतः लक्षित कर देता है और सार को ग्राह्य और असार को त्याज्य रूप देने मे वह सदा समर्थ रहता है। अपने इस कथन को स्पष्ट करते हुए आपश्री ने बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है कि गन्ना मनुष्य द्वारा भी उपयोग मे लाया जाता है और पशु भी उसे खाते है, किन्तु इन दोनों मे बड़ा अन्तर है। मनुष्य गन्ने को चूसकर उसके सारभाग–रस को ग्रहण कर लेता है और असार भाग छिलके आदि को फेक देता है। पशु भला ऐसा कहाँ कर पाता है? कारण यही है कि मनुष्य विवेकशील प्राणी है। पशु अपने रहन-सहन व खान-पान आदि के स्वरूप मे कोई परिवर्तन नही कर पाये है। उसमे न कोई परिवर्तन हुआ है और न ही सशोधन-परिवर्धन हो पाया। इस अविकास के मूल मे उनका अविवेक ही रहा है। यही कारण है कि उनकी न कोई संस्कृति पनपी, न सभ्यता का कोई रूप। उनका कोई सामाजिक संगठन भी नही बन पाया। इसके विपरीत मानव अपनी जीवन-पद्धति मे सदा युगानुरूप परिवर्तन करता रहा है। विवेक के वल पर वह अपने आचरणतत्र के उपयोगी सार भाग को सुरक्षित रखता चला है और अनुपयोगी असार भाग को त्यागता रहा। यो नवनवीन तत्त्वो से सयुक्त होती हुई मानव संस्कृति विकसित होती चली है। क्या यह सब विवेक के कारण ही सभव नही हो पाया? और यदि हाँ, तो फिर क्या विवेकहीन व्यक्ति को पशुवत् मानना औचित्यपूर्ण न होगा?

गुरुदेवश्री की मान्यता है कि मात्र मानवीय शरीर धारण कर लेने से ही किसी को मानव नही कहा जा सकता। यह मानवीय आकार-आकृति तो कोरा छलावा, छद्म ही सिद्ध होगा, यदि उसका अन्तर विवेक से ज्योतिर्मय नही है। यह विवेक ही

है जो मानव को मानव कहलाने का अधिकार दिलाता है। विवेक वह शक्ति विशेष है जो मनुष्य को जगत् के साथ आत्मीयता के सम्बन्ध के लिए प्रेरित करती है। समस्त प्राणियो के प्रति मानव मन मे अपनत्व जागृत हो जाता है और वह सर्वहितैषी वन जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री का कथन है कि विवेक तो ऐसी सजीवनी है जिसे प्राप्त कर व्यक्ति जीवन के मोह और मरण के शोक से मुक्त हो जाता है। ससार के तुच्छ भौतिक पदार्थो, नश्वर आकर्षणो के प्रति उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है। यहाँ तक कि विवेकशील व्यक्ति अपने स्वजनो से व्यवहार करते समय भी सर्वथा निर्लिप्त रहता है, अनासक्त रहता है। जैन कवियो ने विवेकजन्य इस स्थिति का रूपक इस प्रकार स्थिर किया है·

सम्यगदृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर से न्यारो रहे, ज्यो धाय खिलावे वाल॥

समदृष्टि वाला विवेकशील स्वजनो का पालनादि करते हुए भी ठीक उसी प्रकार उनसे असम्बद्ध और अनासक्त रहता है, जैसे कोई धाय मातावत् अन्य की सन्तति का पालन-पोषण करती है, किन्तु मन मे यह बोध सदा ही बना रहता है कि वह शिशु की जननी नही है।

पूज्य गुरुदेव राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी महाराज आह्वान करते है:

"मित्रो! विवेक की इस महाज्योति को प्राप्त करो। विवेक हर क्षेत्र मे आपका पथप्रदर्शक मित्र रहेगा। चाहे आप धार्मिक क्षेत्र मे सक्रिय हो, चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र मे, चाहे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि किसी भी क्षेत्र मे–सर्वत्र विवेक का आलोक मंगलकारी रहेगा–इसे विकसित करो।"

*

जीवन का अमृत : सत्याचरण

सत्य वह पारसमणि है जिसका स्पर्श मानव-जीवनरूपी लौह-खण्डको दमकता हुआ कुंदन बना देता है।

भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और विराटता के साथ-साथ उसकी अनन्य विशेषता रही है अजस्रता की, जिसकी समानता गुरुदेवश्री गंगा के प्रवाह के साथ करते है । शत-शत शताब्दियो से यह समर्थ संस्कृति भारत के जन-मानस को परिष्कृत करती रही है। यह हमारी सस्कृति की देन ही है कि विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, मत-मतान्तर एक साथ यहाँ पोषित और विकसित होते रहे है । कोई किसी अन्य से कभी दमित अथवा शमित नही हुआ । सभी को समान रूप से और साथ-साथ प्रसारित होने का सदा अनुकूल अवसर मिलता रहा। यहाँ तक कि तदनुरूप स्वयं संस्कृति ही नाना रूपो में विभक्त और विकसित होने लगी । अन्य संस्कृतियाॅ भी भारत मे आयी और उन्हे भी अपनत्व का मधुर वातावरण मिलता रहा । न्याय, साख्य, वैशेपिक, वेदान्त, मीमांसा, बौद्ध, जैन कितने ही दर्शन भारत की भूमि पर अकुरित, पल्लवित, पुष्पित और सफल होते रहे है । एक और विशेषता जो रही वह यह है कि इन सभी धर्मों, सस्कृतियो और दर्शनो मे विभिन्नता होते हुए भी अभिन्नता रही है । इनकी अनेकता के मूल मे भी एकता बनी रही है । इनमे असमानता मे समानता और भेद मे अभेद का दर्शन होता है । यह एक ऐसा पारस्परिक नाता है जो समग्र भारतीय सस्कृति को बलवती बनाता रहा है। ऐसे अनेक-अनेक साम्य-तत्त्वो मे प्रमुख है 'सत्याचरण' । सत्य को इन सभी क्षेत्रोमे समादर प्राप्त है । सभी दार्शनिको द्वारा साधना के क्षेत्रमे सत्याचरण के महत्व को स्वीकारा गया है, इसे जीवन का अमृत माना है ।

पूज्य गुरुदेवश्री वस्तुत सत्य को ऐसी पारसमणि के समान मानते है जो अपने स्पर्श मात्र से ही जीवन के लौह को स्वर्ण

मे परिवर्तित कर देता है। जीवन को दीप्ति और मूल्य से परिपूर्ण कर देता है। सत्याचरण से व्यक्ति के कलुप कट जाते हैं और उसमे अनुपम निखार, निर्मलता और पवित्रता आ जाती है। सत्योपासना से तुच्छ और नगण्य व्यक्ति भी श्रद्धेय, पूज्य और उच्च कोटि मे परिगणित होने लगते हैं। सत्यामृत का पान कर मानव अपने जीवन को सच्चिदानन्द बनाने मे समर्थ हो सकते हैं। गुरुदेवश्री का सन्देश है

"मानव सत्य की पगडडी पर चले, तो उसका जीवन अमृत-मय बन जाय, शक्तिमय बन जाय, आनन्दमय बन जाय। भारतीय सस्कृति तो इसी सत्य की उपासना द्वारा विश्व को शान्ति का मार्ग दिखाती आ रही है।"



मानवता : धर्म और व्यक्ति की अनिवार्यता

मानवता रहित मानव उस सजी हुई दूकान के समान है जिसमे विक्रय-सामग्री का अभाव है।

सुन्दरता से ही कोई वस्तु सुन्दर होती है, वीरता से ही कोई व्यक्ति वीर कहला सकता है, उसी प्रकार मानवता की महती विशेषता से संयुक्त होने पर यथोचित रूप से व्यक्ति 'मानव' कहलाने का अधिकार रखता है। आज के घोर भौतिक विकास की चकाचौध मे मानवता का सूक्ष्म तत्व दृष्टिगोचर नही हो पा रहा है। यह सत्य है कि मनुष्य ने अपार शक्ति हस्तगत कर ली है, किन्तु गुरुदेवश्री इसे मानव के लिए अपर्याप्त क्षमता मानते है। विज्ञान के विकास द्वारा आज मनुष्य स्वर्गीय सुखो का भोक्ता हो गया है। यान्त्रिक-विकास ने मनुष्य के अंगो को अतिरिक्त शक्ति व सामर्थ्य प्रदान किया है। नल खोलते ही शुद्ध जलधार उसके चरण-प्रक्षालन को ललक उठती है, स्विच दबाते ही वह अंधकार मुक्त हो ज्योतिर्मय वातावरण से घिर जाता है। हजारो कोसो दूरके दृश्य देखने की क्षमता उसके नेत्रों मे है, आकाश-पाताल की यात्रा उसके लिए संभव ही नही, सुगम भी हो गयी है। उसका मानस हजारो-हजारो शास्त्र-ग्रंथो की ज्ञान-राशि का कोष बनता जा रहा है।

मनुष्य की विराट् शक्ति के समक्ष आज पृथ्वी अछोर नही रही, जगत सिमिट गया है। क्षण भर मे वह अपनी पुकार समग्र विश्व मे प्रसारित कर देता है। विश्व का विकास और विनाश आज उसने नियन्त्रित कर रखा है। यह सब भौतिक उपलब्धियाँ है, किन्तु मात्र इसी कारण क्या वह सम्पूर्ण मनुष्य है? यह सम्पूर्णता तो उसमे मानवता के लक्षणो से ही आ सकेगी। दूध और दूध की बोतल जैसा ही सम्बन्ध गुरुदेवश्री ने मानवता और मानव के बीच बताया है। दूध की अनुपस्थिति मे भला रिक्त बोतल को दूध की बोतल कैसे कहा जा सकता है? यह स्थिति मानवता

रहित मानव की है। एक और महत्वपूर्ण विन्दु यह है कि दूध का पान किये जाने मे ही उसका महत्व है। यदि वह किसी पात्र मे न हो तो उसका पान नही किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार मानव रहित मानवता भी मात्र सिद्धान्त होकर मिथ्या और अनर्गल हो रहेगे। आवश्यकता तो इस वात की है कि मानव द्वारा मानवता का निर्वाह हो तभी मानव और मानवता दोनो सार्थक होगे। आज मानव है, किन्तु उसमे मानवता का अभाव है। यह परिस्थिति ठीक वैसी है जैसे फर्नीचर आदि से किसी दूकान को सजाया तो गया है, किन्तु उसमे विक्रय-सामग्री का अभाव है। ऐसी अवस्था मे न दुकानदार को कोई लाभ होगा और न ही ग्राहको को। वाह्य आकर्षण से ग्रस्त ग्राहक दूकान पर आयेगे, किन्तु उन्हें निराश ही लौट जाना होगा। मानवता के लक्षणो से रहित मानव भी इसी प्रकार मात्र प्रवंचना रह जायगा। उससे न किसी अन्य का लाभ सभव होगा और न वह स्वयं अपना ही कोई भला कर सकेगा। पूज्य गुरुदेवश्री ने ऐसी अवस्था को 'ऊँची दूकान फीके पकवान' की लोकोक्ति द्वारा भलीभॉति स्पष्ट किया है। मनुष्य ने अपनी शक्तियो का विकास कर लिया है, किन्तु तत्त्वत जिस लक्षण की आवश्यकता है, जिससे उसे वस्तुतः मानव कहलाने का अधिकार मिलता है — उसकी अनुपस्थिति है।

गुरुदेवश्री की मान्यता है कि आज मानवता की समझ और उसकी प्रतिष्ठा का भगीरथ प्रयत्न, सर्व दिशाओ मे उस पर चिन्तन-मनन बड़ी गहराई के साथ हो रहा है। सर्वत्र राष्ट्रीय विकास के मूल मे मानवता के आधार पर ही विचारो व सिद्धान्तो का समर्थन अथवा विरोध होने लगा है। इस शुभ लक्षण से आशाएँ बनती है, किन्तु पूर्ण सफलता तभी सभव है जब मानवता को मानव के अन्तरग से भी सम्बद्ध कर दिया जाय और उस रूप मे उसके पुनर्प्रतिष्ठापन एव विकास के सच्चे प्रयास प्रारंभ किये जाये।

धर्मरूपी भव्य भवन का द्वार मानवता है। इसी माध्यम से धर्म मे प्रवेश किया जा सकता है। द्वार की उपेक्षा करने-

वाला, मानवता को नगण्य माननेवाला, धर्म के भवन मे प्रविष्ट नही हो सकता। पूज्य गुरुदेवश्री की मान्यतानुसार मानवता ही वह श्रेष्ठ भूमि है जिसमे धर्म अंकुरित, विकसित, पल्लवित और पुष्पित होता है। मानवता सभी धर्मों के लिए प्राणवंत है। मानवता रहित धर्म वास्तव मे मानव-समाज के लिए घोर अभिशाप सिद्ध होगा। ऐसे किसी धर्म से किसी की हितसिद्धि नही हो पायगी। आपश्री इस कटु सत्य को सखेद व्यक्त करते हैं कि आज धर्मों मे मानवता की उपेक्षा करते हुए परस्पर होड़ लगी हुई है। यही कारण है कि धर्म और धर्मानुयायी आज दयनीय स्थिति मे है। उनकी स्थिति तेल-शून्य दीपक जैसी है जो ज्योति-प्रसरण मे अक्षम है, किसी को कोई सन्मार्ग नही दिखा पाता। ऐसे दीपक, ऐसे धर्म की क्या महत्ता ? धर्म और व्यक्ति के लिए मानवता का मोल किसी भी युग मे, किसी भी परिस्थिति मे घट ही नही सकता। मानवता से रहित मानव-शरीर धरती के लिए व्यर्थ का भार है।

*

मुक्ता-प्राप्ति

धर्म : क्या और क्यों ?

धर्म अपने व्यापकतम अर्थ मे गुण या 'स्वभाव' है। स्वभाव चाहे व्यक्ति का हो चाहे वस्तु का, वह चिरन्तन रूप से अपरिवर्तित, यथावत् बना रहता है। बाह्य परिस्थितियो के व्यूह उसे विकार-ग्रस्त नही करते। जिन स्वभावो मे रूपान्तर दृष्टिगत होता है उनमें भ्रान्तिवश धर्म का मात्र आभास होता है। भला अग्नि कभी तेज का स्वभाव किसी भी परिस्थिति में त्याग सकेगी? यह तेज अग्नि का धर्म है।

धर्म जीवन के अंगाग मे व्याप्त वह सनातन प्रक्रिया है जो सदा और सर्वत्र सक्रिय, सतेज अस्तित्व का वहन करती है। जीवन मात्र व्यक्तिगत नही अपितु परिवार, समाज, राष्ट्रादि से सापेक्ष्य व्यक्ति के जीवन की सहज किन्तु आदर्श वृत्तियो का समुच्चय ही धर्म है। धर्म जीने की वह कला है जो व्यक्ति और उसके समस्त सम्बद्धो के लिए आनन्द का स्रोत है।

धर्म कभी विकृत नही होता, स्वगुणो से च्युत नही होता। विकार-ग्रस्त धर्म के दर्शन इस कारण होते है कि उसे मलिन हृदय के पात्र धारण कर लेते है। यह प्रभाव अस्थायी होता है, क्षणिक होता है। धर्म तो धर्म ही रहता है। यह अवश्य है कि पावन हृदय मे ही धर्म विद्यमान रहेगा। मलिन पात्र के ससर्ग से विकृत हुआ धर्म तो धर्म ही नही है।

सामुदायिक जीवन की व्यवस्था धर्म है। मानव का मानव के प्रति व्यवहार धर्म है। धर्म ही जीवन-कला का सक्षम गुरु है। आचरण विशेष को धर्म का पर्याय मानना इसके व्यापक अस्तित्व का परिसीमन करना है। धर्म तो हमारी हर सूक्ष्मतम क्रिया मे व्यक्त होता है।

व्यक्ति समाज का विषय है। समग्र समाज को स्वस्थ, स्फूर्त, सुमार्गी बनाये रखना व्यक्ति का धर्म है। धर्महीन समाज अपने सुरूप से रहित हो जाता है। समाजरूपी जलाशय की जल-राशि धर्म है जो अपनी उपस्थिति से तले में भेदभाव की दरारें नही उत्पन्न होने देता, विग्रह के स्थान पर ऐक्य व शान्ति को सुरक्षित रखता है।

धर्म की महत्ता अधर्म के वीभत्स प्रभावों के निराकरण में है। जब तक अधर्म चेष्टा हेतु तत्पर रहेगा उसे निस्तेज करने के निमित्त धर्म भी अपेक्षणीय ही रहेगा। दीपक का महत्व भी तो तिमिर के अस्तित्व के साथ जुडा रहता है।

साधुत्व

साधु ज्योति-पुरुष है। दीपक उच्चारण द्वारा मार्ग नही दिखाता, मात्र आलोक प्रसारित करता है। साधु-चरित्र भी तद्वत् ही होता है। उपदेश नही, अपने आचरण–आदर्श से जो हितैषी सिद्ध हो, वही यथार्थ में साधु है। साधु वह, जो पतित के उत्थान मे तत्पर रहे, साधु वह, जो प्रत्युत्तर की साध से रहित हो, साधु वह, जो कष्ट भोग कर भी अन्य को सुखी-सन्मार्गी बनाने मे व्यस्त रहे।

सत्यान्वेषी ही सच्चा साधु है। साधुत्व बाह्य नही, आभ्यन्तरिक लक्षण है। बाहर से दृष्टि समेट कर भीतर झाँकने की क्रिया साधक के साधु बनने की पहली सीढी है।

महापुरुष कौन ?

अन्य में जैसा परिवर्तन अपेक्षित समझे, वैसा परिवर्तन जो पहले स्वयं मे ले आए और इस परिवर्तित रूप से प्रभावित हो अन्य स्वत ही सुधरने लगें — वह महापुरुष है। वह नही, उसका स्वरूप सुधारक होता है। उसका कण्ठ मौन रहता है, आचरण ही मुखर होता है।

जो जितना महान होगा, उतना ही शान्त होगा, गंभीर होगा। उथला जल ही अधिक अस्थिर होता है। देश, काल,

वातावरण के अनुरूप व्यवहार न करनेवाला मानव ही नही होता, जो इनके अनुरूप हो जाय वह मात्र पुरुष है, किन्तु जो इन्हे अपने अनुरूप कर ले वही महापुरुष है। युग उसे नही, वह युग को ढालता है।

दुष्कर्मियो का नाश—शौर्य और शक्ति का आदर्श हो सकता है। महानता तो उन्हें सुकर्मी बना देने मे है। महापुरुष दुर्जनता के विरोधी होते है, दुर्जनो के नही। संसार उनके दृष्टिकोण के परे है, उद्धार उनके लिए सुगम होता है।

श्रद्धा

महापुरुष की महानता, उसके लोकहितकारी सुकर्मो की महत्ता को व्यक्ति सानन्द स्वीकारे—यही श्रद्धा है। श्रद्धा समाज की शुभवृत्तियो की सूचक बनी रहती है। श्रद्धा के अभाव से महापुरुष का समादर नही होता, सामाजिक सद्वृत्तियो का ह्रास होता है। श्रद्धा को प्रबल बनाकर मानवता और सदादर्शो को कायम रखना सुगम हो जाता है। सत् के प्रति आस्था ही श्रद्धा का दूसरा नाम है।

श्रद्धा मानव मन मे अपने साथ सद्विचारो की सुधा और सत्कर्मो की प्रेरणा का संचार भी करती है।

प्रेम

प्रेम महौषधि है। विरोधी को हितैषी, क्रूर को सुकुमार, दुराग्रही, कुमार्गी को सहज सन्मार्गी, असुर को देवता बनानेवाली महौषधि है। निराशा से भग्न हृदय को प्रेम का लेपन ही सोत्साह और स्वस्थ कर देता है।

शक्ति का शासन केवल शरीर तक होता है, मन को नियन्त्रित एवं प्रभावित करनेवाला प्रशासक प्रेम ही है।

क्रोध की भीषण हुंकार जिस मन कपाट को खोलने में विफल रह जाती है, प्रेम की पहली दस्तक उसे खोल देती है। अहंकार की प्रचण्ड शक्ति मन-मंदिर पर अधिकार नही कर सकती, किन्तु प्रेम देखते ही देखते उसका स्वामी बन बैठता है।

प्रेम वह शीतल बयार है जो जिसके हृदय में प्रवाहित होती है उसे समस्त तापो से मुक्त कर देती है ।

प्रेम वह दीप्त आलोक है जो परायेपन के तिमिर का नाश कर सर्वत्र अपनत्व का दर्शन कराता है ।

प्रेम वह जलधारा है जो तृषितो को तो तुष्ट करती ही है, जिस हृदय-भूमि पर होकर यात्रा करती है, उसे भी स्वच्छ व निर्मल कर देती है ।

सत्य

सत्य स्वयं शक्ति है, इसे किसी के आश्रय की अपेक्षा नही रहती । असत्य अशक्त है, अत अचल पड़ा रहता है । अपने अस्तित्व के लिए असत्य को भी सत्य का छद्मरूप धारण करना पड़ता है । सत्य के वेश मे ही मिथ्या को यत्-किंचित् काल का जीवन भी गुजारना होता है । सत्य की ऐसी महिमा है !

सत्य वह जिसमे सत् का निवास हो । इसीलिए सत्य ईश्वर है । सत्य सदा निर्भीक होता है । उसे छिपने की आवश्यकता नही रहती ।

लौ की भाँति होता है सत्य, जो न केवल आलोकप्रद, अपितु ऊर्ध्वोन्मुख भी होता है। ऊपर से ऊपर बढना ही उसका स्वभाव होता है । सरिता की भाँति वह निम्न से निम्न तल के क्रम में गतिशील नही रहता ।

असत्य का प्रभाव चिरकालिक नही होता । यह खोटा सिक्का है, जिसे तुरन्त चलन से बाहर कर दिया जाता है । सत्य का अरुणोदय होते ही असत्य की भ्रामक रजनी मे सर्प का भय उत्पन्न करनेवाली वस्तु रस्सी का निरीह और निर्जीव आकार ले लेती है ।

संकट

संकट की प्रतिक्रिया विचलन के रूप मे नही होनी चाहिये । सकट तो मध्य की कडी है, जिसके दोनो छोरो पर सुख है ।

विगत सुख का परिणाम वर्तमान संकट है, तो यही भावी सुख का कारण भी है ।

कष्ट तो इसलिए आता है कि अपनी रगड़ से जीवन को रत्न की भाँति दीप्त कर दे, अपने ताप मे तपाकर उसे कुन्दन बना दे ।

सुख धूमिलता और मलिनता का वाहक है, कष्ट उज्ज्वलता और पवित्रता का दूत है । संकट तो प्रेरणा और स्फूर्ति का स्रोत है। सरिता के लिए जितना प्रबल अवरोध हो उतना ही भीषण उसका वेग होता है ।

कष्ट अग्नि है, जो यदि दाहक है तो प्रकाश भी देती है। इसका स्वागत करना चाहिये, भय नही मानना चाहिये ।

कष्ट ही तो अपने दुखद रूप मे निन्दित होकर ही सुख को उसका गौरव दिलाता है ।

अभय

'अभय' साधक के लिए अनिवार्य तत्व है। अभय स्वयं ही परमेश्वर का रूप है। अभय-साधना इस प्रकार ईश्वरोपासना का एक मार्ग है। भय और मरण परस्पर पर्याय है और अभय जीवन का लक्षण है। भीत जन मृत्यु की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त कुछ कर ही नही सकते । मृत्यु उनके लिए विशेष फलदायी भी नही होती । ऐसे जन न आत्महित कर पाते है और न ही परहित।

भय व्यक्ति को क्लीव बनाता है। क्लीवता साधना-पथ की एक विकट बाधा है। भय मानस को सकोच देता है । पिचका हुआ हृदय मृत्यु का प्रतीक है ।

जीवन-यात्रा की सफलता का रहस्य है—अभय ।

जीवन

शैशवसुलभ चापल्य, यौवन सहज उत्साह और जरा योग्य चिन्तनशीलता —तीनो का सुन्दर और समुचित समन्वय ही जीवन है। किसी एक का आधिक्य यदि किसी अन्य की न्यूनता का कारण

हो, तो जीवन फिर अपूर्ण है। प्रात., मध्याह्न और साँझ–तीनो का प्रभाव ही तो दिवस को उसका रूप देता है।

मृत्यु के अस्तित्व को नकारने का स्वर ही जीवन है। मरणशील होकर भी और मृत्यु से भयभीत न होकर भी जो मृत्यु की कामना न करे, सच्चे अर्थो मे वही सजीव है। मृत्यु को दासी बनाकर जो नियन्ता बन सके उसी समर्थ जन्म और मरण के मध्य की अवधि जीवन है। वह जीवन ही क्या, जिससे मरण भीत न रहता हो।

विद्युत की कौध के उपरान्त गर्जन और तदनन्तर वर्षण कितना सुहाना क्रम है! दामिनि की द्युति के विना मात्र गर्जन कैसा नीरस शब्द मात्र रह जाता है। मात्र भाषा-प्रयोग भी ऐसी ही स्थिति है। जीवन का प्रथम तत्व तो है–तेज। तेजहीन जीवन शिखाहीन दीवट है।

जीवन का अस्तित्व सतत् क्षरणशील है, प्रतिपल भंगुरता को वरण करनेवाला, नश्वरता से समीपतर होनेवाला। सूर्य की भाँति जिसके उदित होने मे ही अस्त होने की क्रमिक क्रिया भी निहित रहती है।

सच्चा जीवन! सच्चा जीवन वह है जिसके समापन के पूर्व ही उसका सदुपयोग हो जाय, जो अभीष्ट-पूर्ति का सक्षम साधन बन सके।

जीवन एक यात्रा है, एक ऐसी यात्रा जिसका लक्ष्य ही आगामी विशिष्ट यात्रा की तैयारी करना है। जिसमे यह तैयारी हो गयी, वह सफल जीवन है।

प्रसन्नता

मानवमात्र का श्रेष्ठतम शृंगार है प्रसन्नता। इस अलंकरण से जितनी शोभा और मनोरमता उसकी बढती है, उतनी किसी बाह्य प्रसाधन से नही।

प्रसन्नता ही यौवन है । इस साधन से कोई किसी भी आयु मे युवा रह सकता है । अन्तत यौवन और प्रसन्नता दोनो ही तो उत्साह, स्फूर्ति और गतिशीलता के प्रदाता है ।

प्रसन्नता शीतल जल पूरित स्वच्छ जलाशय है, जिसमे निमग्न होकर प्रत्येक निर्मल तो हो ही जाता है, समस्त तापो से भी मुक्त हो जाता है ।

आभ्यन्तरिक प्रसन्नता ही सारे जगत् को किसी के लिए भव्य, सौन्दर्यशाली, चित्ताकर्षक और मनोरम बना देती है । हम जिस रंग का चश्मा चढायेगे उसी रग मे रगे हुए तो सारे दृश्य हमे दिखाई देगे ।

प्रसन्नता मन का तत्व है । इसे प्रसन्नता देनेवाली ब्राह्य वस्तु की विशेषता मानना भ्रम है ।

प्रसन्नता जीवन और जगत् के दुर्धर्ष संकटो से संघर्ष की प्रथम एवं अनिवार्य तैयारी है, जो उत्साह के आयुध-निर्माण का कार्य करती है ।

आशा-निराशा

उत्साह यौवन का अनिवार्य लक्षण है और उसका जीवन है–आशा । निराशा यौवन की मौत है । आशा की ओर उन्मुख रहना उत्साह की चाह और यौवन की राह है ।

आशा भरे हृदय को कोई भी संकट कभी आतंकित नही कर पाता और उसकी यह असमर्थता पराभव की प्रथम सीढी बनती है।

आशा व्यक्ति के लिए कभी दुखद नही होती । आशाओ की अपूर्ति तो निराशा है, वही खेदजनक होती है । उसे आशा मानना भ्रान्ति है । आशाएँ इस प्रकार निराशाओ मे तभी परिणत होती है जब व्यक्ति उसके लिए अतीव काल्पनिक आधार बनाता है–आशा का क्या दोष ?

सावधानी के साथ आशाओ को क्षेत्र दो, उद्यम से सीचो, सचेष्टता से संरक्षण करो, यत्न से विकसित करो, प्रसन्नता के ही प्रसून प्रस्फुटित होगे ।

सेवा

औषधि गुण–गान का विषय नही, सेवन की वस्तु है; प्रेम चर्चा का बिन्दु नही, आचरण का तत्व है और सेवा आराधना का पक्ष नही, कर्म की दिशा है। सेवा करने से ही सेवा की महत्ता का प्रतिपादन होता है और कर्ता को यथेष्ठ फल की प्राप्ति।

सेवा जीवन का एक धर्म है। इस रूप मे वह साधना है, इसे साधन बना लेना तो अपर स्वार्थ की पूर्ति का सकेत होगा। सेवा वह, जो प्रतिदान मे किसी की भी अपेक्षा न करे। नि स्वार्थ भाव ही सेवा के यथार्थ स्वरूप का निर्णायक तत्व है।

सेवा सदा महान रहती है। इस रूप मे सम्पन्न किये गये कार्यो के महत्व स्वयं सेवा के लिए कभी मापदण्ड नही हो सकते। स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहता है–क्या अन्तर आता है कि उसे किरीट बनाने मे प्रयुक्त किया गया है कि पॉव का बिछिया?

परमार्थ भाव से की गयी, निर्मल मन्तव्य के साथ की गयी, निर्लोभ भाव से की गयी सेवा ही श्रेष्ठ होती है — नही, मात्र वही सेवा है। शेष मे तो सेवा का भ्रान्त आभास मात्र ही होता है।

शान्ति

शान्ति अन्त जगत् की वस्तु है, दृश्यमान बाह्य संसार की नही। उद्विग्नता का निराकरण करके यही तो अचाचल्य की स्थापना द्वारा मन को साधनानुकूल बनाती है।

बाहर की अशान्ति भीतर की शान्ति पर कभी प्रतिकूल प्रभाव नही कर पाती। आवश्यकता है साधक मे दृढता की, संकल्पशीलता की, साधना के प्रति अविचलित निष्ठा की।

बहिर्जगत में शान्ति की खोज व्यक्ति को कस्तूरी मृग की भाँति निराशा और छटपटाहट देगी। स्व को पहचानने की महती आवश्यकता है। अपने भीतर झाँककर पूरी आस्था के साथ खोजने वालो को शान्ति की उपलब्धि हुए बिना नही रहती।

उपलव्ध शान्ति के अस्तित्व-निर्वाह के पक्ष मे सर्वाधिक महत्वशील कदम है — इच्छाओ का त्याग। यही निष्कामता जन्म देती है निरुद्विग्नता को, जिसका सकारात्मक रूप है शान्ति।

मनुष्य का रूप

मनुष्य के दो पक्ष है — वाह्य शरीर और अन्तर्मन। इन दोनो पक्षो मे गुण-साम्य मनुष्य के यथार्थ रूप की प्राप्ति की दिशा मे वाधक होता है। न तो दोनो के सुकुमार होने से और नही दोनो के कठोर होने से किसी को आदर्श रूप मिल पाता है।

इस दिशा मे आवश्यक यह है कि दोनो विपरीत लक्षणों के धारणकर्त्ता हो। मन का कठोर होना और काया का कोमल होना और भी अधिक भयंकर वाधा होगी। वलवान तन मे मृदुल मन ही अपेक्षणीय है।

मन की मृदुलता से ही प्रेम, वन्धुत्व, सदाशयता, धर्म-प्रियता, सेवा, करुणा, औदार्य आदि मानवोचित गुणो को विकास मिल पायगा। जीवन की सुन्दर रूपरेखा तभी गठित हो पायगी, मोक्ष का लक्ष्य तभी निर्धारित होगा और तदनुरूप साधना की पात्रता भी इसी अवस्था मे अर्जित हो सकेगी। जीवन की इस सुन्दर रूपरेखानुसार उसे ढालने, मानवोचित व्यवहार को रूपायित करने, मोक्षके लक्ष्य को प्राप्त करने आदि के क्षेत्रो मे सफलता के लिए कोमल तन सहायक नही हो सकेगा।

अत सही अर्थो मे मानव वह, जो सबल तन मे सुकोमल मन का स्वामी हो।

सम्पत्ति-विपत्ति

मानव स्वभाव से ही सयमशील है, सम्पत्ति-लोलुप है। भ्रमवश वह सम्पत्ति को विपत्ति-विनाशक मानकर उसकी अधिकाधिक वृद्धि मे व्यस्त रहता है। स्वार्थांध होकर वह संयम के साधनो के औचित्य-अनौचित्य का विवेक भी खो बैठता है। उसकी दृष्टि तो सम्पत्ति-विकास पर ही केन्द्रित हो जाती है। एक का अत्यधिक सम्पन्न होना स्वाभाविक रूप से अनेक अन्यों की विपन्नता का

मूल वनता है। समतल भूमि पर मीनार खड़ी करेंगे तो अन्यत्र कही गर्त वनेगा ही। यह अन्याय है। अत इस प्रकार अर्जित सम्पत्ति यथार्थ मे सम्पत्ति है ही नही।

क्योकि सम्पत्ति तो वह है जो सम्यक् नीतिसे न्यायपूर्वक प्राप्त हो। अन्याय और अनीति से प्राप्त सम्पत्ति तो परिणामरूप मे 'विपत्ति' है।

विपत्ति के अनिष्टकारी परिणामो से रक्षित होने का उपाय यह है कि इस तथाकथित सम्पत्ति को सत्कर्मों मे व्यय कर दिया जाय। ऐसा करना 'विपत्ति' को 'सम्पति' मे रूपान्तरित करना है। इस व्यय से ही सही सम्पत्ति हाथ लगेगी।

इस प्रकार वाह्य सम्पत्ति तो वस्तुत समाप्त हो जायगी — अर्थात् विपत्ति समाप्त हो गयी, किन्तु आन्तरिक सम्पत्ति का लाभ इसी विधि से होगा। विपदाहीन निश्चिन्तता, सन्तोष और शान्ति की श्री ही आन्तरिक सम्पत्ति है। यही चिरस्थायी है, यही सुपरिणामदायी है।

सफलता का रहस्य

कार्य की सिद्धि कर्म मे निहित है। उद्योग के अभाव मे सफलता सदिग्ध रहेगी, यह तो सत्य है, किन्तु यह साफल्य का सर्वस्व नही। घोर परिश्रमियों को भी निराशा की मझधार द्वारा ग्रसित होते देखा गया है। कारण यह होता है कि उनकी उत्साह की नौका जर्जर होती है। प्रसन्नता के पतवार टूटे होते है। फिर उन्हे वाधाओ की लहरे और संघर्प की आँधियाँ भला सफलता के कारण कूल को क्यो स्पर्श करने दे? दौड़ मे कई-कई धावक भाग लेते है, विजयी एक ही रहता है। सफलता की आशा न रखनेवाला तो दौड़ मे भाग ही क्यो लेने लगा, पर शेप फिर असफल क्यो रहते है?

कारण स्पप्ट है — सफलता उसी का वरण करती है जो प्रसन्नता के साथ कार्यारंभ करे और आद्योपान्त उत्साह के ईधन को ठंडा न होने दे। वही सफल रहेगा, शेप पिछड़ जायेगे।

मन: मनुष्य की सम्पत्ति

मन व्यक्ति का स्वामी बन बैठने का अभ्यासी होता है। वही आदेश-निर्देश देकर मनुष्य को गतिमान रखता है, किन्तु यह उसका छल है। स्वामी तो आत्मा है, मन का स्थान मनुष्य के लिए सम्पत्ति से अधिक नही होना चाहिये। उसे नियन्ता न बनने देने मे ही हित है। जो उसे नियंत्रित रखता है वही मंगल की ओर अग्रसर होता है। मन अपनी तृप्ति के लिए मनुष्य (और इस रूप में आत्मा) को विषयो की ओर खीच कर ले जाता है, जिसका परिणाम पतनकारी होता है। इसे मनुष्य शुभ मार्गों पर लगाए रखे तो यही उसके उत्थान मे भी सहायक हो जाता है। भला बिना वल्गा के भी अश्व कभी हमे गन्तव्य स्थल पर पहुँचाता है? वह तो फिर चरागाह मे ही ले जायगा (जहाँ उसे तृप्ति मिलती है)। तो मन एक सबल साधन है। आवश्यकता इस बात की है कि इसे स्वस्थ और स्फूर्तियुक्त रखा जाय, इसे शुद्ध रखा जाय। शुभ विचारो की निर्मलता इसकी शक्ति को बढाती है और कुविचार स्वयं ही इसकी दुर्बलताएँ है। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य, लोभ आदि के विकारो से इसे बचाना अनिवार्य है।

शुभ विचार भी मन-सदन मे ही निवास करते है, किन्तु विकारो की प्रबलता उन्हे प्रखर नही होने देती और धीरे-धीरे वे निस्तेज होते-होते सुप्त ही हो जाते है। शुभ विचारो की उपयोगी फसल को पनपाने के लिए आवश्यक है कि मन के खेत से दुर्विचारो की खरपत वार को हटाया जाय, अन्यथा भूमि की उर्वरा शक्ति का उपभोग यह व्यर्थ का घासपात ही करता रहेगा और पोषण के अभाव मे उपयोगी फसल अविकसित रह जायगी।

मन हठीला और ढीठ होता है। यदि इसे अत्यधिक स्नेह दिया गया, इसकी हाँ मे हाँ ही मिलायी गयी, इसे स्वच्छन्द हो जाने दिया, तो यह उस अतिवत्सलता प्राप्त पुत्र की भाँति हो जायगा जो अपने अभिभावको के आदेशो का भी अनादर करता है और शिष्टता की सभी मर्यादाओ को लाँघ जाता है। व्यक्ति के लिए उसका मन स्वेच्छाचारी पुत्र की भाँति ही समस्या बन जाता

है और फिर उसे अपने अधीन करना लगभग असंभव हो जाता है। अत उसे मुक्त रखना ही नही चाहिये।

यौवन

यौवन शरीर नही, मन की एक विशेष अवस्था का नाम है। आयु-सापेक्ष्य मानना, यौवन की भ्रामक, अपूर्ण व्याख्या होगी। यौवन का पर्याय है उत्साह। जिस किसी मे उत्साह है वह युवक है, फिर भले ही वह आयु से वृद्ध अथवा बाल ही क्यो न हो। ठीक इसके विपरीत यौवनोपयुक्त आयुवान यदि शिथिल है, हतोत्साहित है तो उसकी अपेक्षा वृद्धजन अधिक अच्छे है कि वे अपने अनुभवो का लाभ तो दे पाते है।

आयु का ढलना एक सहज क्रम है, किन्तु शरीर की भाँति जो मन को अशक्त नही होने देता, उस पर निस्तेजता और प्रमाद, शिथिलता और अनुत्साह को प्रतिविम्बित भी नही होने देता, वह चिरयुवक है, उसका यौवन अनन्त है।

मन का यह यौवन शुभ दिशाओ मे अग्रसर होने के लिए आधारभूत शक्ति का रूप है। इसके अभाव मे अभीप्ट की प्राप्ति असभव है। यही अभाव बाजूओ के सबल होते हुए और नौका व डॉड दोनो के ठीक होने पर भी कूलस्पर्श नही होने देता।

यौवन वह धन है जिसकी यत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये।

मौन

स्वेच्छापूर्वक अवाक रहने की स्थिति को ही प्राय मौन समझा जाता है। वस्तुत मौन का दायरा इससे अधिक व्यापक है। मौन तो वह अवस्था है जिसमे अचंचलता, सघन आत्मलीनता का भाव सन्निहित हो। यह अचचलता वाणी की ही नही, शरीर की, मनकी और आत्मा की भी साधी जा सकती है और अपेक्षाकृत वही श्रेयस्कर भी है। यह अन्य बिन्दु है कि वाणी का मौन इसमे प्रबल सहायता करता है।

मन मे अशुभ और अमंगलकारी विचारो को उदित न होने देना मन का अचाचल्य, किंवा मन का मौन है।

इन्द्रियो की वल्गा पर अधिकार कर उन्हे विषयो मे न भ्रमित होने देना—तन का मौन है ।

समस्त इतर भावो से पृथक् हो आत्मलीन हो जाना आत्मा का मौन है ।

वस्तुत ये एक-दूसरे के पूरक और परस्पर सहायक स्वरूप है । मौन का वास्तविक स्वरूप तो इन सबका उचित समन्वय ही है ।

यथार्थ मे मौन का साधक ही सच्चा साधक, मौनी अथवा मुनि है । आत्म-मौन उसका सर्वाधिक अपेक्षित लक्षण है ।

मौन मनन की स्थिति को सुलभ और सुगम बनाता है । मौन विश्राम के क्षण नही होते । यह तो मानसिक क्रिया का सर्वोत्कृष्ट समय है, स्वकेन्द्रित होने की सफलतायुक्त अवधि है ।

मौन शक्ति की पुनर्प्राप्ति का समर्थ स्रोत है । तन-मन अपने व्यापार की व्यस्तता मे शक्ति की जिस क्षति को प्राप्त होता है, मौन उसकी पूर्ति करता है । मौन मुख्यत मन की पौष्टिक खुराक है । निद्रा से शरीर पुनर्स्वस्थ एव स्फूर्त हो जाता है, मन के लिए मौन यह कार्य करता है ।

मौन एकाग्रता का अभ्यास है । एकाग्रता साधना की अनिवार्य आवश्यकता है ।

सकल्प

लक्ष्य-प्राप्ति की उत्कट कामना नही, तदर्थ तत्परता एव उद्यम का उद्गम सकल्प है । सकल्प ही लक्ष्य की समस्त धूमिलताओ को समाप्त कर उसे स्पष्ट करता है, संकल्प ही मन को इस दिशा मे सबल बनाता है कि वह अग-उपांगो की अपेक्षित क्षमता को प्रेरित करे । संकल्प उस साहस का भी जनक है जिसकी व्यवधानो को ध्वसत करने मे अनिवार्यता रहती है ।

लक्ष्य प्राप्ति पर सर्वाधिक तोष सकल्पवृत्ति को ही प्राप्त होता है और सफलता के श्रेय की अधिकारी भी प्रमुखत यही है ।

सकल्प-शक्ति के अभाव मे शेष शक्तियाँ निष्क्रिय रह जाती है ।

सहनशीलता

अनेक सद्‌गुणो की जननी अकेली सहनशीलता है । यह एक ऐसी वृत्ति है जो अकेली नही रहती, चन्द्रमा की भाँति अनेक शीलो के तारो से घिरी रहती है । तन-मन को पहुँचे (विशेषत मन) किसी भी आघात की प्रतिकूल प्रतिक्रिया के अभाव मे सहनशीलता स्वयं को व्यक्त करती है ।

अमित्र तो हमारा अहित करेगा ही, यदि हम भी उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करे तो क्या उसके समान ही अपराध नही करेगे? सहनशील इस मर्म को पहचान कर क्षमा का भाव ही मन मे लायेगा और अहिंसा का आचरण तो स्वत हो ही जायगा ।

सहन कर लेने की प्रवृत्ति मन मे ऐसी अटल शान्ति का संचरण करती है कि वाह्य प्रतिकूल परिस्थितियाँ वेचारी पराजित हो जाती है । यह सघन शान्ति अपराधी के प्रति उत्पन्न होने वाले क्रोध का समर्थतापूर्वक शमन करती है ।

आपत्तियाँ मन को विचलित करती है, सहनशीलता धैर्य के अनुपम आभूषण से उसकी कान्ति को अभिवर्धित करती है । जिसका जीवनपुष्प जितने अधिक कष्ट-कंटको मे खिलता है, उतनी ही अधिक गौरवगंध मिलती है, यदि धैर्य ने सहयोग किया, सहनशीलता सक्रिय रही ।

सहनशीलता वर्तमान-सापेक्ष्य ही नही होती, उसका प्रभाव तो भावी आपदाओ के सन्दर्भ मे भी निर्भीकता उत्पन्न करता है । व्यक्ति निश्चिन्त हो जाता है । इसी निर्भीकता के परिणामस्वरूप वह संचयवृत्ति के स्थान पर त्याग और दानादि मे रम सकता है ।

सहनशील व्यक्ति से मानवता के किसी भी पक्ष को कोई ख़तरा नही होता । यह वह गुण है जो मानव को देवत्व के समीप ले जाता है ।

पाप और पापी

व्यक्ति कार्य बाहर करता है, उसका मूल्याकन स्वयं उसके भीतर होता है। उद्यम शरीर करता है, पर उसका आदेश-निषेध करनेवाला नियन्ता उसका मन है। जिस काम के लिए आत्मा समर्थन न करे, वह पाप है। आत्मा सूक्ष्म है। बाह्य शक्तियो की भाँति वह प्रत्यक्ष व्यक्ति के मार्ग मे व्यवधान नही बनती। इसीलिए उसके निर्देशो को व्यक्ति अनमुनी कर जाता है। व्यक्ति पापी होता चला जाता है।

पाप के बाद भी मन उसे स्मरण दिलाता है, प्रायश्चित्त के लिए प्रेरित करता है। इस स्वर को भी जो पचा जाता है वह सशक्त पापी बनता चला जाता है।

सशक्त पापी को भी उसकी आत्मा ताडना देती है और उसे आत्मग्लानि का अनुभव होता है। जो इस अवस्था मे भी सचेत हो जाता है उसके पाप-मार्ग-त्याग की संभावना बन जाती है, पर जो इस ग्लानि की अवस्था को भी भुला देने का प्रयास करता चलेगा, वह पक्का पापी हो जायगा। उसका रोग असाध्य हो जायगा।

आत्मा के प्रथम सकेत पर ही संभल जाना पाप से बचने का सशक्त साधन है। बाह्य साधनो की अपेक्षा भीतर का सुधारक अधिक सूक्ष्मता से व्यक्ति का निरीक्षण-परीक्षण करने की समर्थता रखता है। उसके आदेशो का आदर करना हमारा परम कर्त्तव्य होना चाहिये।

उद्यम और नियति

यह कहना मिथ्या है कि नियति कुछ नही, किन्तु यह कहना उससे भी अधिक मिथ्या है कि नियति ही सर्वस्व है, मनुष्य कुछ नही, उसका उद्यम कुछ भी नहो। नियति भविष्य का पूर्वनिर्धारण है, किन्तु यह अपरिवर्तनीय नही। उद्यमी अपने उद्योग से प्रारब्ध को सुन्दर रूप दे सकता है। दुर्भाग्य को सौभाग्य मे परिवर्तित करने की कुजी है उद्यम। हस्तरेखाएँ भवितव्य की कथा कहती है, किन्तु ये रेखाएँ भी समय-समय पर रूपान्तरित होती रहती

है। क्या यह इसका द्योतक नही कि भाग्य बदलता रहता है? ज्यो ज्यो व्यक्ति उद्योगोन्मुख होता जाता है, उसकी हस्तरेखाएँ अपना रूप परिवर्तित करती चलती है — प्रारब्ध उत्कृष्ट होता चलता है।

दो कान : एक मुख

प्रकृति ने हमे कान तो दो दिये है, पर मुख केवल एक। कदाचित् उसका मन्तव्य यह रहा हो कि हम सुनें अधिक, वोले कम। मिथ्या दम्भ के अधीन व्यक्ति आज अन्यो को सुनना नही चाहता, स्वय को ही दूसरो पर थोपने का दृढ अभिलाषी वना रहता है। वह इसी मे अपने को अधिक महत्त्वशाली अनुभव करता है। यह भ्रामक धारणा उसके लिए घातक रहती है। वह दुराग्रही, दुर्विनीत तो होता ही चलता है, वह ज्ञानक्षेत्र मे निरन्तर पिछड़ता भी चलता है और उसका दंभ उसे अपनी मूर्खता को स्वीकार भी नही करने देता। वाचालता का दुर्गुण ऐसी स्थिति मे उसके अविवेक और अल्पज्ञता को ही अभिव्यक्ति दे पाता है। इसे भी वह आवृत नही रख पाता।

दुर्भाग्य से यदि वाचालो के हाथो ही समाज और देश की वल्गा आ जाती है, तो लोककल्याण की सभावनाएँ धूमिल हो जाती है। समाज के लिए वाचालो से सावधान रहना एक अनिवार्यता है।

दान, मान और अभिमान

दान दीन-बन्धुत्व की दिशा मे प्रेरित करनेवाली एक प्रबल प्रवृत्ति है, किन्तु यदि दान के साथ गौरव का भाव जुड जाता है तो दान की महान प्रवृत्ति का अवमूल्यन हो जाता है। प्रतिष्ठा-वृद्धि या यशलाभ के प्रयोजन से किया गया दान कोई अर्थ नही रखता।

दान का अनुगामी यदि अभिमानी हो जाय तो यह और अधिक भयकर हो जाता है। दानी का अभिमान स्वयं को श्रेष्ठ और उच्च स्थान का अधिकारी मान कर प्रत्युत्तर मे दान-पात्र को हीनता मे ग्रस्त कर देता हैं। यह तो उसे और अधिक दीन बनाना हुआ। दीनबंधुत्व की गंध भी इसमे कैसे अनुभव की जा सकती है!

नम्रता

नम्रता कोमलता को अभिवर्धित करनेवाला मानवीय गुण है। यह सम्पन्नो का वास्तविक व अनिवार्य भूषण है। प्राप्ति के पीछे नम्रता भी चलती रही है। सफलता का प्रमाण-पत्र नम्रता है। फलो से लदी शाखाएँ झुकी रहती है। बबूल की डालियाँ ही अकड़ी रहती है।

याचको की कोमलता दीनता है, समृद्धो की मृदुलता ही नम्रता है।

सहानुभूति : वास्तविक स्वरूप

पराये सुख मे सुख अनुभव करना भी सहानुभूति है। दूसरो की वेदना हममें भी दुःखका जागरण करे, मात्र यही सहानुभूति का समग्र स्वरूप संगठित नही करता। यह द्वितीय पक्ष आप मे मानव-मैत्री के भाव को प्रखर करता है, किन्तु प्रथम पक्ष ही वह शक्ति है जो आपको मानव-मित्र बना देता है।

पराये सुख मे सुख की अनुभूति का अभ्यास हमे ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, प्रतिशोध, वैमनस्य आदि मानवता विरोधी नाना दुर्गुणो से रक्षित रखता है।



परिशिष्ट

पूज्य अमरसिंहजी म० के पश्चात् आचार्य परम्परा का विकास

पूज्य श्री तुलसीदासजी म०

वर्तमान राजस्थान प्रदेश के गठन के पूर्व 'मेवाड़' एक देशी रियासत थी। मेवाड़ के जूनिया ग्राम मे संवत् १७४३ मे आपका जन्म हुआ था। अग्रवाल गौत्रीय श्री फकीरचन्दजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती फूलाबाई आपके सम्मान्य अभिभावक थे। मात्र १५ वर्ष की आयु में ही आपका परिणय सम्पन्न हो गया था। पूज्य श्री अमरसिहजी महाराज के प्रवचन से प्रभावित होकर आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। योग्यतम गुरु के सुयोग्य शिष्य ने गुरु-यश की अभिवृद्धि मे ऐतिहासिक योगदान किया। आपने अपने अप्रतिम प्रभाव से सैकडो श्रद्धालुजनो को स्थानकवासी जैन धर्म की पताका तले ले आने मे अपूर्व सफलता प्राप्त की। कुछ काल आप जोधपुर मे ठाणापति विराजे।

संवत् १८३० मे ४५ दिन का संथारा धारण कर आपने परलोक गमन किया।

पूज्य श्री सुजानमलजी म०

अजमेर क्षेत्रीय सरवाड़ ग्राम मे सवत् १८०४ में आपका जन्म हुआ। आपके पिताश्री का नाम विजयचन्दजी भंडारी और माता का नाम श्रीमती राजीबाई था। मात्र १४ वर्ष की आयु मे ही पूज्य श्री तुलसीदासजी म० के वैराग्य-प्रेरक व्याख्यान से प्रभावित होकर आपके मन मे वैराग जागृत हुआ और आपने दीक्षा धारण करने का निश्चय कर लिया। अपनी पूज्य माताजी एवं बहन के साथ आपने चैत्र शुक्ला ११, संवत् १८१८ को दीक्षा अंगीकार की। मेवाड, मारवाड व मालव प्रदेशो मे उग्र विहार

करते हुए असख्य मानवदेहधारियो को भवसागर से तारने के गुरु-गौरव से आप विभूपित रहे । संवत् १८४९ की ज्येष्ठ कृष्णा ९ को किशनगढ मे अनशन व्रत ग्रहण कर आप परलोकवासी हुए ।

धर्मवीर श्री जीतमलजी म०

महापुरुषो का समग्र जीवन अपने लिए नही, दूसरो के लिए होता है — मानो यह समाज की सम्पत्ति है, जिसे महापुरुष धरोहर के रूप मे धारण किये रहते हैं । धर्मवीर श्री जीतमलजी म० का जीवन इस कसौटी पर खरा उतरता है । यही नही कभी-कभी तो यह भ्रम भी होने लगता है जैसे पूज्य महाराज सा० के जीवन के आधार पर ही महापुरुषो की परीक्षा के लिए ऐसी कसौटी तैयार की गयी हो ।

सं १८२६ मे रामपुरा (कोटा) मे आपका जन्म श्री सुजानमलजी-सुभद्रादेवी दम्पती के यहाँ हुआ था । श्रीसम्पन्न परिवार मे आपका बाल्यकाल बड़े लाड-प्यार के साथ व्यतीत होता रहा । १८३३ (वि. सं) मे पूज्य सुजानमलजी म० का मधुर, कायाकल्पकारी प्रवचन रामपुरा मे चल रहा था । बडी संख्या मे श्रद्धालुजन भावविभोर हो भगवान महावीर की अमर, पुनीत वाणी का श्रवण कर रहे थे, जिनमे एक माता भी अपने पुत्र सहित उपस्थित थी । इन दो कोमल हृदयो मे प्रभावपूर्ण वाणी की प्रतिक्रिया जागृत हुई । निर्मल वैराग्य सूर्य मायामोह के घोर तिमिर को विदीर्ण कर इनके मनोनभ मे उदित हुआ । परिणामत दोनो ने दीक्षा ग्रहण करने की अपनी अटल अभिलाषा व्यक्त की । कहना न होगा कि यही बालक सतत साधना के ताप मे कुन्दन बन कर निखर आया था — धर्मवीर पूज्य जीतमलजी म० के रूप मे ।

असाधारणत· अल्पकाल मे ही असामान्य प्रतिभा, ज्ञान, विवेक अर्जित कर चुकने के कारण शीघ्र ही सं. १८३४ मे आपको दीक्षा प्रदान कर दी गयी । त्वरा के साथ आपने अनेक

जैनाजैन ग्रथो का पारायण कर लिया। मौलिक रंग-ढग लिये हुए आपकी व्याख्यान शैली मे अनुपम प्रभाव था । लेखन तो आपका यथार्थ में शिवपूर्ण और उच्च कोटि का था ही । आप दोनो हाथो से ही नही, पैरो से भी लेखनी थाम कर लिखा करते थे । प्रचलित है कि आपने १२००० ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ तैयार की थी । इसके अतिरिक्त काव्य-कौशल भी आपकी एक बढी-चढी विशेषता थी । 'अणविंध्या मोती' आपकी कविताओ का सुन्दर सग्रह है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है ।

पूज्य धर्मवीरजी वस्तुत: उच्च कोटि के कलाकार थे । आपके चित्रकला कौशल के प्रमाण स्वरूप अढाईदीप, त्रसनाडी, स्वर्ग, नरक, राजलाभ केशीगौतम चर्चा, परदेशी राजा का स्वर्गीय दृश्य आदि अनेक चित्रकृतियाँ अमर महत्व से विभूषित है । इसके अतिरिक्त सूर्यपल्ली सूचिका द्वारा पत्र के दोनो ओर बनाये हुए अक्षर विशेषकर आपकी मौलिक कलात्मक सूझ-बूझ की प्रतीक अति आकर्षक कला-कृतियाँ है ।

आपको अनेक भाषाओ पर अधिकार प्राप्त था ।

सं. १८८० की चर्चा है। आप श्री का जोधपुर पधारना हुआ । एक समस्या उन्ही दिनो उठ खडी हुई । पूज्य धर्मवीरजी की प्रसारित होती ख्याति से ईर्ष्या रखनेवाले कुटिल जनो ने एक विवाद व्यर्थ ही मे छेड दिया कि पानी की एक छोटीसी बूंद में असंख्य जीव कैसे रह सकते है ? अनेक प्रकार से आपने इस प्रश्न को सुलझाकर स्पष्ट किया, किन्तु न समझने की हठ पर दृढ विरोधियों ने सहमति प्रकट न की । विवाद इतना बढा कि स्वय जोधपुर नरेश भी वहाँ आये, जिनका मत था कि जैन शास्त्रो मे अतीव कल्पनाएँ और निरी गप्पें है और पानी की बूंदवाला सिद्धान्त उनका ही एक उदाहरण है । अन्तत आपश्री ने एक कागज के टुकडे पर उँगली का निर्देश करते हुए नरेश से प्रश्न किया कि यहाँ क्या है ? स्पष्टत पत्र पर कुछ भी दृष्टिगत न होने के कारण नरेश उलझन मे पड गये । कुछ भी दिखायी नही देता

था । तभी एक कॉच की सहायता से छोटी सी परिधि में आपश्री ने नरेश को १०८ हाथियो के चित्र दिखा दिये । नरेश आपश्री से अत्यन्त प्रभावित हुए । वे सभी चित्र पूज्य गुरुदेव राजस्थान केसरीजी म के पास आज भी सुरक्षित हैं ।

धर्मवीर श्री जीतमलजी म० ने आजीवन जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया और ७८ वर्ष की आयु मे आपने जोधपुर मे एक माह का संथारा ग्रहण किया और ज्येष्ठ शुक्ला १०, सं० १९१२ को आपका स्वर्गवास हुआ ।

पूजनीय श्री ज्ञानमलजी म०

मारवाड अन्तर्गत स्थली प्रान्त के संतराथ ग्राम को पूज्य श्री ज्ञानमलजी म. के रूप मे स्थानकवासी जैन समाज की एक महत्वपूर्ण देन देने का गौरव प्राप्त है। आपका जन्म सं. १८६० मे पौष कृष्णा ६, मंगलवार को हुआ था । आपके माता-पिता के नाम क्रमश श्री जोरावरमलजी गोलेच्छा तथा माना देवी था । आपने धर्मवीर श्री जीतमलजी म० के सदुपदेश के प्रभाववश ही सं १८६९ मे पौष कृष्णा ३, बुधवार को दीक्षा ग्रहण की । यह महती घटना 'झाला मण्डप' नामक स्थान की है । जैन शास्त्रों के आप मर्मज्ञ तत्त्वज्ञाता थे । शान्तदान्तादि गुण का आप मे विशिष्ट आधिक्य था । आपने भादवा सुदि ४ को सावत्सरिक चौबिहार उपवास आनन्द एवं उत्साह के साथ किया और उस अवसर पर भी आपने धारा-प्रवाह प्रभावशाली व्याख्यान किया । अगले ही दिन आपने चतुर्विध श्री संघ से क्षमायाचना की । पारणे के लिए शिष्य आहार ले आया था और आप पद्मासन मुद्रा मे भक्तामर स्तोत्र का पाठ कर रहे थे । अनेक श्रावक गण उपस्थित थे । स्तोत्र समाप्ति पर ॐ के उच्चारण के साथ आप परलोक-गामी हो गये ।

पूज्य श्री पूनमचन्दजी म०

मारवाड़ क्षेत्र के जालोर नगर मे सं. १८९२ मे मार्गशीर्ष शुक्ला ९ तद्नुसार शनिवार को पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० का जन्म हुआ था । आपके पिताश्री का नाम 'उमजी' राय गांधी

तथा माता का फूला देवी था। मात्र ११ वर्ष की ही अवस्था में पूज्य श्री ज्ञानमलजी म० से प्रभावित होकर आपमे दीक्षित होने की अभिलाषा जागृत हो गयी। इस हेतु अनुकूल वातावरण पहले से ही निर्मित था। अपनी भगिनी तुलसाजी द्वारा दीक्षा का ग्रहण किया जाना निश्चित हो चुका था, तथापि आपको इस लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग मे विकट व्यवधान उपस्थित होते रहे। सर्वप्रथम तो जब दोनो भाई-बहन ने दीक्षा प्राप्ति हेतु आज्ञा चाही, तो ममता के वशीभूत हो पिता ने अनुमति दी ही नही। अन्तत सशक्त सकल्प-बल से परास्त होकर उन्हे तो अनुमति प्रदान करनी हा पडी, किन्तु जहाँ लगता था कि अब मार्ग समतल हो गया है, वही इससे अधिक विकट बाधाएँ आ उपस्थित हुई। पहले तो इनके चचेरे भाई ने, जो उस समय 'कोटवाल' थे, इन्हे एक कमरे मे बन्द कर दिया और किसी प्रकार इस बन्धन से मुक्त होकर वे जोधपुर पहुँचे। महोत्सव के उपरान्त दीक्षार्थ आप अन्यत्र पधारनेवाले थे कि तभी जोधपुर-निवासी आपके एक फूफाजी ने फिर से बाधा पहुँचाई। उनके द्वारा आपको फिर वही रोक लिया गया। एक कमरे मे आपको बन्द कर दिया गया और सभी द्वारो पर बाहर से ताले जड दिये गये। एक माह तक इस कारावास की यातना भोगने के पश्चात् खिडकी से भाग निकलने मे आपको सफलता मिल सकी। लौट कर आप पुन जालोर पहुँचे और दोनो भाई-बहन दीक्षार्थ तत्पर हो गये। व्यवधान पुन. कोटवाल की ओर से आया जिसने अपना यह निश्चय व्यक्त किया कि वह इन्हे जालोर मे तो दीक्षा ग्रहण करने ही नही देगा। अत विवश हो आपको भवराणी गाँव जाना पडा जहाँ पूज्य गुरुश्री ज्ञानमलजी म० उन दिनो विराजित थे। अब दीक्षार्थी की आयु १४ वर्ष हो गयी थी, जब कि उन्होने ११ वर्ष की अवस्था मे तदर्थ संकल्प किया था। अर्थात् निरन्तर ३ वर्ष तक आप इस मार्ग मे आनेवाले अवरोधो से जूझते रहे। यह तथ्य स्वत इसका प्रतीक है कि साधनामय जीवन के प्रति आपके मन मे लगन की कितनी गहराई और दृढता रही। जोधपुर, बीकानेर, कोटा, ब्यावर, उदयपुर, पाली, गुलाबपुरा,

अजमेर, किशनगढ आदि क्षेत्रो मे आपने धर्म की दृढता मे अभिवृद्धि की । सतत् आत्म-साधना मे आप तल्लीन रहे ।

संघ द्वारा आपकी सुयोग्यता, प्रतिभा और विवेकशीलता के आधार पर आचार्य पद की प्रतिष्ठा से आपको विभूषित किया गया। यह प्रसंग सं० १९५० के मार्गशीर्ष माह का है। स० १९५२ के जालोर चातुर्मास काल मे भाद्रपद सुदि पूर्णिमा को पूज्यश्री पूनमचन्दजी म० ने इस नश्वर देह को त्याग कर देह-लीला समाप्त की।

मरणोपरान्त एक चमत्कारी घटना घटी, वह भी बड़ी प्रसिद्ध है । माडी (वैकुठी) मे सजाकर पार्थिव शरीर को स्मशान भूमि ले जाया गया था और माडी सहित ही उसे अग्नि को समर्पित किया गया । हुआ यह कि काष्ठ-रचित माडी तो जल गयी, किन्तु उसका तुर्रा सुरक्षित रहा, अग्नि से सर्वथा अप्रभावित रहा । श्रद्धालु भक्तगण इस अमर तुर्रे को जब हस्तगत करने का प्रयास करने लगे तो वह आकाश मार्ग से उड गया ।

इसी प्रसग मे एक और चमत्कार की चर्चा की जाती है। दाहक्रिया के पश्चात् शवयात्री जब स्नानार्थ कुड पर गये तो जल केशर घुला-सा हो गया और सब के स्नान कर चुकने पर जल पुन स्वाभाविक रूप मे आ गया ।

इन चमत्कारो पर अनास्था या अविश्वास करने का कोई आधार नही, क्योकि आज भी जालोर के वृद्धजन इस सम्बन्ध में चर्चा किया करते है, जिनका प्रत्यक्षदर्शियो से अवश्य ही सम्पर्क रहा है ।

आत्मार्थी मुनि ज्येष्ठमलजी म०

पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० के पश्चात् इस परम्परा मे आपकी गणना है । आत्मार्थी मुनि ज्येष्ठमलजी म० 'मारवाड के सिद्ध पुरुष' के रूप मे प्रख्यात थे । आपका जन्म सं० १९१४ मे समदडी (मारवाड़) में पौष वदि ३ को हुआ था। लूंकड 'हाथीजो' व लिछमाजी आपके पिताजी व माताजी का नाम था । पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० से आपने १७ वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण

की। संसार जब निंद्रालस, अचेतन होता, रात्रि के शान्त प्रहरो मे आप साधना-रत रहा करते थे । जैनेतर अनेक ठाकुर भी आपके प्रति श्रद्धा रखते थे । सं० १९७४ मे आप समदडी पहुँचे और चतुर्विध संघ को आपने अवगत करा दिया कि आपका संथारा त्रिदिवसीय होगा और वैशाख वदि ४ को आप देह त्याग कर देगे, जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ । आपके जीवन की अनेक चमत्कार-पूर्ण घटनाएँ है जो स्थानाभाव से यहाँ पर नही दी जा रही है।

पूज्य महास्थविर पं० मुनिश्री ताराचन्दजी म०

आश्वीन शुक्ला संवत् १९४० को मेवाड़ के बम्बोरा ग्राम मे मुनि श्री ताराचन्दजी म० का जन्म हुआ था। माता ज्ञानकुँवर बाईने आपका अत्यन्त ममत्व सहित लालन-पालन किया था। आपके पिताश्री का नाम श्री शिवलालजी गुदेचा था । आपका जन्म-नाम हजारीमल रहा । बाल्यावस्था मे ही पिताश्री का निधन हो गया । मातुश्री आपको लेकर तब उदयपुर चली आयी । इस समय आपकी आयु मात्र ६ वर्ष की थी । उदयपुर में माता पुत्र को लेकर प्रायः प्रतिदिन महासतीजी छगनकुँवरजी का व्याख्यान सुनने जाया करती । दोनो के मानस पर वैराग्ययुक्त प्रभाव अंकित होने लगा, किन्तु माताजी पुत्र की चिन्तावश उस समय दीक्षा ग्रहण न कर सकी । इसके पश्चात् स० १९४६ मे पूज्य पूनमचन्दजी म० का चौमासा उदयपुर में हुआ । माता व पुत्र आपश्री के प्रभाव से पुन· वैराग्य-दिशा मे मुडने लगे । बालक के मामा हंसराजजी भण्डारी ने व्यवधान डाले, किन्तु अन्तत विजय दीक्षार्थी की रही । माता व पुत्र चित्तौड व समदडी होते हुए जालोर पहुँचे जहाँ उस समय पूज्य म० बिराज रहे थे । आपके चरणा-श्रय में पुत्र को समर्पित कर माता ने प्रार्थना की कि योग्य होने पर इसे दीक्षा प्रदान कर दी जाय और स्वयं ने महासती छगनकुंवरजी से दीक्षा प्राप्त कर ली । माँ को साध्वी-वेश मे देख पुत्र भी दीक्षा हेतु व्यग्र रहने लगा । शिक्षा आदि के उपरान्त इन्हे भी पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० ने दीक्षा प्रदान कर दी और

अब आपका साधक नाम ताराचन्दजी महाराज हो गया। यह शुभ दिन था सं० १९५० की ज्येष्ठ शुक्ला १३। इसके पश्चात् के तीसरे चातुर्मास (जालोर) के अन्तर्गत भाद्रपद सुदि ३० के दिन आप अपने गुरुदेव के विश्वस्त आश्रय से रहित हो गये। अर्थात् आचार्य पूनमचन्दजी म. का स्वर्गवास हो गया। समस्त गुरुतर दायित्व अब आत्मार्थी ज्येष्ठमलजी म. पर आ गया। आप उनके नेतृत्वमें रहने लगे। पूज्य गुरुवर के आशीर्वादों की शक्ति द्वारा आप सभी व्यवधानों को पार करते हुए अग्रसर होते रहे। आपने स्थानकवासी जैन धर्म को नई चेतना और स्फूर्ति प्रदान की।

पूज्य श्री ताराचन्दजी महाराज साहब की प्रतिभा, विवेक व योग्यता के परिणामस्वरूप ही आपके शिष्य इस ग्रन्थ के चरित्नायक पूज्य श्री गुरुदेव पुष्कर मुनिजी आज 'राजस्थान केसरी' के गौरव को अभिवर्धित कर रहे है और कोटि-कोटि जन-मानस मे एक विशिष्ट स्थान रखते है।



राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी का सन्त परिवार

श्री हीरा मुनिजी म०

पण्डित प्रवर श्री हीरा मुनिजी म० की जन्मभूमि अरावली की गोद मे भोमटवास मादडा की है। जाति क्षत्रिय है। पिता पर्वतसिहजी। माता श्री चुन्नीबाई है। दीक्षा संवत् १९९५ की पोषवद पञ्चमी को वास गॉव मे हुई। अध्ययन हिन्दी और संस्कृत मध्यमा, प्रभाकर, आगम आदि का। आपश्री महास्थविर ताराचन्दजी म० के सुशिष्य है। चरित्नायकजी के गुरुभाई है। आपश्री की अनेक पुस्तके प्रकाशित हुई है। मेघचर्या, सुबाहु कुमार, विचारज्योति, जीवनपराग आदि आपश्री की मुख्य कृतियॉ है। आप प्रकृतिसे सरल व स्नेही सन्त है।

श्री देवेन्द्र मुनिजी

राजस्थान केसरीजी के प्रधान अन्तेवासी शिष्य गुरुदेवश्री देवेन्द्र मुनिजी की जन्मभूमि उदयपुर है। आपका जन्म धनतेरस संवत् १९८९ का है। आपश्री की दीक्षा १९९७ मे चैत शुक्ला तृतीया को खण्डप गॉव मे हुई। आपश्री हिन्दी जगत के महान साहित्यकारो मे है। अब तक आपश्री के द्वारा लिखित-सम्पादित ४५ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। आपश्री साहित्यरत्न, शास्त्री आदि अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण है। गौर वर्ण, ऊँचा कद एवं प्रकृति के बहुत सुन्दर मुनिराज है। आप श्री की मातेश्वरी एवं बहिनजी दीक्षित है, जिनका नाम प्रभावतीजी एवं पुष्पवती के रूप मे है। आपकी जाति ओसवाल बडिया है। पिताश्री जीवनसिहजी बडिया एव माताश्री प्रभावतीजी हैं। भगवान महावीर· एक अनुशीलन, भगवान पार्श्व . एक समीक्षात्मक अध्ययन, ऋषभदेव . एक अनुशीलन, भगवान अरिष्टनेमी और कर्मयोगी श्रीकृष्ण आदि अनेक शोध प्रधान ग्रन्थ आप द्वारा लिखे गये है।

श्री गणेश मुनिजी

पण्डित प्रवर श्री गणेश मुनिजी का जन्म वाघपुरा के निकट करणपुर मे स १९८८ को हुआ । आपश्री के पिता सेठ लालचन्दजी पोरवाल एव माताश्री तीजवाई है । आपकी मातेश्वरी ने दीक्षा अगीकार की है, जिनका नाम महासती श्री प्रेमकुँवरजी है । आपश्री ने राजस्थान केसरीजी के पास मुनि दीक्षा स्वीकार कर शिष्यत्व ग्रहण किया है । आपको वाणी मे माधुर्य है ।

आप लेखक, कवि, वक्ता, गायक व कुशल साधक है। अब तक दसो महत्वपूर्ण पुस्तको का लेखन-सम्पादन कर चुके है । आपश्री की दीक्षा सं २००३ मे धार नगर मे हुई । आपने भी साहित्यरत्न, शास्त्री आदि परीक्षाएँ समुत्तीर्ण की है । इन्द्रभूति गौतम, अहिंसा की बोलती मीनारे, आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, सुवह के भूले, वाणी वीणा आदि अनेक पुस्तके आपकी रचित है ।

श्री जिनेन्द्र मुनिजी

मधुर वक्ता श्री जिनेन्द्र मुनिजी का जन्म मेवाड के वाकल प्रान्त मे पडावली गाँव में हुआ । आपकी दीक्षा संवत् २०२० गढ जालोर मे हुई । आपने कलकत्ता की काव्यतीर्थ, वनारस की धर्म शास्त्री आदि अनेक परीक्षाएँ समुत्तीर्ण की है । आप स्वभावसे सरल, कवि, लेखक व कुशल साधक है । आपकी जाति प्रजापति है ।

श्री रमेश मुनिजी

सरल आत्मा श्री रमेश मुनिजी का जंन्म सन् १९५१, जंनवरी २४ को हुआ । आपके पिता का नाम श्री पूनमचन्दजी और मातेश्वरी का नाम श्री प्रकाशवतीजी है । आपने कलकत्ता एसोसियेशन की काव्यतीर्थ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई की शास्त्री एवं पाथर्डी बोर्ड की सिद्धान्त शास्त्री आदि अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण की है । आपने महावीर पर तथा महासती सद्गुरुणीश्री सोहन कुँवरजी के जीवन पर काव्य लिखे है । जैन धर्म सम्बन्धी अनेको लेख व कविताएँ समय समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते

रहते है। आपकी दीक्षा सन् ६५ मे फालगुन सुदि १३ को गढ सिवाना मे हुई। आपकी-जाति ओसवाल डोसी है। आपके लघु भाई राजेन्द्र मुनि ने भी आपके साथ सयम ग्रहण किया है। आपकी मातेश्वरीने भी संयम लिया है, जिनका नाम महासती श्री प्रकाशवतीजी है।

राजेन्द्र मुनि शास्त्री

मेरा जन्म संवत् २०१० मे पोषदशमी-के दिन बडू मे हुआ। मेरे पिताश्री का नाम पूनमचन्दजी डोसी एव माताजी-का नाम प्रकाशवतीजी है। मैंने सन् १९६५ फाल्गुन सुद १३ को गढ सिवाना मे सयम अंगीकार किया। कलकत्ता की काव्यतीर्थ, पाथर्डी बोर्ड की शास्त्री, बनारस की धर्मशास्त्री आदि अनेक परीक्षाएँ समुत्तीर्ण की है। मंगलपाठ, भगवान महावीर की १००८ सूक्तियाँ आदि पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। राजस्थान केसरी गुरुदेवश्री का सर्व प्रथम जीवनचरित्र लिखने का श्रेय मुझे प्राप्त हुआ है। अत मै गुरुदेवश्री का हृदय से आभार मानता हूँ।

श्री प्रवीण मुनिजी

आपका जन्म उदयपुर जिले के कम्बोल गॉव मे हुआ। आपकी दीक्षा संवत् २०२९ मे राजस्थानी स्थानकवासी श्रमणसंघीय सम्मेलन साण्डेराव मे हुई। आप सेवाभावी एवं विद्याप्रेमी मुनिराज है। आपका वंश ओसवाल डोसी कुल है। पिताश्री का नाम सूरज-मलजी है एव मातुश्री का नाम धर्मानुरागिणी चल्लूबाई है।

श्री दिनेश मुनिजी

आपका जन्म संवत् २०१५ को देवास गॉव मे हुआ। पिताश्री का नाम सेठ रतनलालजी मोदी और मातुश्री का नाम प्यारीबाई है। सवत् २०३० कार्तिक सुदि १३, दि. ८-११-७३ को अजमेर नगर मे दीक्षा हुई। आप सेवाभावी एव अध्ययन प्रेमी सन्त है। आप ओसवाल मोदी कुल के है।

राजस्थान केसरी श्री पुष्कर मुनिजी म० का सती समुदाय

[प्रस्तुत महासती वृन्दका जो परिचय निम्न पंक्तियोमे दिया जा रहा है उसमे जो क्रम है वह शिष्याओ-प्रशिष्याओंका नही है, अपितु वर्तमानमे जो सती समुदाय है उनका परिचय मात्र है।

— लेखक]

बालब्रह्मचारिणी महासती श्री अभयकुँवरजी

आपका जन्म संवत् १९५२ में फालगुन वदि १२ मंगलवार को राजवी के बाटेला गाँव मे (मेवाड़) हुआ । आपने अपनी माताश्री हेमकुँवरजी के साथ संवत् १९६० पाली मारवाड़ मे मृगशीर्ष सुदि १३ को महासतीश्री आनन्दकुँवरजी के पास दीक्षा ग्रहण की । आपको शास्त्रो का गहरा अभ्यास है । व्याख्यान सरस और श्रोताओं के दिलो पर असर करनेवाला होता है। कुछ वर्ष पूर्व नेत्रज्योति चली जाने से अभी आप भीम 'राजस्थान' मे स्थिर वास विराज रहो है ।

महासतीश्री सौभाग्यकुँवरजी

आपका जन्म उदयपुर पोरवाल घराने मे हुआ । आपकी दीक्षा संवत् १९७४ मे विदुषी महासतीश्री सोहनकुँवरजी के पास उदयपुर शहर में हुई । आप शान्त स्वभावकी साध्वी है । आपकी वाणी मे मिठास है। आपके व्याख्यान मधुर और मनोहर होते है ।

महासतीश्री जसकुँवरजी

आपका जन्म संवत् १९५३ पदराड़ा गाँव में हुआ । आपकी दीक्षा महासतीश्री आनन्दकुँवरजी के पास संवत् १९७५ मे कम्बोल गाँव मे हुई । आप सेवाभावी महासती है ।

महासतीश्री बदामकुँवरजी

आपका जन्म संवत् १९६१ वसन्त पञ्चमी को भीम (मेवाड़) गाँव मे हुआ। आपकी दीक्षा संवत् १९७८ में विदुषी महासतीश्री अभयकुँवरजी के पास में हुई। आप सेवाभावी महासती है।

बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्री शीलकुँवरजी

आपका जन्म संवत् १९६८ भाद्रपद अष्टमी को खारवट (मेवाड) मे हुआ। पिताश्री का नाम धनराजजी पोरवाल और मातुश्री शम्भुकुँवरबाई है। आपकी दीक्षा शान्त स्वभाविनी महासतीश्री धूलकुँवरजी के सदुपदेश से अपनी माता शम्भुकुँवरजीके साथ संवत् १९८२ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को खारवट मे ही हुई। आपने संस्कृत, प्राकृत व आगमो का अच्छा अभ्यास किया है। प्रवचन शैली मधुर, रोचक तथा वैराग्योत्पादक है। भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष मे आपके सदुपदेश से २५ सौ जीवों को अभयदान मिला। स्वाध्याय सुधा जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया है।

महासतीश्री चतुरकुँवरजी

आपका जन्म थावला (मेवाड़) निवासी चम्पालालजी सियाल नवलीबाई की कोख से हुआ। आपने विदुषी महासतीश्री सोहनकुँवरजी के सदुपदेश से संवत् १९८२ सादडी (मारवाड) मे दीक्षा ली। शान्त, दान्त व गम्भीर है। वैय्यावच्च करने का गुण प्रशंसनीय है। मातृतुल्य सेवा करने से सभी साध्वियाँ आपको "चतरामा" के नाम से पुकारती है।

महासतीश्री सुन्दरकुँवरजी

आपका जन्म स्थल गोगुन्दा (मेवाड़) है। आपने संवत् १९८९ मे महासतीश्री शंभुकुँवरजी के पास संयम ग्रहण किया। आपको तपस्या एवं सेवा करने मे अधिक रुचि है।

महासतीश्री कैलासकुँवरजी

आपकी जन्मस्थली उदयपुर (राजस्थान) है। आपकी दीक्षा अपनी पुत्री कुसुमवतीजी के साथ संवत् १९९३ फाल्गुन शुक्ला

दशमी के दिन विदुषी महासतीश्री सोहनकुँवरजी के पास देलवाड़ा (मेवाड) मे हुई । आपकी चरित्र वाञ्चन शैली सुन्दर है ।

बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्री कुसुमवतीजी

आपका जन्म देलवाडा (मेवाड) मे संवत् १९८२ आश्विन कृष्णा छठ को छाजेड घराने मे हुआ । आपने दीक्षा विदुषी महासतीश्री सोहनकुँवरजी के सदुपदेश से संवत् १९९३ फाल्गुन शुक्ला दशमी को अपनी माताश्री कैलासकुँवरजी के साथ देलवाडे मे ली । आपने संस्कृत, प्राकृत, न्याय, व्याकरण का अच्छा अभ्यास किया है । क्विंस कॉलेज बनारस की सम्पूर्ण व्याकरण मध्यमा, पाथर्डी बोर्ड की जैन सिद्धान्ताचार्य, आदि परीक्षाएँ पास की है । कण्ठ मधुर है । व्याख्यान शैली सुन्दर व मनमोहक है ।

श्री बालब्रह्मचारिणी विदुषीश्री पुष्पवतीजी

आपका जन्म संवत् १९८१ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमीको जीवनसिंहजी बडियाकी धर्मपत्नी श्री प्रेमकुँवर बाई की कोख से उदयपुर मे हुआ । आपकी दीक्षा विदुषी साध्वीश्री सोहनकुँवरजी के पास संवत् १९९४ उदयपुर मे हुई । आपकी मातेश्वरी भी दीक्षिता है जिनका नाम श्री प्रभावतीजी है एवं आपके भ्राता भी दीक्षित है जिनका नाम श्री देवेन्द्र मुनिजी है । आपने संस्कृत, प्राकृत, न्याय, काव्य, हिन्दीका उच्च अध्ययन किया है । आगमों का गहरा अभ्यास है । साहित्यरत्न आदि परीक्षाएँ समुत्तीर्ण की है । आपका व्याख्यान सरस, मधुर व प्रभावोत्पादक होता है ।

प्रतिभामूर्ति महासतीश्री प्रभावतीजी

आपका जन्म गोगुन्दा मेवाड मे सेठ हीरालालजी तथा श्रीमती प्यारीबाई की कोख से संवत् १९७० श्रावण कृष्णा पञ्चमी को हुआ । आपकी दीक्षा भी विदुषी श्री सोहनकुँवरजी के पास संवत् १९९७ आषाढ सुदि तीज को हुई । आपके पुत्र श्री देवेन्द्र मुनिजी एवं पुत्री पुष्पवतीजी दीक्षित है । आपको थोकडो का खूब ज्ञान है । कई शास्त्र कण्ठस्थ है । बोली भी बडी प्यारी है । व्याख्यान भी अत्यन्त मधुर है ।

महासतीश्री मोहनकुँवरजी

आपका जन्म दरीवा (मेवाड़) गॉव मे हुआ। आपने महासती श्री सौभाग्यकुँवरजी के पास संयम ग्रहण किया है। आप सेवाभावी महासती है ।

महासतीश्री उमरावकुँवरजी

आपका जन्म संवत् १९६६ श्रावण वद एकम को सिवाना (मारवाड़) में सेठ दौलतरामजी कानुगा तथा माता छोगीबाई की कुक्षी से हुआ । आपकी दीक्षा महासतीश्री हरखुजी के पास संवत् १९९४ महावदि पञ्चमी को गढ सिवाना मे हुई। आप शान्त व सरल प्रकृति की साध्वी है एवं चौपाई, व्याख्यान सुन्दर करती है ।

महासतीश्री सीताजी

आपका जन्म मारवाड कोराना गॉव मे हुआ । आपकी दीक्षा संवत् १९९४ मे महासती दीपाजी के पास मृगशीर्ष मास मे हुई । आप सेवाभावी महासती है ।

महासतीश्री मोहनकुँवरजी

आपका जन्म स्थल गोगुन्दा (मेवाड़) है । आपने भी संवत् १९९५ मे महासतीश्री शम्भुकुँवरजी के पास दीक्षा ग्रहण की । आपकी चरित्र वाञ्चन शैली सुन्दर है ।

महासतीश्री वल्लभकुँवरजी

आपकी जन्मभूमि जसवन्तगढ मेवाड की है और आपकी दीक्षा संवत् १९९५ मे महासतीश्री लहरकुँवरजी के पास जसवन्त-गढ मे हुई । आप सरल स्वभावी एवं सेवाभाविनी महासती है ।

महासतीश्री शकुनाजी

आपका जन्म मारवाड मे गढ सिवाना मे हुआ और आपकी दीक्षा पादरू गाँव मे महासती श्री दीपाजी के पास मे हुई । आप सेवाभावी महासतीजी है ।

महासतीश्री शकुनकुँवरजी

आपका जन्म सवत् १९७४ मे पादरू मारवाड मे हुआ । पिता श्री ओजराजजी संकलेचा तथा माताश्री मगनीवाई है । आपकी दीक्षा संवत् १९९६ मे वैशाख सुदि सातम को महासतीजी हरखुजी के पास पादरू गॉव मे हुई । आप सेवाभावी है । शास्त्र एवं चौपाई का अच्छा अभ्यास है ।

महासती श्रीपानाजी

आपका जन्म जालोर शहर मे हुआ । आपकी दीक्षा गढ सिवाना मे हुई । आप सेवाभावी महासती है ।

महासती श्रीमतीजी

आपका जन्म संवत् १९८१ मे भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी को गोगुन्दा गाँव मे हुआ । पिताका नाम सेठ देवीलालजी एवं माता का नाम श्री मोहनवाई है । आपकी संवत् १९९९ मे नाथद्वारा शहर मे सजोडे महासती प्रभावतीजी के पास दीक्षा हुई । व्याख्यान मधुर तथा ओजस्वी होते है एवं सेवाभावी महासती है ।

महासतीश्री प्रेमकुँवरजी

आपका जन्म स्थल वाघपुरा (मेवाड) है। आपने महासतीश्री प्रभावतीजी के सदुपदेश से संवत् २००४ मे उदयपुर शहर मे संयम ग्रहण किया। आप गुरुदेव के शिष्य गणेश मुनिजी की मातुश्री है। आप सेवाभावी व सरल स्वभाविनी साध्वी है ।

महासतीश्री चन्द्रकुँवरजी

आपका जन्म कानोड मेवाड मे हुआ। आपने महासती श्री प्रभावतीजी के सदुपदेश से संवत् २००४ महा सुदि तीज को अपनी पुत्री चन्द्रावती के साथ कपासन मे दीक्षा ग्रहण की। आप शान्त, दान्त व सेवाभावी महासती है ।

बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्री चन्द्रावतीजी

आपका जन्मस्थान उदयपुर राजस्थान है । पिताश्री का नाम पन्नालालजी महेता एवं माता श्री लहरीबाई है । आपने

विदुषी श्री पुष्पवतीजी के सदुपदेशसे संवत् २००४ मे कपासन मे संयम ग्रहण किया । आपने सस्कृत, प्राकृत व हिन्दी का अच्छा अभ्यास किया है । अध्ययन की रुचि है । जैनसिद्धान्ताचार्य आदि परीक्षा पास है । मगध का राजकुमार मेघ, भगवान महावीर पर उपन्यास 'दिव्य पुरुष' के नाम से आपके ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। आपका व्याख्यान तात्विक व मधुर होता है ।

महासतीश्री सायरकुँवरजी

आपका जन्म स्थल देलवाड़ा मेवाड है । विदुषी महासतीश्री शीलकुँवरजी के पास मे सवत् २००५ मे गोगुन्दा गाँव मे दीक्षा अंगीकार की । आपको आगम तथा थोकड़ो का अच्छा परिज्ञान है । वाणी मे मधुरता व समयसूचकता के गुण प्रशंसनीय है । आपके पिताश्रीका नाम सेठ गेरीलालजी खेतपाल्या एव माताका नाम श्रीमती नाथीबाई है ।

महासतीश्री रतनकुँवरजी

आपका जन्म बम्बोरा मेवाड मे हुआ । आपने महासतीश्री कैलाशकुँवरजी के सदुपदेश से सवत् २००५ मे उदयपुर शहर मे दीक्षा ग्रहण की। आवाज मे मिठास है। वैयावच्च करने की दिलचस्पी है । चौपाई आदिका वाञ्चन सुन्दर है ।

बालब्रह्मचारिणीजी विदुषी श्री कौशल्याजी

आपका जन्मस्थल नान्देशमा मेवाड है । पिताश्री लाडुजी पालिवाल ब्राह्मण एवं माताश्री वर्दीबाई है । आपने २००५ वैशाख शुक्ला पञ्चमी को महासतीश्री सज्जनकुंवरजी के सदुपदेश से देवास (मेवाड) मे दीक्षा ली । आपके भाई दीक्षित है । आपने संस्कृत, हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया है । जैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षा उत्तीर्ण है । व्याख्यान मनोहर एवं आकर्षक होता है । वाणी मे मिठास है ।

महासतीश्री प्रेमकुंवरजी (बक्सुजी)

आपका जन्म सिवाना मारवाड मे मूलचन्दजी गोलेच्छा की धर्मपत्नी श्रीमती सुवटीबाई की कुक्षी से संवत् १९७६ मे हुआ ।

आपने अपनी पुत्री विमलवतीजी के साथ महासतीश्री हरखुजी के पास संवत् २००६ मे मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को पादरू मारवाड मे दीक्षा ग्रहण की । आप चौपाई आदि का वाञ्चन सुन्दर करती हैं । कण्ठ मधुर है । आप सेवाभाविनी महासती हैं ।

बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्री विमलवतीजी

आपका जन्म कोरणा (मारवाड) मे श्रीमान गोवींरामजी की धर्मपत्नी श्रीमती वक्सुवाईकी कोख से संवत् १९९६ मे भाद्रपद अष्टमी, गुरुवार को हुआ । महासतीश्री हरखुजी के पास अपनी माता के साथ संवत् २००६ मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को पादरू मारवाड मे दीक्षा अंगीकार की । आपको संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी का अच्छा अभ्यास है । साहित्य विशारद, शास्त्री आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण हैं । व्याख्यान शैली व गायनशैली सुन्दर व प्रभावोत्पादक है ।

महासतीश्री एजाजी

आपका जन्म मेवाड के अन्तर्गत सिसोदे गाँव मे श्रीमान भेरुलालजी के घराने मे हुआ । आपकी दीक्षा वाटी गाँव मे हुई । आप सेवाभावी महासती हैं ।

महासतीश्री दयाकुँवरजी

आपकी जन्मभूमि रावलिया गाँव मेवाड की है । आपकी दीक्षा संवत् २००६ मे पाली मारवाड मे विदुषी श्री शीलकुँवरजी के सदुपदेश से हुई । आप सेवाभावी एव तपस्विनी साध्वी हैं । मासखमण आदि लम्बी तपस्याएँ करती हैं ।

बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्री चन्दनबालाजी

आपका जन्म उदयपुर राजस्थान मे हुआ । आपकी दीक्षा विदुषी श्री शीलकुँवरजी के सदुपदेश से संवत् २००९ चैत्रवदि पञ्चमी को उदयपुर नगर मे हुई । संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी व आगमो का अच्छा परिज्ञान है । जैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की है । व्याख्यान शैली सुन्दर है । कण्ठ मधुर है । सेवाभावी व शान्तस्वभावी हैं । आपके पिताश्री का नाम सोहनलालजी खाव्या एवं मातुश्री का नाम धर्मानुरागिणी श्री सोहनबाई है।

महासतीश्री खमाकुँवरजी

आपका जन्म कराई गाँव मेवाड मे हुआ। आपकी दीक्षा संवत् २००९ वाटी गाँव मे हुई। आप शान्त स्वभावी एवं सेवाभावी साध्वी है। आपश्री के पिताजी जसराजजी है।

बालब्रह्मचारिणीश्री प्रियदर्शनाजी

आपका जन्म सेठ कन्हैयालालजी लोढा की धर्मपत्नी श्रीमती राजीबाई की कोख से संवत् २००२ उदयपुर नगर मे हुआ। विदुषी पुष्पवतीजी के सदुपदेश से संवत् २०१९ मे ता ४ मार्चको आपने संयम ग्रहण किया। हिन्दी, संस्कृत का अच्छा अभ्यास है। अध्ययनशीला के साथ सेवाभाविनी भी है।

महासतीश्री विनयवतीजी

आपका जन्म पदराडा मे खेमराजजी दौलावत के घराने मे हुआ। आपने महासतीश्री कौशल्याजी के सद्बोध से संवत् २०१९ महासुदि ११ को पदराडा मे संयम ग्रहण किया। पढने मे रुचि अच्छी है। अभ्यास चालू है। सेवाभाविनी और अध्ययनशीला है।

महासतीश्री चेलनाजी

आपकी जन्मभूमि सायरा मेवाड है। आपने महासतीश्री शीलकुँवरजी के सदुपदेश से संवत् २०२० मे भोपालगंज भीलवाड़ा मे दीक्षा ग्रहण की। आप विद्याभिलाषिणी के साथ सेवाभाविनी है। आपका अध्ययन चल रहा है।

महासतीश्री मदनकुँवरजी

आपका जन्म खण्डप मारवाड मे सेठ सिरेमलजी धोका की धर्मपत्नी श्री टीपुबाई की कोख से संवत् १९९२ मे हुआ। महासतीश्री विमलवतीजी के पास संवत् १०२० वैशाख वदि दशम को अजीत मारवाड मे दीक्षा ग्रहण की। आप अध्यनशीला व सेवाभावी महासती है।

महासतीश्री हेमवतीजी

आपका जन्म नान्देशमां मेवाड में हुआ। आपने महासतीश्री कौशल्याजी के पास संवत् २०२४ डबोक गाँव मे संयम ग्रहण किया। आप अध्यननशीला तथा सेवाभावी है।

बालब्रह्मचारिणीश्री चारित्रप्रभाजी

आपका जन्म बगडुन्दा (मेवाड) गाँव मे श्रीमान कन्हैयालालजी छाजेड के यहाँ हुआ। आपकी दीक्षा संवत् २०२६ मे विदुषी महासतीश्री कुसुमवतीजी के पास नाथद्वारा नगर मे हुई। आप अध्ययनशीला है। संस्कृत, प्राकृत का अच्छा परिज्ञान है। पाथर्डी बोर्डकी शास्त्री परीक्षा समुत्तीर्ण है। कण्ठ मधुर व व्याख्यान ओजस्वी है।

महासतीश्री सत्यप्रभाजी

आपका जन्म खण्डप निवासी मिश्रीमलजी सुरानाकी धर्मपत्नी श्रीमती सोनीबाई की कोख से सवत् २००२ श्रावण कृष्णा तृतीया को हुआ। महासती श्री शकुनकुँवरजी के उपदेश से संवत् २०२७ वैशाख वदि पञ्चमी को करमावश गाँव में संयम ग्रहण किया। आगम व संस्कृत का अच्छा अभ्यास है। सेवाभावी है।

महासतीश्री साधनाजी

आपका जन्म मारवाड भारडा गॉव मे सरदारमलजी सालेचा के यहाॅ हुआ। आपने महासतीश्री शीलकुँवरजी के पास संवत् २०२७ मे समदड़ी मे दीक्षा ग्रहण की। थोकडे सीखने की अच्छी रुचि है। सेवाभावी है। आपकी माताजी का नाम श्रीमती सखूबाई है।

बालब्रह्मचारिणीश्री ज्ञानप्रभाजी

आपका जन्म महाराष्ट्र के बडगॉव निवासी पण्डित सिद्धरामजी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरीदेवी की कोख से संवत् २०१६ मे हुआ। विदुषीश्री विमलवतीजी के सदुपदेश से २०२८ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ को केलवारोड़ महाराष्ट्र मे संयम अंगीकार किया। आप विद्याभ्यासिनी है। हिन्दी, संस्कृत का अध्ययन कर रही है।

बालब्रह्मचारिणीश्री दिव्यप्रभाजी

आपका जन्म उदयपुर मे सेठ कन्हैयालालजी सियालकी धर्मपत्नी श्रीमती चोथीबाई की कुक्षी से संवत् २०१४ में हुआ। आपकी दीक्षा विदुषीश्री कुसुमवतीजी एवं चारित्र प्रभाजी के सदुपदेश से संवत् २०३० कार्तिक सुदि १३ को अजमेर नगर मे हुई। आपका संस्कृत, न्याय, हिन्दी, अंग्रेजी का अभ्यास चल रहा है। राजस्थान शिक्षा बोर्ड की उपाध्याय आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं।

*

कविवर श्री बालारामजी द्वारा रचित

दोहा

भर्ता भावुक हृदय के, कर्त्ता अघ-अरि अन्त ।
भव भय हर्ता भव्य है, आदिनाथ अरिहन्त ॥ १ ॥
वेतरणी की विपद से, विलखाये जो विज्ञ ।
ता हित ये तारक गुरु, नाविक सरिस नयज्ञ ॥ २ ॥
दिव्य दयाकर जिन दियो, पुष्कर को प्रतिबोध ।
कवि किङ्कर उसकी करे, निज मति सम यह नोध ॥ ३ ॥
मनहर श्री नान्देशमा, ग्राम तणी गरि माह ।
परखत ही यह पेख लो, सब जन रहे सराह ॥ ४ ॥

तर्ज–राधेश्याम

श्री आदिनाथ चरणाब्ज बीच षट्पद सम निवसे मन मेरा ।
भव तारक तारक-गुरु-पद-रज, शिर धारे पुनि यह तन मेरा ॥ १ ॥
है अगम यथा गुरु-गुणगाथा, तद्वद् ही अगम शिष्य गुन है ।
जिसको लिखने की लगी ललित, यह ललिताङ्गज के उर धुन है ॥ २ ॥
इस हेतु उक्ति से अरज करूँ, दो सूक्ति दयाकर किङ्कर को ।
भर दीजे सुन्दर शब्दो से, हे जननी ! सत्वर शिशु-उर को ॥ ३ ॥
श्री मेद पाट की महिमाका, इतिहास अनुपम जग जाने ।
आदर्श प्रभा जिसकी देखो, सब सुकवि एक स्वर सन्माने ॥ ४ ॥
जो विमल 'हिन्दुवाँ सूरज' की, पदवी का पालक है पक्का ।
लखि धीर वीर् गम्भीर उसे, अरविन्द हुए हक्का-बक्का ॥ ५ ॥
राणा प्रताप का तीव्र ताप, किस कवि के हृदय न भाया है ।
कथनी है सत्य शत्रुका भी, हाँ, जाता घाव सराया है ॥ ६ ॥

उस मेद पाट में ही राजे, सिमटार शुभ ग्राम सही ।
आलोक प्रभा जिसकी अनुपम, अलका भी मोद मनाय रही ॥ ७ ॥

रहते थे वहाँ ब्रह्मवेत्ता, श्री सूरजमल द्विजराज अहा !
अर्द्धांगिनि जिनकी वाली थी, पतिभक्ता सद्गुन खान महा ॥ ८ ॥

दोहा

दम्पति रहते रातदिन, धर्म ध्यान मे लीन ।
आत्मार्थी आदर्श थे, पर उपकार प्रवीन ॥

तर्ज–राधेश्याम

सर्वज्ञ सूक्ति अनुसार अहा ! यह लोक-उक्ति भी सत्य सही ।
नर नारायण की जोडी है, है विस्मय इसमे नेक नही ॥ १ ॥

नर कर्म करे जैसा उसको, वैसा अवश्य फल मिलता है ।
हो देर भले उसमे लेकिन, अन्धेर कदापि न खिलता है ॥ २ ॥

कथनानुसार इसके मित्रो, शुभ पुण्य सूर्य का प्रगटाया ।
अर्द्धाङ्गिनी वाली के उर मे, यह भाग्यशाली सुरच्यव आया ॥ ३ ॥

मुनि रस निधि विधु शुभ वत्सर की, आसोज चादनी चउदश को ।
हो पुत्र रूप से प्रकट अहा ! विकशाई विद्या चउ-दश को ॥ ४ ॥

सानन्द बधाई लेने को, दाई मा धाई धाई हाँ ।
सूरज पे आयी मन चाही वह हर्ष बधाई पाई हाँ ॥ ५ ॥

सुत जन्मोत्सव का सूरज ने, दिल खोल दशोटन है कीना ।
फिर ज्योतिष के नियमानुसार, शुभ नाम तो अम्बालाल दीना ॥ ६ ॥

सूरज की किरणो को देखो, प्रतिपल हाँ जैसे तेज बढे ।
वैसे ही सूरज व्हाली की, मन आशाओ का हेज बढे ॥ ७ ॥

शर वत्सर का जब पुत्र हुआ, तब पढने भेजा शाला मे ।
तो अपनी कक्षा मे अगुआ, रहता सुमेर ज्यो माला मे ॥ ८ ॥

जो पाठ पढ़ाते पण्डितजी, तत्काल याद उसको करके ।
पीछा कण्ठस्थ सुना देता, चरणो मे गुरु के शिर धरके ॥ ९ ॥

दोहा

लखि पुष्कर की ललित मति मुदित हुआ मति मन्त ।
सूरज से सानन्द यो, वाणी विमल वदन्त ॥

हरिगीतिका छन्द

अयि ! मित्र सूरज प्रबल तेरा पुण्य यह देखो खिला,
इस हेतु ऐसा भाग्यशाली पुत्र तुझको है मिला ।
आलोक इसकी हस्तरेखा ज्ञात होता स्पष्ट हाँ,
जीवन मरण भवबन्धनो को यह करेगा नष्ट हाँ ॥ १ ॥
जो बात कहता हूँ तुझे, वह सर्वथा ही अमोघ है,
नहि भोग का है जोग इसके जोग का ही जोग है ।
कुछ समय के ही बाद मे जो निर्विवाद दिखायेगा,
आलोक आस्तिक वृन्द जिसको मोद मन मे पायेगा ॥ २ ॥
सुन विज्ञ के यो वचन, सूरज चित्त है चमका गया,
पुनि हृदय मे इक साथ उसके हर्ष विस्मय छा गया ।
द्रुत आ कहा अर्धाङ्गिनि को विज्ञ ने जो था कहा,
वृत्तान्त सारा सुन उसे भी हर्ष विस्मय हो रहा ॥ ३ ॥
अब तो अहर्निश मातु पितु सुत-प्रकृति को पेखते,
तो बात पाठक ने कही उस ओर झुकती देखते ।
परब्रह्म को पहचानना यह ब्राह्मणो का काम है,
अतएव पुष्कर प्रकृति उसमे लीन आठो याम है ॥ ४ ॥

सोरठा

मन वच काया माय, समता राखे सारखी ।
जीवन वो जग माय, उत्तम अरु आदर्श है ॥ १ ॥
नरतन नीको पाय, नारायण ने निरख ले ।
सो सत्संग सुहाय, 'पुष्कर' ने प्रतिपल अहा ॥ २ ॥
पर ब्रह्म मे लीन, अंगज ने अवलोक यो ।
गुज्ज ज्ञान गमगीन, दम्पत्ति दिल मे हो कहे ॥ ३ ॥
विज्ञ तणी वह वाय, सोलह आना सत्य है ।
अडबो करो उपाय, होनहार पै ना हटे ॥ ४ ॥

हरिगीतिका

प्रभु-प्रीति अरु जग नीति मे है भाव को राजा कहा,
जिसके बिना कल्याण का, दर्शन कभी होता न हॉ।
हो भाव जिसके शुद्ध, उसकी कामना भी सफल हो,
इसके बिना जो भी कहो, उद्योग सारे अफल हो ॥ १ ॥

सोरठा

मानव निज-मन-माय, भावे जैसी भावना ।
वैसी ही विकशाय, निश्चय ही यह निरख लो ॥ १ ॥

कुण्डलिया छन्द

सुखद ग्राम नान्देशमा, मेट पाट के माय ।
आये उत सोभाग्यवश, श्री तारक गुरुराय ॥
श्री तारक गुरुराय, दरश जिनके सुखकारी ।
करके मन मे मोद मनाया है नर नारी ॥
सविधि वन्दना करके सम्मुख बैठ गये सब ।
भव भय हारी सुगुरु देशना दीनीयो तब ॥ १ ॥

ताटक छन्द

ब्रह्म ब्रह्म वेदान्ती जपते, शिव शिव जपते है पुनि शैव ।
बौद्धा बुद्धदेव को जपते, नैयायिक कर्त्ता नितमेव ॥
कर्म उपासी मीमांसी है, जैनो के ईश्वर अरिहन्त ।
जन मन वाञ्छित दाता ये है, भद्र-भावना के भगवन्त ॥ १ ॥

लावणी

यो षट्दरशन की जपनी न्यारी न्यारी,
पै भद्र भावना सब की एक निहारी ॥ टेर ॥
जो करे धर्म तो टूटे कर्म तुम्हारे,
यह सूक्ति अनुपम सादर सब स्वीकारे ।
भव बन्धन मे नर को यह कर्म ही डारे
सद्धर्म बिना उसके मद को कुन मारे
कर्मो के टूटे विनु है मुक्ति कहा री ॥ यो ॥ १ ॥

गुरु देवे यो उपदेश सुनो सब भाई,
यह काया कञ्चन-सी मुश्किल से पाई ।
हो काम क्रोधवश इसको वृथा गमाई
तो फिरना होगा फिर चोरासी माई ॥
इसलिए करो करणी उत्तम अविकारी ॥ यो ॥ २ ॥
गुरु सदुपदेश सुन 'पुष्कर' का मन डोला,
पुनि तात श्री से हाथ जोर यो बोला ।
मन भाया मेरे यह वैरागी चोला,
जो पहन गहन गति हेतु रटू बंभोला ।
इस हेतु कृपा कर आज्ञा दो हितकारी ॥ यो ॥ ३ ॥
सुन पुत्र वचन पितु बोला सुनरे जैया!
यह कार्य तिहारा है या मेरा भैया!
है चाह हमारी व्याह तिहारा करके,
संभला कर सारे काम काज इस घर के,
हम वने वनी यह निश्चय दिल मे धारी ॥ यो ॥ ४ ॥

कुण्डलिया छन्द

सुन पितु के ऐसे वचन, सुत बोला हरसाय,
किसो भरोसो सास को, ग्रास रहे मुख माय।
ग्रास रहे मुख मांय वाय यह तो है साची,
किण विरिया दे जाय दगो आ काया काची ॥
सिर के खीचे वाल, काल की गति जाने कुन,
सुत बोला हरसाय वचन ऐसे पितु के सुन ॥ २ ॥
अंगज का प्रण अटल रखी, नयनो मे भर नीर,
पिता श्री ने यो कहा, सुनरे मेरे वीर!
सुनरे मेरे वीर! वीर-पद कंज भृगबन ।
दीपाना कुल, देश धर्म पालन निज प्रन ॥
शुभादेश यो श्री तात का पा सुत हर्षा,
मानो चातक हेतु मनेप्सित घन है वर्षा ॥ ३ ॥

दोहा

सुत को ले निज साथ द्रुत सूरज आ गुरु पास ।
विनवे यो इस बाल की काटो भव की पास ॥ १ ॥

तर्ज-राधेश्याम

यों कह के सूरज निज सुत को गुरु के चरणो मे लिटा दिया ।
इस अघटित घटना को विलोक सब लोक अचम्भा अहो किया ॥ १ ॥
तदनन्तर शास्त्राज्ञानुसार गुरु निजी कल्प पै ध्यान दिया ।
अरु शीघ्र वहाँ से कर विहार आ पदराडा विश्राम लिया ॥ २ ॥
यो मेद पाट को पावन कर मरुधर मे सद्‌गुरु आये है ।
घन को लखि चातक हर्षे ज्यो, त्यो श्रावक सब हुलसाए है ॥ ३ ॥
है संग सुहाता सद्‌गुरु के बडभागी वैरागी पुष्कर ।
जो बाल अवस्था मे धारी यह सयम की करणी दुष्कर ॥ ४ ॥
ग्रामानुग्राम करते विहार, गुरु जब जालोर पधारे है ।
तब हाथ जोड श्री संघ अहा ! सविनय यो अरज गुजारे है ॥ ५ ॥
इस पुण्यशाली वैरागी का, दीक्षोत्सव करना हम च्हाएँ ।
इसलिए कृपा महती करके, आदेश हमे गुरु बगसाएँ ॥ ६ ॥
जालोर संघ का अति आग्रह, गुरुदेव वचन बोले ऐसे ।
निर्द्वन्द्व मिले सुख जैसे हॉ, अविलम्ब हि आप करे वैसे ॥ ७ ॥
आदेश गुरु का-यो पाकर, श्री संघ हृदय मे हर्षाया ।
अविलम्ब ज्योतिषी को बुलवा, दीक्षा का मुहूरत दिखलाया ॥ ८ ॥

सोरठा

विधु वसु निधि विधु वर्ष, गगा दशमी को अहा !
दीक्षोत्सव आदर्श, गुजायो जालोर गढ ॥ १ ॥

छप्पय छन्द

दीक्षोत्सव को देखी, सभी सज्जन हर्षाये,
मन मे मोद मनाय, सुमन सुमनस वर्षाये ।
देश देश के आए, श्रावक दर्शन करने ।
अनुपम यो उत्साह, बाल कवि कैसे वरने ॥

जव गुरु कर से पुष्कर अहो! रजोहरण निज कर लिया ।
तब जय जिनेन्द्र के नादसे, नभ को सव गुँजा दिया ॥

तर्ज–जाओ जाओ ऐ साधु मेरे...!

करता करता है पुष्कर अब तो गुरु मुख ज्ञानाभ्यास ॥ टेर ॥
काव्य कोष व्याकरण न्याय पुनि, प्राकृत का जु प्रकाश ।
सुगुरु शिष्य के हृदय कराया, करुणा करके खास ॥ करता ॥ १ ॥
वोल चाल के सुखद थोकडे, पुनि सीखे गुरु पास ।
छन्द शास्त्र की छटा निराली, उर मे करे उजास ॥ २ ॥
शान्त भ्रान्त निर्भ्रान्ति वृत्ति अरु, अनुपम उक्ति विकास ।
हर संघ के हिय मे हुलसे, दिन दिन द्विगुण हुलास ॥ ३ ॥
अमर सूरिका काव्य आपकी, संस्कृत रचना खास ।
पाठक जिसको पढकर पाते, हिय मे अमित हुलास ॥ ४ ॥

कवित्त

हिन्दी मे भी एक ना अनेक ग्रन्थ लिखे आप ।
जिनके सुनाम भी यो महा मोदकारी है ॥
'साधना का राजमार्ग', 'जिन्दगी की मुसकान' ।
'रांमराज' सस्कृति रा, सुर सुखकारी है ॥
अर्णविध्या मोति को दिव्य द्युति देखो अहा!
कहते यो कृति भी आ-कृति कैसी प्यारी है ॥
'ओकार एक अनुचिन्तन' से ग्रन्थ लिख ।
सेवा भारत भारती की कीवी गुरु भारी है ॥
सादडी मे हुआ जव 'साधु सम्मेलन' तव ।
साहित्य शिक्षण मन्त्री आपको वनाया हाँ ॥
'सोजत सम्मेलन' मे मेवाड़ पञ्चमहाल ।
मन्त्री पद सौप सघ हिय मे हर्पाया हाँ ॥
महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलन मे आप ही को ।
'राजस्थान केसरी' का पद वकशाया हाँ ॥
चतुर्विध सघहू की महती कृपा से गुरु ।
जो भी पद पाया उसे सफल वनाया हाँ ॥

गुजरात बम्बई रु खानदेश महाराष्ट्र ।
जाय के जगाई गुरु धर्म ज्योति भारी हाँ ॥
मध्य हाँ प्रदेश और उत्तर प्रदेश दिल्ली ।
निवासी सु-श्रावको की अरज स्वीकारी हाँ ॥
भवियन तारी अरु, पर उपकारी वहाँ ।
जाय के उन्हों की पूरी, आशा अविकारी हाँ ॥
राजस्थान आदि यो है, आपका विहार क्षेत्र ।
भक्त भयहारी गुरु, ऐसे उपकारी हाँ ॥

तर्ज – राधेश्याम

है शान्त मूर्ति सद्‌गुरु ऐसे, जो एक बार दर्शन करता ।
अविलम्ब ही दर्शन फिर करना, यो भव्य भाव निज उर भरता ॥
भव भय से हाँ भयभीत हुआ, जो प्राणी शरणे आता है ।
वो मागलिक गुरु मुख से सुन मनचाही शाता पाता है ॥

दोहा

सुगुरु शब्द की शास्त्र मे, वरणी कान्ति विशाल ।
पार कहो किम पा सके, उसका लेखक बाल ॥
गा ले गुरु गुन जो गुनी, जगके तज जंजाल ।
पावे परमानन्द वो, कहता यो कवि बाल ॥
व्योम काल नभकर वरस, भादव लघु शशि भाल ।
पेखो गुरु पुष्कर प्रभा, की विकसित कवि बाल ॥

इन्द्रवज्रा

श्रद्धेय श्री पुष्कर सद्‌गुरु के ।
है शिष्य देवेन्द्र मुनीशनी के ॥
तच्छिस्य राजेन्द्र कृतार्थ कीजे ।
ये आपकी भेट सँभाल लीजे ॥

काव्यतीर्थ कविता प्रेमी है, गुरुपद पंकज भृग अनूप ।
श्री रमेश राजेन्द्र भ्रात है, शान्त दान्त निर्भ्रान्ति स्वरूप ॥
जिनकी आज्ञा पाकर सुंदर, गुथी है यह गुरु गुणमाल ।
एतदर्थ उनको ही समर्पण, सादर करता है कवि बाल ॥



गुरु-आरती

तर्ज — ओम् जय जगदीश हरे !

ॐ जय पुष्कर स्वामी गुरु जय पुष्कर स्वामी ।
ज्ञान वैराग्य प्रदाता, प्रणमूं शिर नामी ॥ ॐ ॥ ॥ १ ॥

उन्नीसे सडसट मे जन्मे, नान्देश मन भाया, स्वामी ।
सूरज वालीमात के नन्दन, ब्राह्मण कुल पाया ॥ ॐ ॥ ॥ २ ॥

चौदह वर्ष लघुवय अन्दर, आत्म लो लागी स्वामी ।
शुद्धमन संयम ले लीना, घर गृहस्थी त्यागी ॥ ॐ ॥ ॥ ३ ॥

अघपरिहारक जग को तारक, तारक गुरु धारे ।
प्रवल प्रभाकर दिव्य विभाकर, गुरुवर तुम प्यारे ॥ ॐ ॥ ॥ ४ ॥

सागर वर गंभीर आप है, ममता मद मारी ।
राजस्थान केसरी गुरुवर, दृढ संयम धारी ॥ ॐ ॥ ॥ ५ ॥

सत्य ज्ञान से मेटत छिन मे, जनमन की शंका ।
निर्भीक होय वजाते जग मे, जैन धर्म डंका ॥ ॐ ॥ ॥ ६ ॥

जैन धर्म के शुद्ध मर्म को, जग मे फैलाते स्वामी ।
राव रंक के पाप पंक तो, पल में मिट जाते ॥ ॐ ॥ ॥ ७ ॥

दे सद्वोध तिराये लाखो, जहाँ भी तुम आये ।
श्रद्धा सुमन की माला, राजेन्द्र पहनाये ॥ ॐ ॥ ॥ ८ ॥

*

तर्ज–जय बोलो महावीर

जय बोलो पुष्कर गुरुवर की
संजम के धनी गुनी मुनिवर की
सूरज के लाल निराले है।
पाखण्ड खण्डने वाले है।
वाली के नन्द सुधाकर की ॥ जय ॥ १ ॥

नान्देश मे जन्म हुआ जिनका
जन-जन ने मोद मना मन का।
महिलाएँ गीत गाये घर घर की ॥ २ ॥
गुरु तारक ने उपदेश दिया।
चट संजम जा जालौर लिया।
चिन्ता तो तज दी घर भर की ॥ जय ॥ ३ ॥

गुरु ज्ञान ध्यान तो खूब किया।
लाखो जन को उपदेश दिया।
प्याली तो पिला दी जिनवर की ॥ जय ॥ ४ ॥

शुद्ध सजम गुरुवर पाल रहे।
सब दोष आप तो टाल रहे।
परवाह न करे पर पुद्गल की ॥ जय ॥ ५ ॥

जिन धर्मका डंका बजाते हो।
सोती जनता को जगाते हो।
दे ज्योति ज्ञान प्रभाकर की ॥ जय ॥ ६ ॥

चिरंजीव रहे गुरुराज मुद्रा।
राजेन्द्र का वन्दन होय सदा।
श्री तारक गुरु के पट्टधर की ॥ जय ॥ ७ ॥



विद्वानो और पत्र-पत्रिकाओं की दृष्टिमें —

श्री राजेन्द्र मुनिजी शास्त्री द्वारा सम्पादित

भगवान महावीर की १००८ सूक्तियाँ

श्री राजेन्द्र मुनि उदीयमान लेखक और कवि हैं। आपने वडे परिश्रम व अध्यवसाय से लगभग १८ आगमो से भगवान महावीर की एक हजार आठ सूक्तियो का चयन कर प्रस्तुत कृति मे उनका सकलन किया है। इन सूक्तियोंको 'धर्म और नीति', 'अध्यात्म और दर्शन' तथा 'विखरे मोती' इन तीन मुख्य शीर्षको मे वाँटा गया है। सूक्तियाँ अपने जीवन मे व्यापक और गहरे अनुभवो को समेटे रहती है। महावीर की ये सूक्तियाँ २५सौ वर्षो के वाद भी हमारे जीवन को उच्च, समाज को स्वस्थ और विश्व को मैत्रीभाव मे वाँधने के लिए सक्षम है। जन साधारण मे इन सूक्तियोका अधिकाधिक प्रचार हो इस दृष्टि से इसका हिन्दी अर्थ भी साथ ही साथ दिया गया है। पुस्तक के अन्त में जिस आगम से जो सूक्तियाँ ली गई है, उसकी तालिका दे देने से शोधार्थियो के लिए भी कृति अति उपयोगी वन गई है।

— मासिक पत्रिका 'जिनवाणी,' मार्च, १९७४

प्रस्तुत पुस्तक मे भगवान महावीर की १००८ सूक्तियाँ हिन्दी भावार्थ के साथ सकलित है। निश्चित ही सम्पादक ने उपयोगी रत्नो का सचय जनहितार्थ प्रस्तुत किया है और इस रूप मे वे बहुत से लोगो द्वारा अभिनन्दित होगे। पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

— 'कथालोक', अप्रैल, १९७४

भगवान श्री महावीरकी एक हजार आठ सूक्तियो का सकलन लगभग साढे तीन सौ पृष्ठो को इस पुस्तक मे बहुत ही परिश्रमपूर्वक मुनिश्री ने किया है, जिसके लिए वे बधाई के पात्र है।

— 'जैन जगत', मार्च, १९७४

भगवान महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी वर्ष के अवसर पर जैन साहित्य का महत्वपूर्ण एवं शोधपूर्ण प्रकाशन हो रहा है। 'भगवान महावीर की सूक्तियाँ' नामक पुस्तक इसी साहित्य शृखला की कड़ी है। सम्पादकने १००८ सूक्तियो को चुनने का परिश्रमसाध्य कार्य किया है। मुनिजी ने इन सूक्तियो को तीन भागो मे संकलित किया है· १. धर्म और नीति, २ अध्यात्म और दर्शन, ३ बिखरे मोती। इनमे प्राय सभी आगम ग्रन्थो का उपयोग हुआ है। पाठक के लिए सूक्तियो का अध्ययन जितना सरल है उतना ही ज्ञानवर्द्धक है। यह शुभमंगल है कि अत्यन्त परिश्रम के साथ जैन साहित्य का प्रकाशन साहित्य जगत मे अपना स्थान वना रहा है।

— 'अनुसंधान पत्रिका', जनवरी-मार्च, १९७४

जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसमे भगवान महावीर की विविध विषयो की एक हजार आठ चुनी हुई सूक्तियो का समावेश किया गया है। मोटे रूप मे सारी सामग्री तीन खण्डो मे विभाजित है—'धर्म और नीति', 'अध्यात्म और दर्शन' और 'बिखरे मोती'। पहले दो खण्डो को फिर अनेक विषयो मे बाँटा गया है। पृथक् बाईं ओर मूल भाषा मे सूक्ति दी गई है और दाएँ पृष्ठ पर उसका हिन्दी रूपान्तर। नि सन्देह सूक्तियो का चुनाव बडे परिश्रम से किया गया है और इस बात को ध्यान मे रखा गया है कि जीवन की प्रत्येक समस्या के विषय मे भगवान् महावीर का मार्गदर्शन मिल सके।

आत्मशोधन के लिए यह अत्यन्त उपयोगी प्रकाशन है। इसकी एक-एक सूक्ति मनन करने योग्य है। जो इसमे जितनी

गहरी डुबकी लगायेगा उतने ही मूल्यवान् रत्न उसके हाथ लगेगे। पुस्तक एक बार नही, बार बार पढने योग्य है। यह अधिक से अधिक व्यक्तियो के हाथो मे पहुँचे और वे इसका लाभ ले, इसलिए इसका मूल्य भी कम रखा गया है। हमे पूरा विश्वास है कि जैन और जैनेतर सभी पाठक इस पुस्तक को पढेगे और इससे अपने जीवन को नई दिशा देने के लिए प्रेरणा ग्रहण करेगे।

—यशपाल जैन

'जीवन साहित्य', जून, सन् '७४

श्री राजेन्द्र मुनिजी का प्रयास बहुत उपयोगी है। ग्रन्थ बहुत सुन्दर रूप से निकाला है। मूल्य भी कम है। आशा है अच्छा प्रचार होगा। मुनिश्री के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। राजेन्द्र मुनिजी के अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित करवावे।

३१–१२–'७३ —अगरचन्द नाहटा

आगम गंगा के सूक्तिस्रोत जिस अनन्त आलोक की ओर अनवरत प्रवाहित हो रहे है, श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री संकलित भगवान महावीर की एक हजार आठ सूक्तियो की यह कृति उसी अनन्त आलोक की ओर जनगण की जिज्ञासा जागृत करने मे सफल होगी तथा आत्मा की उर्वरा को आप्लावित कर प्रज्ञा को पैदा करेगी।

१–१–'७४ —अनुयोग प्रवर्तक **मुनि कन्हैयालाल 'कमल'**

महावीर भगवान का, सूक्ति ग्रन्थ निकाल,
राजेन्द्र मुनि ने किया सचमुच 'कमल' कमाल,
प्रगति पथ पर देखकर, मनमे काफी हर्ष,
करता हूँ शुभ कामना, करे खूब उत्कर्ष।

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

